सचित्र

भर्तृहरि कृत

नीति शतक

अनुवादक—

स्वास्थ्यरक्षा, चिकित्साचन्द्रोदय, हिन्दी अंगरेजी शिक्षावली, बँगला हिन्दी शिक्षावली, प्रभृति ग्रन्थों के लेखक

और

गुलिस्ताँ, अक़्लमन्दी का ख़ज़ाना, वैराग्यशतक शृंगारशतक प्रभृति ग्रन्थों के अनुवादक

बाबू हरिदास वैद्य।

प्रकाशक

हरिदास एण्ड कम्पनी

दूसरा संस्करण। २५००

मूल्य अजिल्द का ४॥)
" सजिल्द का ५)
बढ़िया जिल्द का ५।)

भूमिका

एक आलङ्कारिक का कथन है,—"सत्काव्य यशस्कर, अर्थकर, व्यवहार-ज्ञानदाता और अमङ्गलहर होते हैं। सत्कविता साध्वी वनिताकी भाँति परम शान्ति-दायिनी और हितोपदेशिनी होती है।"

कविका यह वाक्य संस्कृत के चाहे जिस काव्य की प्रशंसा में निकला हो ; पर यह महाराज भर्तृहरिकृत "नीतिशतक" पर पूर्ण रूप से घटित होता है ; क्योंकि उसके पढ़ने से मनुष्य एक अच्छा नीतिमान् हो जाता है और नीतिमान् व्यक्ति ही कीर्त्ति, धन और प्रशंसा के अधिकारी होते हैं।

नीतिशतक सचमुच ही एक अपूर्व ग्रन्थ है। हम जब कभी ध्यान के साथ उसका पारायण करने बैठते हैं, तभी ऐसा मालूम होता है; मानो संसार में जो कुछ भी महान है, जो कुछ भी सुन्दर है और जो कुछ भी नवीन, निष्पाप, निर्मल और मनोहर है, वह सब एकत्र संकलन करके, जिस स्थान पर जिसका समावेश करने से उसकी सुन्दरता और निर्मलता और भी बढ़ जा सकती

है, वह उसी स्थान पर उसी ढंग से बैठाया गया है। "नीति-शतक" में यद्यपि सौ श्लोक हैं, किन्तु इन सौ श्लोकों में जो कुछ भी कहा गया है, उसकी तुलना अन्य देशों के सौ नीति-ग्रन्थ भी नहीं कर सकते।

संसार में रह कर, जीवन में जय पानेके लिये, नीतिमान् बनने की नितान्त आवश्यकता है। नीति से हम, अकेले होने पर भी, अनन्त सेना को परास्त कर सकते हैं और एक स्थान पर बैठे-बैठे समस्त भूमण्डल पर शासन कर सकते हैं। जो व्यक्ति जितनाही अच्छा नीतिज्ञ है, वह उतना ही दुर्जेय है। सारांश यह कि, संसार की जटिल से जटिल समस्याओं का निराकरण एक-मात्र नीति द्वारा ही हो सकता है। महात्मा शुक्र ने बहुत ही ठीक कहा है, व्याकरण से शब्द और अर्थ का ज्ञान होता है, न्याय और तर्कशास्त्र से जगत् के पदार्थों का ज्ञान होता है; और वेदान्त से संसार की असारता और देह की अनित्यता का ज्ञान होता है; किन्तु लौकिक व्यवहार में इन शास्त्रों से कुछ भी प्रयोजन नहीं निकलता। सांसारिक कार्य्य-व्यवहार-निर्वाह करने और सुखपूर्व्वक जीवन यापन करने के लिये जिस चीज़ की आवश्यकता है, वह "नीतिशास्त्र" है। इस शास्त्र का ज्ञान, महलों में रहने वाले राजा से लेकर कुटीर-निवासी क्षुद्र मनुष्य तक के लिये समान भाव से होना ज़रूरी है। अतः कहना चाहिये, कि नीति का अपूर्व माहात्म्य है।

संस्कृत साहित्य में प्रधानतः शुक्र, भर्तृहरि, विदुर और

चाणक्य की नीतियों का ही विशेष आदर है। उनमें भी पण्डित लोग जितना आदर भर्तृहरि की नीति का करते हैं, उतना अन्य किसी की नीति का नहीं। इसी से हमने इसे अपूर्व नीतिग्रन्थ कहा है। अस्तु।

सन् १९१५ ई० में, हमारे यहाँ से इसी "नीतिशतक" का अनुवाद छप कर प्रकाशित हुआ था। वह अनुवाद पाण्डेय लोचनप्रसाद शर्म्मा और पण्डित सखाराम दुबे बी० ए०, बी० एल० ने किया था। अनुवाद सर्वाङ्गसुन्दर होने पर भी, कोरा अनुवाद ही था। उसमें बहुतसी कारीगरियोंकी कमी थी। हमने अनुवादक महाशयोंमेंसे एक से टीका-टिप्पणी सहित सुविस्तृत अनुवाद करनेके लिये प्रार्थना भी की थी; पर उन्होंने किसी वजह से हमारी बात पर ध्यान नहीं दिया। मजबूरन हमको वह अनुवाद प्रकाशित करना पड़ा। तभी हमारे दिल में यह इच्छा पैदा हुई थी, कि यद्यपि हम उतने योग्य नहीं, तथापि हम भी चेष्टा क्यों न करें? किन्तु अवकाश न होने की वजह से, हम उस समय अपनी इच्छा को कार्य्यमें परिणत न कर सके।

गत वर्ष, हम पर ऐसी भीषण विपत्ति आई, कि हमें इस जीवन में कुछ भी लिखने की आशा न रही। उस निराशता के समय में, हमने कोई दो हफ्तोंमें "वैराग्यशतक" का अनुवाद करके प्रकाशित कर दिया। उन दिनों ईर्ष्या-द्वेष का बाज़ार खूब गर्म था। प्रायः सभी परिचित, मित्र और नातेदार हमसे नाराज़ से हो रहे थे। इसलिये हमें मनुष्योंसे पशुओं का संग

और नगर से वन अच्छा लगता था। एक तरह हमें संसार से विरक्ति सी हो गई थी। उन दिनों हम अक्सर "वैराग्यशतक" को पढ़ा करते थे। इसी से हमें उसी के अनुवाद की सूझ गई। यद्यपि मनमें ख़याल होता था कि, तुम्हारे जैसे मामूली आदमी का अनुवाद किसी को पसन्द न आयेगा, तुम्हारा ऐसा प्रयास करना बौने के चाँद छूने की चेष्टा के समान होगा; पर हमने "अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः—" के न्यायानुसार, उसमें हाथ लगा ही तो दिया और बुरा-भला जैसा बना उसे पूरा कर दिया।

यद्यपि आशा नहीं थी कि, हमारे जैसे अयोग्य व्यक्तिका किया अनुवाद कोई पसन्द करेगा; पर हिन्दी के कितने ही समाचार-पत्रों ने उसकी दिल खोलकर प्रशंसा की और बिना किसी प्रकार की विज्ञापनबाज़ी के वह कोई ८।१० मासमें ही हाथों-हाथ बिक गया। यह सब क्यों हुआ? यह अनाथनाथ भगवान् कृष्णचन्द्र की कृपा के कारण से हुआ। क्योंकि अपने किये हुए किसी भी काम को हम अपना किया हुआ नहीं समझते। हम तो यही समझते हैं,—जो कुछ वह कराते हैं, हम वही करते हैं।

"वैराग्य शतक" की भूरि-भूरि प्रशंसा होने और पबलिक के बड़ी चाह के साथ ख़रीद लेने से हमारा उत्साह बढ़ा। उधर क़द्रदान पाठकोंने लिखा, कि आप "नीति-शतक" और "शृंगार-शतक" का भी ऐसा ही अनुवाद क्यों नहीं करते? इससे हमने "नीति-शतक" और "शृङ्गारशतक" का भी अनुवाद कर डाला।

"वैराग्यशतक" का अनुवाद हमने जिस ढंग से किया था,

प्रायः उसी ढंग से इन दोनों शतकों का भी अनुवाद किया है। सच तो यह है, हमने "वैराग्यशतक" की अपेक्षा "नीतिशतक" में बहुत ज़ियादा परिश्रम किया है। "वैराग्यशतक" में पहले मूल श्लोक, उसके नीचे भावार्थ, भावार्थ के नीचे व्याख्या, व्याख्या के अन्तमें अङ्गरेज़ी अनुवाद दिया है। "नीतिशतक" में भी यही सब काम किये गये हैं। इसकी विशेषता है, कि इस में मौक़े-मौक़े पर पूरब-पच्छिम के अनेक नीतिकारों की नीति भी लिख दी है। अङ्गरेज़ विद्वानों के सैकड़ों बहुमूल्य वचन, कहावतें और मॉटो प्रभृति दी हैं। साथ ही अनेक स्थलों में हमने अपना अनुभव भी लिखा है। इस से पाठकों के चित्त पर और भी जल्दी असर होगा।

मनुष्य-जीवन में नित्यप्रति काम में आनेवाले बहुत ही कम ऐसे नीति-वाक्य होंगे, जो इस पुस्तक में पाठकों को न मिलें। हमने इसका नाम 'नीतिशतक' रक्खा है; पर असलमें यह संसार की नीति का सार है। इसी से ४०।५० पृष्ठों में ख़तम होनेवाला ग्रन्थ कोई ५०० पृष्ठों में ख़तम हुआ है।

इस ग्रन्थ के लिखने में हमें उस्ताद ज़ौक़, महाकवि ग़ालिब, महाकवि दाग़, गुलिस्ताँ, महाभारत, कुमारसंभव, किरातार्जुनीय, रघुवंश, हितोपदेश, पञ्चतन्त्र प्रभृति अनेक ग्रन्थोंसे सहायता लेनी पड़ी है। उस्ताद ज़ौक़ और महाकवि दाग़ प्रभृति से हमें जो कुछ मदद मिली है, उसके लिये हम अपने माननीय मित्र पण्डितवर ज्वालादत्तजी शर्म्मा, किसरौल, मुरादाबाद, के अत्यन्त

कृतज्ञ हैं। पण्डितजी की पुस्तकों की सामग्री से एक नवीन प्रकारकी खूबसूरती आ जाती है, जिसे पबलिक खूब पसन्द करती है। पण्डित जी की चीज़ को हम अपनी ही समझते हैं, अतः धन्यवाद देने की ज़रूरत नहीं। अपने घनिष्ट मित्रों को बारम्बार धन्यवाद देना मैत्री का मूल्य घटाना है।

सब से अधिक धन्यवाद हम लार्ड चेम्सफर्ड महोदय, भूत-पूर्व्व वायसराय और मिष्टर गोरले एम॰ ए॰, सी॰ आई॰ ई॰, आई॰ सी॰ एस॰, प्राईवेट सेक्रेटरी टू हिज़ एकसेलेन्सी दी गवरनर आव् बङ्गालको देते हैं, जिनकी असीम दयालुता और सहानुभूति बिना हम इस ग्रन्थको लिखही न सकते थे; क्योंकि उक्त दोनों परम दयालु सज्जन यदि हम पर दयादृष्टि न करते, तो "चिकित्सा-चन्द्रोदय" के दो भाग और "वैराग्यशतक" का अनुवाद ही इस जगत् में हमारे आख़िरी ग्रन्थ होते। भगवान् श्रीमान् लार्ड चेम्स-फर्ड और मिष्टर गोरले महोदय को शतायु करे और उन्हें अपनी बेशक़ीमत से बेशक़ीमत न्यामतें बख़्शे!

आशा है, पाठक "वैराग्यशतक" की तरह हमारे "नीतिशतक" के अनुवादको भी पसन्द करेंगे। उनकी कृपा रही, तो चन्द रोज़ में "शृंगारशतक" भी इसी सजधज के साथ छप कर उनके कर-कमलों में पहुँचेगा।

विनीत—

हरिदास

PREFACE.

It has been very rightly said by a poet that good poetry gives fame, money and knowledge and is the destroyer of all evils. Like a faithful wife, good poetry gives peace and wise counsel.

The poet may have said it in respect of some poetical work but the remark applies very appropriately to the work of Maharaja Bhartrihari styled "Niti-Shatak." One who goes through this work becomes a strict follower of moral principles. Morality alone gives a man fame, wealth and praise.

Morality is the strongest weapon to become victorious in the struggle for life. Moral principles alone will enable one to defeat and overcome a formidable army. With the help of moral principles one can rule the whole world. The more one is possessed of high morality, the more powerful he is. The most difficult and intricate problems of this world can solved by moral principles alone. The great sage "Shukra' very appropriately remarked that grammar teaches one to know correctly words and their meanings; philosophy and logic help one to know the worldy things rightly; Vedanta makes one learn the transitoriness of this world and of this body. But in practical world all these do not help a man at all. To pass this life happily and to successfully combat the struggles of this world, what is needed most is to know the "Code of Morality or the Science of Ethics." From the poorest beggar to the richest sovereign every one should master

"Code of Morality (Science of Ethics)." It is no exaggeration to say that morality has wonderful powers.

In the Sanscrit literature the moral aphorism of Shukra, Bhatrihari, Vidur and Chanakya are very much appreciated, but scholars pay a high tribute out of all these to the work of Bhartrihari.

In 1915, we published a translation of this "Niti Shatak." That translation was done by Pandey Lochan Prasad Sharma and Pandit Sakha Ram Doobey B. A, B. L. That was a correct translation, but only a translation and nothing more. There the structure needed some fine workmanship. I had requested one of the translators to give explanatory notes and publish an explanatory edition of the translated work, but for some reasons unknown he could not comply with my request. I had no other alternative but to publish the edition as it was. It struck me at that time that although I was not fully qualified to do the publication of another edition, I should try to do the work myself, but at that time I could not act according to my desire, as I had no leisure at all.

Last year such difficulties came in my way that I had no hope to undertake any further literary work during that time. I published the translation of "Vairagya Shatak" within the short space of two weeks. Zealousy and enmity against me was very rampant then. Most of my friends and relatives also were displeased with me. At that time such was the state of my mind that I preferred the company of wild beasts to that of men and liked to go to the woods instead of remaining in towns. In short I became disgusted with this world and I made it a hobby to read "Vairagya Shatak" and from that time it struck me that I may translate it. It sometimes

occured to me that a translation by an ordinary man like myself may not be to the liking of public, and that my efforts in that direction would be sheer impertinence on my part, but after mature deliberation I thought it is better to do something than nothing and accordingly I took up the work and finished it anyhow.

I little expected that a translation by a man like me not at all fit for the work would be so liked by the people. But some of the Hindi papers praised the work very much and without any further advertisement the book was disposed off within 8 or 12 months. And why was this reception given to my book? I think all this was due to the Divine Providence helping me. All that I do is through His grace.

The damand for "Vairagya shatak" and the high praise that it commanded encouraged me much. My esteemed readers wrote to me for publishing on the same lines "Niti" and "Shringar Shatak;" that is why I have translated "Niti Shatak" "and "Shringar Shatak also."

I have followed the same plan in translating "Niti" and Shringar Shatakas" as I did in "Vairagya Shatak." In "Vairagya Shatak," there was first the original shloka, then its purport and the explanation and finally English translation. The same is the case in "Niti Shatak" also, with this speciality that I have freely quoted at suitable places the sayings of many an Eastern and Western scholars. Hundreds of mottos, choice couplets or sayings-of English authors and poets have been incorporated in it. I have also put down my own ideas at several places, I hope and trust all these will have some effect on the mind of the gentle reader.

There is hardly any moral quotation or saying which is frequently used in the every day life, that does not find place in

this book . This book is named "Hundred Moral Principles" but in reality it comprises the whole Science of Ethics. That is why this book has gone up to 400 to 500 pages, although it could have been finished in 40 or 50 pages only.

I have consulted the works of Ustad Zauq, Mahakavi Ghalib and Dagh the great poet, and Gulistan, Mahabharat, Kumar-sambhav, Kiratarjuniya, Raghubansha, Hitopdesh, Panch-tantra and several other works. I am much indebted to my learned friend Pandit Jwala Dutt Sharma, Kisraul, Moradabad, for my quotations from Ustad Zauq and Dagh and other great poets. In fact, the book of my learned friend were a great help to me and the materials they supplied give a flavour to this book which the public very much relish. As he is my intimate friend, I can claim a right in his works and there is no need of thanking him much for this. To praise an intimate friend too much is to put a discount on the friendship.

But before I finish, I must gratefully and heartily thank our late Viceroy, His Excellency Lord Chelmsford and also the Honourable Mr. Gourlay M. A., C. I. E., I. C. S., Private Secretary to His Excellency The Governor of Bengal. It was due to their kindness and generosity that I was able to finish this work. If they had not extended their sympathetic look towards me, most probably the two parts of "Chikitsa Chandrodaya" and "Vairagya Shatak" would have been my last publications. May Providence shower His choicest blessings on His Excellency Lord Chelmsford and Honourable Mr. Gourlay and may they live long is the humble prayer of the author.

I hope my gentle reader will extend the same sympathetic support to this work as they did to Vairagya Shatak. If they encourage me, I hope to place in their hands shortly the translation of "Shringar Shatak" also.

HARIDAS VAIDYA.

निवेदन ।

जगदाधार, जगदात्मा जगदीश की असीम कृपा से ही आज हम "नीति-शतक का दूसरा संस्करण देख रहे हैं। हमने इसके दो तरह के संस्करण छपाये थे:—(१) राज संस्करण, और (२) साधारण संस्करण। राज संस्करण आर्ट पेपर पर तीन रंगों में छपा था। लोगोंका कहना है कि हिन्दी में आज तक वैसी सजधज से कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई। वैसी छपाई में खर्च बेतहाशा बैठता है। हमने वह संस्करण शौक़ से निकाला था, क्योंकि हमें उत्तम छपाई का हमेशा से शौक़ है। उस समय उस का मूल्य ७||) देखकर कई प्रकाशकों ने कहा था, कि हिन्दी में इतने मूल्य की पुस्तक न बिकेगी। पर हमें परीक्षा से मालूम हुआ कि हिन्दी में अच्छी चीज़ के क़दरदाँ यद्यपि बहुत नहीं हैं, तो भी हैं ज़रूर। इसी से हमारी, राज संस्करण और साधारण संस्करण, दोनों ही तरह की पुस्तकें शीघ्रही बिक गईं। इसे हम जगदीश की दया और क़दरदाँ पबलिक की क़दरदानी के

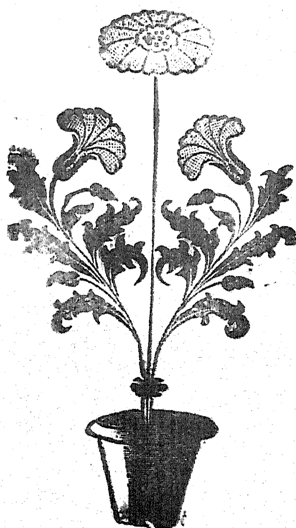
सिवा क्या समझें ? पर अफसोस है, नीति शतक के इस संस्करण के समय घर का प्रेस न रहा। विगतवर्ष अपने इकलौते पुत्र की मृत्यु हो जाने और हमारे स्वयं घोर रोग-ग्रस्त हो जाने की वजह से, हमने अपना नरसिंह प्रेस एक सज्जन के हाथ बेचकर झंझट मिटा दिया। प्रेस अलग कर देने से झंझट अवश्य कम हो गया, शान्ति भी मिली, पर छपाई के लिये पहला सा आराम न रहा—इसी से इस बार तीनोंही शतकों के राजसंस्करण की माँग होने पर भी, हम "नीतिशतक" का साधारण संस्करण ही छपा सके हैं। अगर जगदीश को इच्छा हुई और वे हमारे अनुकूल रहे, तो कुछ दिनोंमें हम फिर काम बढ़ाऊ निजीप्रेस का इन्तज़ाम करके तीनों शतकों के ही "राजसंस्करण" निकालेंगे।

इस बार साधारण संस्करण में भी कागज़ तो पहले से अच्छा लगाया गया है, पर अफसोस है कि अनवकाश की वजह से, इच्छा होने पर भी, हम इसे बढ़ा न सके। "वैराग्यशतक" का दूसरा संस्करण अभी ही हुआ है और शृङ्गार का पहला संस्करण ही अभी चल रहा है। आशा है, हमारे जैसे नगण्य लेखक की लिखी इन तीनों पुस्तकों को जनता पहले की तरह ही अपनाकर हमें उत्साहित करेगी। हमने अब तक बुरा भला जो कुछ भी लिखा है, वह जनता के उत्साह-वर्द्धन से ही लिखा है। इस समय तक हम "चिकित्सा चन्द्रोदय" के पाँच भाग लिखकर प्रकाशित कर चुके हैं और वह ग्रन्थ जनता ने खूब ही पसन्द किया है, अतः हम पहले उसे ही पूरा करने की चेष्टा में हैं। यदि जगदीश की

कृपा रही और यमसदन से कुछ दिन और वारण्ट न आया, तो "चिकित्सा चन्द्रोदय" को पूरा करके, हम नीति और वैराग्य पर इन हज़ार सफ़ों के दोनों ग्रन्थों से भी बढ़कर एक और ग्रन्थ लिखने का विचार रखते हैं, जो लासानी होगा। पर फिर कहना पड़ता है, कि इस विचार का कार्य में परिणत होना ईश्वर की कृपा और पबलिक की क़दरदानी पर ही मुनहसिर है। आशा है, इस लोक परित्याग से बहुत पहले ही हमारी इच्छा पूरी हो जायगी।

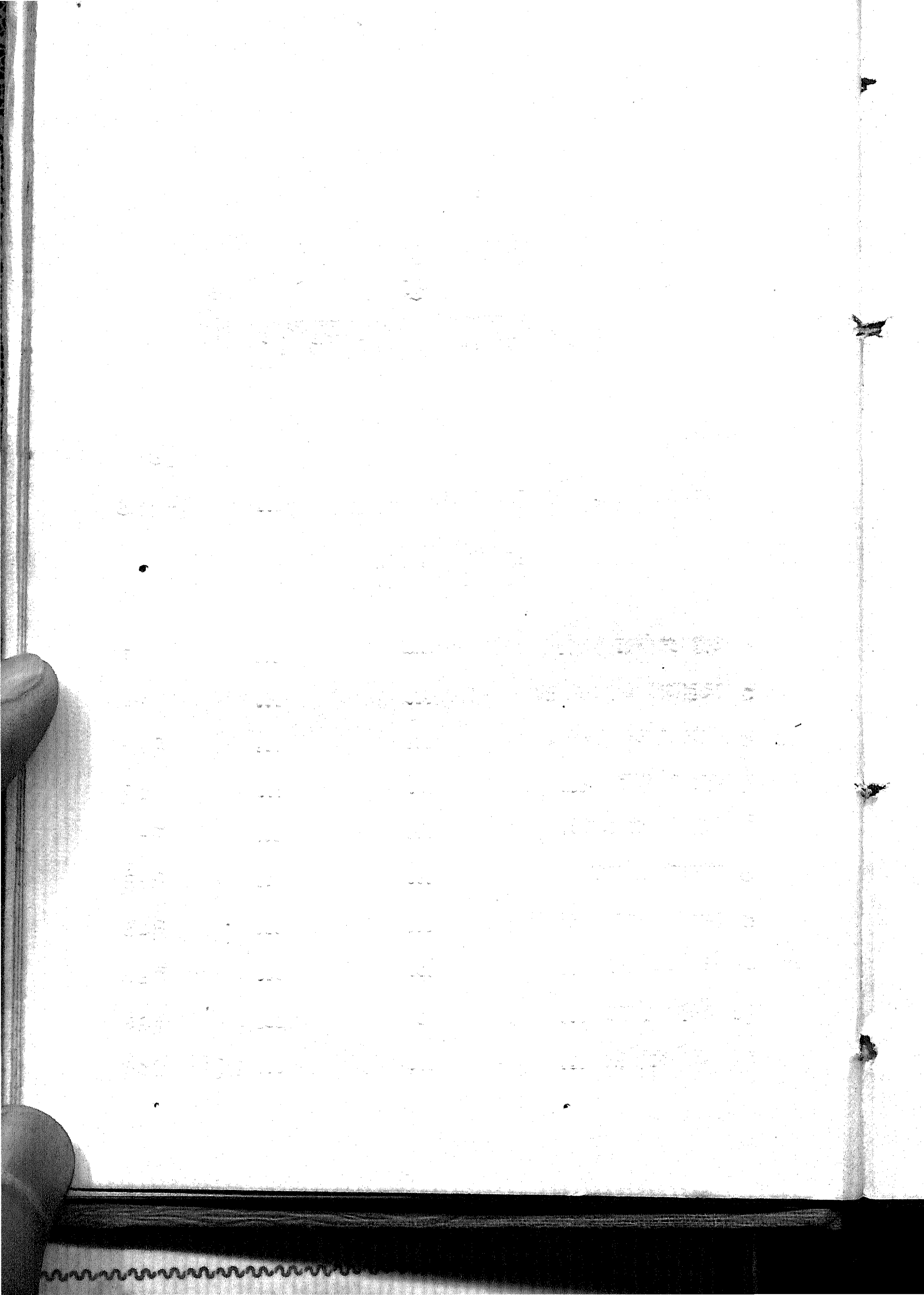
विनीत—

अनुवादक।



विषय सूची ।

नीतिशतक ।





चित्र-सूची

महाराजा भर्तृहरि की जीवनी ।

नीतिशतक ।



श्रीः

महाराजा भर्तृहरि

कहते हैं, कोई दो हज़ार वर्ष पहले, राजपूताने के मालवा प्रान्तकी उज्जयिनी नगरी में,—जिसे आजकल उज्जैन कहते हैं,—एक उच्च श्रेणीके विद्वान्, नीतिकुशल, न्याय-परायण, प्रजावत्सल सर्व्वगुणसम्पन्न नृपति राज करते थे। आप का शुभ नाम महाराज भर्तृहरि था। आप अपनी प्रजा को निज सन्तानसे भी अधिक चाहते थे और उसीकी हितचिन्तनामें दिन-रात मशग़ूल रहते थे। आपकी न्यायप्रियता और प्रजाहितैषिणा की चर्चा सारे भारतमें फैल गई थी, इसलिये अन्य राज्योंकी भी बहुसंख्यक प्रजा अपना देश छोड़ कर आपके राज्यमें आकर बस गई थी; इससे उज्जयिनीकी शोभा-समृद्धि आजकलके कलकत्ते-बम्बई के समान होगई थी। राजाके धर्मपरायण होनेके कारण प्रजा भी

धर्मात्मा थी। सभी अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करते थे। ठौर-ठौर यज्ञ और हवन होते थे। मेघ समय पर यथेष्ट जल बरसाते थे। मालवा प्रान्त में लोग अकालका नाम तक भूल गये थे। राजा-प्रजाके भण्डार सदा धन-धान्य से पूर्ण रहते थे। ग़रीब दोनों समय पेट भर अन्न खाते थे। प्रजाको किसी बात का दुःख, क्लेश और अभाव नहीं था। चोरी, ज़ोरी, लूट-मार और डकैती एवं अत्याचार, अनाचार और व्यभिचार प्रभृति का नाम ही उठ गया था। कभी ही कोई ऐसा केस राजदरबार में आता था। इन जुर्मों के मुजरिमों को महाराज सख़्त सज़ा देते थे। न्याय, नीति और धर्म पर चलनेवालों के लिये महाराज जैसे दयालु थे; दुष्ट और अन्यायियों के लिए वैसे ही कठोर थे। सारांश यह कि, महाराज को सभी उत्तोमत्तम राजोचित गुण विधाताने दिये थे। आपके राज्य में शेर-बकरी एक घाट पानी पीते थे। कोई किसी की ओर आँख उठा कर नहीं देख सकता था। निबल और सबल सभी अपनी-अपनी खाल में मस्त थे। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली कहावत चरितार्थ न होती थी। सच तो यह है, कि मालवा प्रान्तकी प्रजा फिर से रामराज्य का सुख लूटती हुई, हृदय से महाराज की मङ्गल-कामना और उनके दीर्घजीवन के लिये जगदीश से करजोड़ प्रार्थना करती थी। उस समय प्रजा को कोई राजभक्ति का पाठ ज़बर्दस्ती नहीं पढ़ाता था। सुखी होनेके कारण, प्रजा आपही राजा को पिता की तरह मानती थी और उसमें अचल-अटल भक्ति रखती थी।

महाराजके एक छोटे भाई भी थे। उनका नाम राजकुमार विक्रम था। विक्रम भी बड़े भाई की तरह ही विद्वान्, न्यायपरायण, धर्मात्मा और राजनीतिकुशल थे। यह राजकुमार विक्रम ही हमारे सुप्रसिद्ध प्रतापशाली महाराजाधिराज वीर विक्रमादित्य थे, जिन्होंने भयंकर युद्धों में विदेशी आक्रमणकारियोंको परास्त कर, भारत की रक्षा की और उन्हें इस देश से निकाल बाहर कर, अपने नामसे संवत् चलाया,जो आज तक विक्रम-संवत्के नाम से पुकारा जाता है। आपहीका चलाया संवत् अब तक पञ्चाङ्गों, जन्त्रियों और साहूकारोंके बही-खातोंमें लिखा जाता है। यद्यपि कालकी कुटिल गति, ज़माने के फेर या देशके दुर्भाग्यसे आजकल ईस्वी सन्की तूती बोल रही है। लोग चिट्ठी-पत्रियों एवं अन्यान्य काग़ज़ और दस्तावेज़ोंमें, आपके संवत्को छोड़ कर, ईस्वी सन्को लिखने की मूर्खता करते हैं; पर बहुतसे सज्जन अपनी भूल को सुधार कर, फिर महाराज के संवत् से ही काम लेने लगे हैं। आशा है, सभी भूले हुए राह पर आजायेंगे और संवत् के कारण से महाराज का शुभ नाम यावत् चन्द्र-दिवाकर इस लोकमें अमर रहेगा।

महाराज विक्रमके समय में बौद्ध-धर्म बड़े ज़ोरों पर था। ब्राह्मण-धर्मकी नींव खोखली होगई थी। आपने ही बौद्धोंको मार भगाया और ब्राह्मण-धर्म की फिर से स्थापना की। आप अपने ज़माने में भारत के सर्व्वश्रेष्ठ नृपति समझे जाते थे; प्रायः सभी राजे-महाराजे आपको अपना सम्राट् या नेता मानते थे। सभी

आपके इशारों पर नाचते थे। आप कहने को तो उज्जैन के राजा कहलाते थे, पर आपके राज्य की सीमा बड़ी लम्बी-चौड़ी थी। अतुल धन-वैभव और सुविस्तृत राज्य के अधीश्वर होने पर भी, आप में अभिमान नामको भी न था। आप छोटे-बड़े सभी से मिलते और बातें करते थे। आप एक चटाई पर सोया करते और अपने पीनेके लिये क्षिप्रा नदी से एक तूम्बा जल स्वयं अपने हाथों से भर लाते थे। आप आजकलके राजाओं की तरह प्रजा के पैसे से ऐश-आराम नहीं करते थे। आपका सारा समय प्रजा की भलाई में ही व्यतीत होता था। आप अधिक से अधिक तीन चार घण्टे सोते थे। रातके समय भेष बदल कर, आप अक्सर शहर में ग़श्त लगाया करते थे और इस बात की खोज किया करते थे, कि मेरी किस प्रजाको कौनसा दुःख है। आप जिसे दुःखी देखते थे, उसका दुःख या अभाव किसी न किसी तरह अवश्य ही दूर कर देते थे। अनेक मौक़ों पर तो आपने अपनी बेशक़ीमत जान को ख़तरे में डाल कर भी, प्रजाका दुःख दूर किया था। इसीसे प्रजा आपको "परदुःखभंजन" कहती थी। भारत में अब तक हज़ारों-लाखों राजा-महाराजा होगये होंगे; पर आपके सिवा और किसीको भी यह महामूल्य उपाधि नसीब नहीं हुई। हाँ, ईरानके ख़लीफ़ा हारूँ-उर-रशीद्के सम्बन्धमें भी ऐसी ही बातें सुनी जाती हैं। ख़लीफ़ा हारूँ रशीद भी, महाराज विक्रम की तरह, रात को भेष बदल कर घूमा करते और दीन-दुःखियों का पता लगा कर, उनके कष्ट मोचन किया करते थे। इस पृथ्वी पर आज

तक न जाने कितने एक-से-एक बढ़कर राजा-महाराजा होगये, जिनकी हुङ्कार से पृथ्वी काँपती थी, जिनके पास असंख्य सेना-सामन्त और अतुल धन-भण्डार था, पर आज उनका नाम भी कोई नहीं लेता ; पर ऐसे प्रजावत्सल, परोपकारी, न्यायी और प्रजाकष्ट मोचन करनेवाले महीपालों का नाम, जब तक पृथ्वी रहेगी, लोगोंकी ज़बान पर रहेगा । इस जगत् में जिनकी कीर्त्ति है, वह मर जाने पर भी अमर हैं । कीर्त्तिमान् मृतक नहीं समझा जाता । मृतक वही है, जिसको कीर्त्ति या सुनाम नहीं है । महाराजा विक्रम, खलीफ़ा हारूँ रशीद, नौशेरवाँ और सम्राट् अकबर प्रभृति आज इस नापायेदार दुनिया में नहीं हैं, पर उनका सुनाम लोगोंकी ज़बान पर है; अतः वे सशरीर न रहने पर भी अमर हैं । धन्य हैं ऐसे नरपाल ! ऐसे भूपालों से ही मही की शोभा है !

हमें यहाँ महाराजा विक्रमादित्यके सम्बन्धमें नहीं लिखना है । लिखना है,—महाराजा भर्तृहरिके सम्बन्ध में । प्रसंगवश हम महाराजा विक्रमादित्यके विषयमें इतना लिख गये । अब फिर असली मुक़ाम पर आते हैं । सुनिये; प्रातःस्मरणीय महाराजा विक्रम छोटे थे और महाराजा भर्तृहरि बड़े होनेके कारण राज करते थे । महाराजा विक्रम बड़े भाईके प्रधान मन्त्रीका काम करते थे । दोनों भाइयोंमें बड़ा प्रेम और सद्भाव था । राम-लक्ष्मण की सी जोड़ी थी । राम, लक्ष्मण को जिस तरह चाहते थे, उसी तरह महाराजा भर्तृहरि भाई विक्रमको प्यार करते थे । लक्ष्मण, राममें जैसी श्रद्धा और भक्ति रखते थे, वैसीही श्रद्धा और भक्ति विक्रमादित्य महाराज भर्तृहरि

में रखते थे। दोनों ही दोनों के लिये जी-जानसे चाहते थे। बड़े भाई छोटे को निज पुत्रवत् समझते थे और छोटे बड़े को पितृवत् मानते थे। महाराजा भर्तृहरि यद्यपि निरालसी और राजकार्य्य-दक्ष थे; तथापि उन्होंने राजकाज का विशेष भार विक्रम पर ही छोड़ रक्खा था। पिता जिस तरह सुपुत्र पर गृहस्थीका सारा भार छोड़ कर एक तरह निश्चिन्त हो जाता है, उसी तरह महाराजा भर्तृहरि विक्रम पर राजकाज का भार छोड़ निश्चिन्त होगये थे। महाराज विक्रम भी अपनी कुशाग्रबुद्धि और राजनीतिज्ञतासे सारे काम सुचारु रूपसे चलाते थे और राजकाज की जटिल समस्याओं के सुलझाने में महाराज के दाहिने हाथ बने हुए थे। प्रजा सब तरह सुखी और प्रसन्न थी। राज्य में आनन्द की बाँसुरी बज रही थी; पर परमात्माकी इच्छा या होनहारके कारण आगे चलकर एक विषवृक्ष पैदा होगया। उसने इन दोनों भाइयोंमें मनो-मालिन्य करा दिया। इतना ही नहीं, दोनोंको एक दूसरेसे जुदा करा दिया। जिसका लोगोंको स्वप्नमें भी ख़याल नहीं था, जिस का होना लोग असम्भव समझते थे, वही हुआ। सच है, भावी बड़ी बलवती है—होनी होकर रहती है।

महाराजा भर्तृहरिकी दो या तीन शादियाँ हो चुकी थीं। फिर भी; आपने किसी देशकी अपूर्व्व रूपलावण्यसम्पन्ना, परमा-सुन्दरी रतिमानमर्द्दिनी, मुनिमनमोहिनी अप्सराओं को भी शर्मानेवाली एक राजकुमारी से शादी करली। नयी महारानीका नाम पिंगला था। महारानी पिंगलाके असाधारण रूपवती होनेके

कारण, महाराज उनके रूप पर ऐसे मोहित हुए, कि अपनी विद्या-बुद्धि, विवेक और विचार प्रभृतिको ताक़ पर रख कर, उनके हाथों बिक गये—उनके क्रीतदास होगये। ठीक शाहन्शाह जहाँगीर और बेगम नूरजहाँ का सा हाल हुआ। जिस तरह नूरजहाँके बिना दिल्लीश्वर जहाँगीर को एक क्षण भी कल न पड़ती थी; उसी तरह महाराज भर्तृहरि को भी महारानी पिंगला बिना चैन नहीं था। जिस तरह जहाँगीरकी नकेल नूरजहाँके हाथों में थी; उसी तरह महाराज भर्तृहरि की नकेल पिंगला के हाथों में थी। जिस तरह जहाँगीर बादशाह नूरजहाँ के हाथोंकी कठपुतली थे; उसी तरह महाराज भर्तृहरि भी पिंगला के हाथों की कठपुतली थे। बादशाह जहाँगीर नामके बादशाह थे; नूरजहाँ ही बादशाहत की असल सञ्चालिका थी। वह जो चाहती थी सो करती थी। बादशाह सिर्फ दस्तख़त और मुहर भर कर देते थे। महाराज भर्तृहरि की भी वही दशा थी। महारानी पिंगला जो चाहती थीं, वही महाराजसे करा लेती थीं। महाराज बिना कुछ सोचे-समझे, बिना आगा-पीछा देखे, आँखें बन्द करके, रानी पिंगला की इच्छानुसार चलते थे। उन दिनों महाराज सच्चे स्त्रैण हो गये थे। रानी पिंगलाने ऐसा जादू कर दिया था, कि महाराज अपने होश-हवास खोकर पूरे तौर से उनके ज़रख़रीद गुलाम हो गये थे।

स्त्रैण होना अच्छा नहीं, स्त्रीका गुलाम होना उचित नहीं, स्त्रीके वशमें होना सर्व्वनाश का बीज बोना है; पर इन मोहिनियों के आगे प्रायः सभी की सिट्टी गुम हो जाती है। हम महाराजको ही

दोषी क्यों ठहरावें, जब कि बड़े-बड़े योगीश्वर मोहिनियों के रूप-जाल में फँस कर अपनी बुद्धि खो बैठे? इन योगिजनमनोहरा कामनियोंने किसका मन हरण नहीं किया? इन मोहिनियोंकी मोहनी शक्तिके आगे किसने हार नहीं मानी? इनके मोहनमन्त्रसे कौन पागल नहीं हुआ? इनकी मोहिनी मायामें कौन नहीं फँसा? शिव जैसे परम योगीश्वर मोहिनीकी रूपच्छटा, चटक-मटक और नाज़-नख़रों पर पागल हो गये। विश्वामित्र जैसे महामुनि मेनका के रूपजालमें फँस कर अपना तप भङ्ग कर बैठे। मरीचि और शृंगी जैसे महर्षि इनकी मनोमुग्धकर रूप-माधुरी पर सुधबुध खोकर तपस्या छोड़ बैठे; तब साधारण मनुष्यों की कौन बात है? बड़े-बड़े शूरवीर जो जगत् को परास्त कर सकते हैं, वे भी इनके सामने कायर हो जाते हैं। किसी कविने कहा है—

> व्याकीर्ण केशर करालमुखा मृगेन्द्रा,
> नागाश्च भूरिमदराजिविराजमानाः।
> मेधाविनश्च पुरुषाः समरेषु शूराः,
> स्त्रीसन्निधौ परमकापुरुषा भवन्ति॥

गर्दन पर बिखरे हुए बालों वाला करालमुखी सिंह, अत्यन्त मदवाला हाथी और बुद्धिमान समरशूर पुरुष भी स्त्रियों के आगे परम कायर हो जाते हैं।

परमात्माने भी स्त्रियोंके साथ पक्षपात किया है। उसने इन्हें अपूर्व क्षमता प्रदान की है। उसी क्षमतासे ये पुरुषोंको उसी तरह

अपने अधीन कर लेती हैं ; जिस तरह मनुष्य गाय बैल घोड़े घोड़ी प्रभृति पशुओं को अपने अधीन कर लेते हैं। जो काम बड़े-बड़े धनुर्धारी अपनी वाणविद्यासे सिद्ध नहीं कर सकते, उसे ये अपने एक कटाक्षसे सिद्ध कर लेती हैं। इनके कटाक्षवाणों के लगने से बड़े-बड़े युद्धों को जीतनेवाले, कभी भी हार न खाने वाले योद्धा सुन्न हो जाते हैं—भेड़-बकरी की तरह इनके वशमें हो जाते हैं। ये मोहिनी नज़रोंमें मार लेती हैं ; मधुर-मधुर बोलनेसे चित्तको चुरा लेती हैं ; हाव-भाव या नाज़-नख़रोंसे हृदय को मोह लेती हैं। मामूली आदमियोंका तो ज़िक्र ही क्या—ये हवा और राख खाकर जिन्दगी बसर करने वाले महात्माओं को भी मोहित कर लेती हैं ; इसी से लोग इन्हें मुनिमनमोहिनी भी कहते हैं।

स्त्रियाँ आशिक़ रूपी हिरनोंके बाँधने के लिये मज़बूत रस्सी और हृदय-रूपी मदमत्त गजराजको बन्धनमें फँसा रखने के लिये ज़बरदस्त ज़ञ्जीर हैं। ये अबला होने पर भी सबला हैं, गौ होने पर भी बाघ हैं ; कोमलाङ्गी होने पर भी वज्राङ्गी हैं और निर्मला होने पर भी कुमला हैं। ये अपने ऊपर अनुरक्त हुए अपने पति या आशिक़ को अपने वशमें कर लेती हैं। जब वह इनके वश में हो जाता है, तब उसका ज्ञान काफूर हो जाता है। ज्ञान-विहीन अज्ञानी पति अपनी स्त्रीके सामने मूक पशुवत् हो जाता है। वह अपनी स्त्री की हाँ में-हाँ मिलाता है, उसके कुकर्म देखकर भी नहीं बोलता ; क्योंकि स्त्रियाँ अपने चाहने वालोंको ऐसा ही बना लेनेकी सामर्थ्य रखती हैं। किसी ने कहा है:—

अलक्तको यथा रक्तो निष्पीड्य परुषस्तथा।
अबलाभिर्बलाद्रक्तः पादमूले निपात्यते ॥

जिस तरह स्त्रियाँ लाखके रंगको ज़ोरसे दबा कर अपने चरणों में लगाती हैं ; उसी तरह वे अपने अनुरागी या चाहने वालों को अपने चरणों में डाल लेती हैं।

पर इन मोहिनियों पर जी जान से लट्टू होने वालों, इन पर सम्पूर्ण रूप से विश्वास कर लेने वालों और इनकी अन्धभक्ति करने वालों को अन्तमें दुःख पाना, धोखा खाना और पछताना पड़ता है, इसमें ज़रा भी शक नहीं ; अतः इनको मध्य अवस्थासे सेवन करना चाहिये ; क्योंकि यदि पुरुष इनसे दूर रहे, तो फल नहीं मिलता और एकदम इनका हो ले, तो ये सर्व्वनाश का कारण हो जाती हैं। जो पुरुष स्त्रैण या स्त्री के गुलाम हो जाते हैं, जो इनको सिर पर चढ़ा लेते हैं, जो इनके ही मत पर चलते हैं, उनको दुःख भोगने पड़ते हैं और ये उन्हें खूब नाच नचाती और स्वयं स्वतन्त्र होकर मन-माने दुष्कर्म करती हैं। कहा है:—

तासां वाक्यानि कृत्यानि स्वल्पानि सुगुरूण्यपि ।
करोति यः कृती लोके लघुत्वं याति सर्वतः ।।

नाति प्रसंगः प्रमदासु कार्य्यो नेच्छेद्बलं स्त्रीषु विवर्द्धमानम् ।
अति प्रसक्तैः पुरुषैर्युतास्ताः क्रीडन्ति काकैरिव लूनपक्षैः ॥

जो कृती पुरुष स्त्रियोंकी छोटी-बड़ी या थोड़ी-बहुत बातोंको मानता है, वह सब तरह से नीचा देखता है।

स्त्रियोंसे अति प्रसंग न करना चाहिये; क्योंकि अति आसक्त हुए पुरुषोंसे वह पंख-नुचे हुए कौवेके समान खेल करती हैं।

अनुभवी विद्वान् और त्रिकालज्ञ ऋषि मुनियोंने जो कहा है, वह अक्षर-अक्षर सत्य है। जो शास्त्रकारोंके अमूल्य उपदेशों पर ध्यान नही देते, उन्हें दुःख के गहरे गड्ढे में गिर कर कष्ट उठाना ही पड़ता है। हमारे महाराज भर्तृहरि यद्यपि असाधारण विद्वान् और बुद्धिमान थे; पर भावी के वश होनेके कारण, उन्होंने शास्त्रोपदेश पर ध्यान न देकर महारानी पिंगलाको सिरपर चढ़ा लिया। उसकी प्रत्येक बात मानने और हरेक काम उसकी इच्छानुसार करने लगे। नतीजा यह हुआ, कि उसने महाराजको अपने ऊपर पूर्णरूपसे अनुरक्त पा, उनको खेलका पक्षीसा जान लिया और उन्हें अपनी इच्छानुसार नचाने लगी। साथ ही निर्भय होकर कुकर्म करने पर उतारू हो गयी। वह क्या कुकर्म करने लगी, उसका क्या नतीजा हुआ, ये सब बातें पाठकों को आगे चल कर मालूम हो जायँगी। यहाँ हमें यही विचारना है, कि महाराज भर्तृहरि जैसे चतुरचूड़ामणि और विद्वान् राजाने ऐसा मौक़ा क्यों दिया ?

पाठक ! जैसी भावी होती है, मनुष्यकी बुद्धि भी वैसी ही हो जाती हैं। अगर भावीके अनुसार बुद्धि न हो जाय, तो भावी कैसे हो ? दशरथनन्दन महाराजा रामचन्द्र तो विष्णुके अवतार माने जाते हैं ; वे कुटिया में सीता को छोड़ कर, सोनेके हिरनके पीछे तीर कमान लेकर क्यों भागे ? साधारण आदमी भी समझ सकता है, कि सोनेका हिरन नहीं हो सकता—सुवर्ण मृग का

होना असम्भव है। पर भगवान् रामचन्द्रजीको इतना भी ख़याल न हुआ! हो कैसे? होनी तो कुछ और ही थी। जैसी होनी थी, वैसी ही बुद्धि रामचन्द्रजी की हो गई। उनके और लक्ष्मणजी के सीता को सूनी छोड़जाने से, रावणको मौक़ा मिला और वह यति का वेष धर कर सीता को लंका में ले गया। परिणाम में घोर युद्ध हुआ और रावण मारा गया।

हमारे प्रातःस्मरणीय महाराज भर्तृहरिकी बुद्धि यदि नहीं मारी जाती, वे पिंगला के हाथ की कठपुतली न हो जाते; तो पिंगलाको व्यभिचारिणी होनेका मौक़ा कैसे मिलता? प्राणप्यारे भाई विक्रम से वियोग कैसे होता? शेषमें अपनी प्राणप्रियाके कुकर्म का हाल जान कर, महाराज को विरक्ति कैसे होती और वे राजपाट त्यागकर आदर्श योगिराज कैसे होते? कहते हैं, संसार में एक पत्ता भी विना परमेश्वर की मरज़ीके नहीं हिलता। इस जगत्में जो कुछ होता है, वह जगदीश की इच्छा से होता है, जगदीश जो चाहते हैं सो करते हैं। पर जगदीश जो करते हैं, वह प्राणीकी भलाईके लिए करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। जगदीश की इच्छासे ही कई रानियों के होते हुए भी, महाराजने पिंगला का पाणिग्रहण किया। जगदीश की इच्छा से ही, वह सब विद्या-बुद्धि बिसरा कर रानीके क्रीत दास हुए। इससे महाराजका बड़ा उपकार हुआ। ऐसा भला हुआ, जिसकी तुलना नहीं। उनको संसारसे विरक्ति न होती, तो क्या आज उनका नाम इह जगत्में अमर रहता? उनकी कीर्त्ति अचल होती? उन्होंने जिस महोच्च

पद्— परमपद्—की प्राप्ति करली, उसकी प्राप्ति कर सकते ? हरगिज़ नहीं। इसीसे कहना पड़ता है, कि महाराज और गोस्वामी तुलसीदासजी दोनोंके, आरम्भमें, परले सिरे के विषयी और स्त्रैण होने से ही उन्हें वैराग्य हुआ। बुराई से भलाई हुई और परमात्मा जो करता है, वह मनुष्यकी भलाई के लिये ही करता है, यह बात सत्य प्रमाणित हुई। विषवृक्ष से अमृत-फल की उत्पति हुई। ठीक गोस्वामी तुलसीदासजी की सी घटना घटी। गुसाईं जी को भी स्त्री के ही कारण से वैराग्य हुआ और हमारे महाराज को भी स्त्री के ही कारण से। हाँ, घटनाक्रम में थोड़ा अन्तर अवश्य है।

स्त्रियों के स्वभावकी कोई बात समझ में नहीं आती। ये अपने व्याहता, सुन्दर, खूबसूरत, नौजवान, बलवान, वीर्य्यवान, चतुर और कामकलाकुशल पतिको त्याग कर, एक नीच-कुलोत्पन्न गँवार, बदसूरत काले कलूटे, अधेड़ और बूढ़े पर मरने लगती हैं। ये पुरुषमात्र को भोगने की इच्छा रखती हैं। इन्हें वयस और रूप कुरूप से कोई मतलब नहीं। इन्हें न कोई प्यारा है न कुप्यारा। जिस तरह गाय नयी-नयी घास पसन्द करती है; उसी तरह ये नितनये पुरुषों को चाहती हैं। जब तक इन्हें कोई चाहने वाला नहीं मिलता या मौक़ा हाथ नहीं आता, तभी तक ये सती बनी रहती हैं। ये अपने सच्चे प्रेमीको नहीं चाहतीं, उससे घृणा करती हैं अथवा उदासीन रहती हैं; किन्तु जो इन्हें नहीं चाहता, जो इनके साथ चालें चलता है, जो परले सिरे का धूर्त और दग़ा-

बाज़ होता है, जो दुर्गुणों की मूर्त्ति और दुष्टताकी खान होता है, उसके लिये ये अत्यातुर रहती हैं।

जो पुरुष स्त्रियों को सद्गुणशालिनी और उत्तम स्वभाववाली समझते हैं, वे बड़ी ग़लती करते हैं। ये इतनी चालाक और मायाविनी होती हैं, कि अच्छे-से-अच्छे चालाक को भी अपने कुकर्मों का पता नहीं लगने देतीं। ये किसी की भी बात को जान-सुन कर पेटमें नहीं पचा सकतीं, पर अपनी बात को छिपाना वे ख़ूब जानती हैं। जब ये कुकर्मों पर उतर पड़ती हैं, तब इन्हें लोक-लाज, लोकनिन्दा प्रभृति की परवा नहीं रहती। दुनियाँ बुराई करे करो; माता-पिता, भाई और जेठ ससुर प्रभृतिकी नक-कटाई हो तो हो—यहाँ तक कि, इनके जीवनमें भी सन्देह हो जाय, तो हो जाय;पर ये जिस बात को धार लेती हैं, उससे पीछे क़दम नहीं रखतीं। ये देखनेमें पुष्पवत् कोमल दीखती हैं, पर हृदय इनका वज्रवत् कठोर होता है। इनको किसी पर दया-मया नहीं। इन्हें तो अपनी कुवासना पूरी करनेसे मतलब। अपनी कुवासना पूरी करनेके लिये, ये सब सुखोंके देने वाले पतिके प्राण नाश कर देती हैं, अपने जेठ ससुरको मरवा डालती हैं। यहाँ तक कि अपनी पेट की औलाद तक की हत्या पर उतारू हो जाती हैं। कहा है—

> आस्तां तावत्किमन्येन दौरात्म्येनेह योषिताम्।
> विधृतं स्वोदरेणापि घ्नन्ति पुत्रं स्वकं रुषा ॥

स्त्रियों के दौरात्म्य की बात कहाँ तक कहें ? ये क्रोध में आकर अपने पेटके पुत्र को भी मार डालती हैं।

महारानी पिङ्गला पर महाराज भर्तृहरि जान देते थे, अष्ट पहर चौंसठ घड़ी उसी का ध्यान रखते थे। महारानी रातको दिन और दिनको रात कहती, तो महाराज भी वैसा ही कहते। हर तरह उसकी आज्ञा पालन करने और हाँ में हाँ मिलानेको तैयार रहते थे। महाराज में कोई दोष भी न था। आप पूर्ण विद्वान् बलवान्, वीर्य्यवान् और सर्व्वकला-कुशल पुरूष थे; पर महारानी ऊपर से आप के चाहने का ढोंग करती थी, और भीतर से आप से उदासीन रह कर एक नीच को चाहती थी। महारानी जैसी रूपवती थी, वैसी ही चालाक, मक्कारा और दुश्चरित्रा थी। ऊपर से गोरी और भीतर से काली, प्रत्यक्ष में सुन्दर और अप्रत्यक्ष में असुन्दर; प्रकट में सती और अप्रकट में असती थी। उसने लोक-निन्दा और कुल की कान की परवा न करके, एक नीच नमकहराम अस्तबल के दारोग़ा से आशनाई कर ली। यह बात उसने बहुत दिनों तक महाराजसे छिपाई। महाराज जब महलों में आते, तब वह अपने हावभाव और नाज़-नख़रों से महाराज का मन हाथों में कर लेती। उनसे ऐसी-ऐसी बातें करती, जिनसे महाराज यही समझते, कि मेरी रानी सच्ची सती-साध्वी है। इस ज़माने की दूसरी सावित्री है। पर उनके पीठ फेरते ही वह दारोग़ा को बुलवा कर; उसके साथ ऐश-आराम करती। महाराज बेचारे इस त्रिया-चरित्र को समझ न सकते थे। किसी ने ठीक ही कहा है—

नृपस्य चित्तं कृपणस्य वित्तं मनोरथं दुर्जन मानवानां ।
स्त्रियाश्चरित्रं पुषरुस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः ॥

राजा के चित्त को, कृपण के धन को, दुष्टों के मनोरथ को, स्त्रियों के चरित्र को और पुरुष के भाग्य को देवता भी नहीं जानते, मनुष्य कौन चीज़ है ?

बहुत दिनों तक यह कलंक-कथा छिपी रही। मनुष्य अपने पापोंको कितनाही छिपावे, पर एक न एक दिन वे प्रकट हो ही जाते हैं, एक न एक दिन संसार उनको जान ही जाता है। मनुष्य, मनुष्य के गुप्त कामों को नहीं देख सकता; मनुष्य मनुष्य के दिल का हाल नहीं जान सकता; पर परमात्मा से कुछ नहीं छिपता। उसकी नज़र हर जगह पहुँचती है। वह सात कोठों के अन्दर भी मनुष्यके कुकर्मों को देख लेता है। वह घट-घट निवासी अन्तर्य्यामी मनुष्यमात्र के हृदय के भीतर की बात को जानता है। जब तक उसकी इच्छा नहीं होती, मनुष्य के कुकर्म छिपे रहते हैं; उसकी इच्छा होते ही उन्हें जगत् जान जाता है। मनुष्य, मनुष्य की आँखों में धूल झोंक सकता है; पर परमात्का की आँखों में धूल नहीं झोंक सकता है। जब तक समय नहीं आया, महारानी की पाप-लीला छिपी रही। समय आतेही, पहले-पहल वह गुप्त रहस्य राजकुमार विक्रम को मालूम हुआ। महारानी के कुकर्म की बात उनके कानों तक पहुँच गई। हाँ, महाराज अँधेरे ही में रहे।

भौजाई के पर-पुरुषरता होने की बात से राजकुमार विक्रम को

असह्य मनोवेदना हुई। उनका खाना-पीना, सोना-बैठना सब छूट गया। सोते-जागते हरदम वही ख़याल उनके नेत्रों के सामने चक्कर लगाने लगा। अपने सुप्रसिद्ध उच्च कुलमें दाग़ लगने और पूज्य भाई के अनिष्ट की आशंका से उन्हें नींद हराम हो गई। करवटें बदलते और छत की कड़ियाँ गिनते रातों पर रातें गुज़रने लगीं। उन्होंने अनेक बार महाराजसे यह बात कहने का विचार किया; पर महाराज का महारानी पर निश्चल विश्वास और अटल प्रेम देख कर साहस न हुआ। शेषमें, एक दिन मौक़ा पाकर, एकान्त में उनसे बात छेड़ ही तो दी। वे बोले,—"पूज्य अग्रज! आप मेरे पिताके समान ज्येष्ठ भ्राता हैं। आप सब तरहसे चतुर होशियार और परले सिरेके बुद्धिमान हैं; पर एक जगह आप धोखा खा रहे हैं। मेरा ऐसा कहना, छोटे मुँह बड़ी बात करना है। इच्छा तो नहीं होती कि, आपसे अर्ज़ करूँ। मेरी साँप छूछूँदर की सी गति हो रही है; कहूँ तो ख़राबी, न कहूँ तो ख़राबी। न कहने से कुल में दाग़ लगता है, बदनामी होती है और आपके जीवन में सन्देह होता है; कहने से आपका भय लगता है। आशा नहीं कि, आप मेरी सच्ची बात पर विश्वास करें। दिलको बहुत रोका, बहुत समझाया पर आज वह न माना, तब मजबूर होकर आपसे अर्ज़ करने का मन्सूबा किया। कहिये, क्या आप अपने प्यारे छोटे भाई और अपने तुच्छातितुच्छ सेवक की बात पर कान दीजियेगा?

"सुनिये, भाई साहब! क्या कहूँ, कहा नहीं जाता, गला रुका आता है, ज़बान लड़खड़ाती है; पर लाचारीसे कहना पड़ता है।

मैंने भाभी के सम्बन्ध में एक कलंकपूर्ण बात सुनी है। सुन कर ही मैंने उसे ठीक नहीं मान लिया; उसकी पूरी तरह से पोशीदा तौर पर तहक़ीक़ात भी की। जाँच में बात के सच्ची उतरने पर, मैंने आप से कहनेका दृढ़ संकल्प किया है। आप से मेरी विनीत प्रार्थना है कि, आप सावधान होकर चलें; अत्यधिक विश्वास अच्छा नहीं। शास्त्रकारों ने कहा है—

'नदीनांच नखीनांच श्रृंगीणां शस्त्रपाणिनां।
विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥'

"यह राई-रत्ती सच है। इसमें ज़रा भी झूठ नहीं। यह महावाक्य बड़े भारी अनुभव के बाद कहा गया है। महाराज—आप भाभीकी माया में भूल रहे हैं। स्त्रियोंका जो विश्वास करते हैं, उनको सती-साध्वी समझे रहते हैं, उन पर सन्देह भी नहीं करते, वे बड़ी भूल करते हैं। किसी विद्वान् ने ठीकही कहा है—

'यदि स्यात्पावकः शीतः प्रोष्णो वा शशलांछनः।
स्त्रीणां तदा सतीत्वं स्याद्यदि स्याद् दुर्जनो हितः ॥'

"अगर आग शीतल हो जांय, चन्द्रमा गर्म हो जाय, दुर्जन हितकारी हो जाय; तो स्त्रियों के सतीत्वका विश्वास हो। महाराज स्त्रियों की मीठी बातोंमें न भूलना चाहिये। इनकी बातें जैसी हैं, वैसा दिल नहीं है। कहा है—

छमुखेन वदन्ति वल्गुना प्रहरन्त्येव शितेन चेतसा।
मधु तिष्ठति वाचि योषितां हृदये हालाहलं महद्विषम् ॥'

"स्त्रियाँ सुन्दर मुँह से मनोहर-मनोहर बातें करती हैं और तीक्ष्ण चित्तसे प्रहार करती हैं। इनकी बातोंमें मधु और हृदय में हलाहल विष रहता है।"

राजकुमार विक्रम की सारी बातें चुपचाप सुनकर महाराजने कहा,—"भाई! तुमको भ्रम हुआ है। तुम्हारी बुद्धि विकृत हो गई है; तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है। महारानी पिंगला आदर्श सती हैं। इस समय उनके जैसी सती विरल हैं। वह रात-दिन मेरे लिये प्राण देती हैं, मेरा ही जप-तप और ध्यान करती हैं, मेरे सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी रहती हैं। ऐसी सतीको असती कह कर, उन पर कलंक-कालिमा पोतकर तुम अच्छा नहीं करते। ख़ैर, जो हुआ सो हुआ। तुम छोटे भाई हो, इससे क्षमा करता हूँ; अगर और कोई होता, तो अभी शूली पर चढ़वा देता। आज तो कहा सो कहा, किन्तु भविष्यमें फिर कभी ऐसी बेहूदा बात ज़बान से न निकालना।"

राजकुमारने, महाराजके इतना कहने पर भी, उन्हें बहुत-कुछ समझाया; कुछ प्रमाण भी दिये; पर पिंगलाके रंग में रँगे हुए महाराज पर कुछ भी असर न हुआ। अन्तमें जब राजकुमारने इससे सुफलकी कोई संभावना न देखी, तब मनमें यह समझकर कि, समय आये बिना कोई काम नहीं होता, समय आनेपर भाई की आँखें आप ही खुल जायँगी; उस समय चुप रह जाना ही उचित समझा।

कह चुके हैं, कि महारानी पिंगला बड़ी चालाक थीं। उन्हें

यह बात पहले ही मालूम हो गई, कि मेरे कुकर्म की बात—मेरे पापकर्मका रहस्य—राजकुमार जान गये हैं। इसलिये उन्होंने पहलेसे ही चाल चलनी शुरू कर दी। वे महाराज के प्रति पहले से भी अधिक प्रेम-भाव दिखाने लगीं। जब उन्हें अच्छी तरह से मालूम हो गया, कि महाराजके दिल में उनकी ओरसे ज़रा भी वहम नहीं है, उनका उन पर सोलह आने विश्वास है, उन्होंने एक दिन उन्हें खूब ही राज़ी करके, राजकुमार के विरुद्ध उनके कान भर दिये। कह दिया,—"आप बुरा न मानियेगा; आप के छोटे भाई की नीयत बड़ी ख़राब है। मैं उनकी माताके समान हूँ; पर वे इस बात को न समझ कर मुझे बुरी दृष्टिसे देखते हैं। और कोई होती, तो उनके फन्दे में फँस जाती; पर मुझ पर उनका फन्दा कोई काम नहीं कर सकता। परमात्मा ऐसे कुकर्मोंका मुँह न दिखावे। मैंने सुना है कि, वह अपने नगर-सेठ की पुत्रवधू पर भी आशिक़ हैं। उसके पीछे उन्होंने बहुत दिनों से दूतियाँ लगा रक्खी हैं। उस बेचारीको अनेक प्रकार से फुसलाया, तरह-तरहके लालच दिये; पर वह भी मेरी तरह सच्ची पतिव्रता है, इसलिये आजतक उनके जालमें न फँसी। अब सुनती हूँ, उन्होंने नगर-सेठको धमकी दी है। नहीं जानती, यह बात, कहाँ तक सच है। वे आपके सुनाममें बट्टा लगाते हैं। अतः मेरी विनीत प्रार्थना है, कि आप उन पर नज़र रक्खें—उनसे सावधान रहें।"

महारानी की इन बातोंको सुनकर महाराज सन्न हो गये,

मुँह सूख गया, चेहरा तमतमा आया, आँखें लाल हो गईं। उनका मन कभी कहता था:—"नहीं नहीं, ये सब नितान्त अमूलक बातें हैं। तुम्हारा भाई विक्रम ऐसा नहीं है। वह पण्डित है, वह पर-स्त्रियों को अपनी निज जननी के समान समझता है।" कभी उनका मन कहता था,—"हो सकता है, विक्रमका चरित्र ख़राब हो। पिंगला सी सती नारी मिथ्यादोष नहीं लगा सकती। इसे उससे क्या वैर है? हाय! भर्तृहरिका भाई और ऐसा दुराचारी!" इस तरह उधेड़बुन करते-करते, तानाबाना बिनते-बिनते, कभी इधर कभी उधर भटकते-भटकते, शेष में महाराजा का मन महारानी पिङ्गला की बातों पर ही ठहर गया। उन्हें विश्वास हो गया, कामिल यक़ीन हो गया, कि विक्रम सचमुच ही दुराचारी और व्यभिचारी है; पर इतने पर भी, उन्होंने प्रकाश्यमें भाईसे कुछ न कहा।

इधर तो रानीने महाराज को यही पट्टी पढ़ायी; उधर नगर-सेठको बुलवाकर उससे कहलवाया कि, तुमसे कहूँ सो करो, नहीं तो तुम्हारी जान की ख़ैर नहीं। राजा मेरी मुट्ठीमें हैं। मैं तुम्हारे बच्चे-बच्चेको कोल्हूमें पिलवा कर तुम्हारा सर्वस्व अपहरण करा लूँगी।

नगरसेठही क्यों—सारा नगर जानता था, कि महाराज पिंगलाके हाथकी कठपुतली हैं। वह जो नाच नचाती है, महाराज वही नाच नाचते हैं। इसलिये सेठजीने हाथ जोड़कर कहलवाया—"महारानीजी! आप इतनी बातें क्यों कहती हैं?

दास तो आपकी आज्ञासे बाहर नहीं। आपका हुक्म सर-आँखों पर। जो हुक्म कीजिये, गुलाम वही करनेको तैयार है।

सेठकी यह बात सुनकर रानीने कहलवाया—"आप जानते ही हैं, कि राजकुमार विक्रम कैसे अत्याचारी हैं। प्रजा को कितना कष्ट देते हैं। महाराज स्वयं तो राजकाज देखते नहीं, सारा काम राजकुमार ही चलाते हैं। मैं नहीं चाहती, कि वह प्रजाको कष्ट दें। इसवास्ते किसी तरह महाराज का मन ख़राब करके, उन्हें यहाँ से नौ-दो ग्यारह करवाना चाहती हूं। यह काम आपकी सहायतासे बड़ी आसानीसे हो जायगा। आप कल राज-सभामें जाकर पुकार कीजिये, कि महाराज! आपके छोटे भाई साहब बहुतही अत्याचारी, अनाचारी और व्यभिचारी हो गये हैं। बहुत दिनोंसे मेरी पुत्रवधू को अपनी प्रणयिनी बनानेकी चेष्टा कर रहे हैं। उन्होंने उसके फँसाने के लिये बड़े-बड़े जाल फैलाये, पर मेरी सती-सावित्री सी पुत्र-वधू उनके जालमें न फँसी; इसी से मेरी इज़्ज़त-आबरू अबतक बची हुई है। आप यदि न सुनेंगे, तो मैं आपका राज्य छोड़ कर किसी और राजाके राज्यमें चला जाऊँगा।"

नगरसेठ रानी की बातों पर राज़ी हो गया। दूसरेही दिन, जब कि महाराजकी सभा लगी हुई थी, हाली-मुहाली, कामदार, मुसाहिब, मन्त्री, सेनापति प्रभृति सब बैठे हुए थे; नगरसेठ, दरवाज़ेसे ही, कानोंके पर्दे फाड़नेवाला "फरियाद है" "फरियाद है" का शोर मचाता हुआ, राज-सभामें पहुँचा। महाराजने उसे सामने बुला

कर उसकी फरियाद सुनी। उसने रानी की सिखाई हुई सारी बातें ज्यों की त्यों महाराजको कह सुनाईं। महाराजके दिल में रानीने पहले ही ये बातें बैठा दी थीं। अब सेठकी शिकायतसे उन्हें कोई सन्देह न रह गया। रानीकी कही हुई सारी बातें उनके नेत्रों के सामने नाचने लगीं। उनका चेहरा क्रोधके मारे लाल हो गया।

राजकुमार उस वक्त सभामें ही बैठे थे। वे इस बातको सुनकर, मनमें समझ गये, कि यह षड्यन्त्र पिङ्गलाका रचा हुआ है। उन्होंने सेठसे कहा,—"सेठजी! भगवान् का भय करो, मनुष्यसे मत डरो। इस बुढ़ापेमें स्वार्थके लिये झूँठ बोल कर क्यों पापकी गठरी बाँधते हो? परमात्मा सब देखता है। उसकी नज़रों से कुछ भी नहीं छिपा है। मैं तुम्हारी पुत्रबधूको जानता भी नहीं। मैं नहीं जानता, वह काली है या गोरी, भली है या बुरी। मेरी तो वह माताके समान है। मैं पर-स्त्रियोंको अपनी जननीके समान समझता हूँ। जिसमें आपका पुत्र तो मेरा मित्र है। मित्रकी स्त्री तो सच्ची माता ही होती है। कहा है:—

> राजपत्नी गुरोःपत्नी मित्रपत्नी तथैव च।
> पत्नीमाता स्वमाता च पंचैता मातरःस्मृताः॥

"राजा की स्त्री, गुरुकी स्त्री, मित्रकी स्त्री, स्त्रीकी माता और अपनी मा—ये पाँच माता कहलाती हैं। इसके सिवा, मैं अपनी विवाहिता स्त्री को छोड़कर, जगत् की सभी नारियों को माता समझता हूँ; क्योंकि जो पराई स्त्रियों को माता के समान नहीं

मानता, वह महा मूर्ख है। उसके पापका प्रायश्चित्त नहीं। पर-स्त्री-गामी को नरकों की असह्य यंत्रणा सहनी पड़ती है। शास्त्रों में कहा है—

मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत्।
आत्मवत्सर्वभतानि यः पश्यति सपश्यति ॥

"पर स्त्रियोंको माताके समान, पराये धनको मिट्टीके ढेलेके समान और सब प्राणियोंको अपने समान समझता है, वही देखता है और तो अन्धे या अज्ञानी हैं।

आप धर्मसे डरिये; धर्मके सिवा कोई सच्चा साथी नहीं है। और सब जीतेजी के साथी हैं; मरने पर कोई साथ न देगा। आप मुझ पर वृथा दोषारोप करके यदि अपना मतलब बना लोगे, तो क्या होगा ? पार्थिव धन-वैभव आपके साथ न जायँगे। धन-वैभव का क्या ठिकाना ? आज है, कल नष्ट हो जाय। कहा है:—

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥

शरीर अनित्य है, ऐश्वर्य्य अनित्य हैं, और मृत्यु सदैव पास है, इसलिये धर्म करो।

और भी कहा हैं—

चलालक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चले जीवितमन्दिरे।
चलाचले च संसारे धर्म एकोहि निश्चला ॥

"इस चराचर जगत् में धन-प्राण सभी चलायमान हैं; केवल धर्म ही निश्चल है। अतः सेठजी! धर्मको न छोड़ो। धर्मसे डर कर, आप अपनी बातको वापिस लीजिये। आप किसी के बहकाने से मुझ पर मिथ्या दोष लगा रहे हैं। जब इस बात की जाँचकी जायगी, तब सारा भण्डा फूट जायगा—आपका जाल खुल जायगा। उस समय आपकी क्या दशा होगी, जानते हो?"

राजकुमारकी ये बातें सुनते ही, महाराज भर्तृहरि लाल-पीली आँखें करके बोले—"अरे कुलाङ्गार! नीच! अधम! पापी! तू मेरे सामने ज़ियादा बातें न बना। मैं तेरे सब हालोंको जानता हूँ। अब तेरी चालाकी और मक्कारी न चलेगी। यदि अपनी जीवन-रक्षा चाहता है; तो इसी क्षण मेरे नगर से निकल जा! शीघ्र काला मुह कर! मैं तेरा यह काला मुँह देखना पसन्द नहीं करता! शीघ्र ही मेरी नज़रके सामनेसे हट जा, नहीं तो तुझे अभी शूली पर चढ़वा दूँगा! राजा पिता है; प्रजा पुत्रके समान है। राजा ही यदि ऐसा अन्याय करे, तो प्रजा किसके पास जाय? मैं प्रजाके सुखसे सुखी और प्रजा के दुःखसे दुःखी रहता हूँ। दूर हो मेरे सामने से! दूर हो!!"

भाई की ये बातें सुनकर राजकुमार विक्रमने कहा—"भाई! मैं तो अभी—इसी क्षण चला जाऊँगा। आपके राजमें जल भी न पीऊँगा। पर आप क्रोधान्ध होकर क्या कर रहे हैं! आपको कम-से-कम इस मुक़द्दमे को जाँच तो करनी थी। इस तरह इक-

तरफा फैसला देना, किसी भी राजा या विचारक को शोभा नहीं देता। अगर आप इसी तरह न्याय करेंगे, तो आपकी प्राणप्यारी प्रजा का नाश हो जायगा, वह आपसे दुःखी होकर और राज्योंमें जा बसेगी। आप जिसके हाथ की कठपुतली बन रहे हैं, वह आपके साथ छल कर रही है। उसके सुखमें मैं ही एक काँटा हूँ; इसलिये वह मुझे निकलवानेकी ग़रज़से ही ये जाल रच रही है। खैर, मैं तो जाता हूँ; पर आपके अनिष्ट की आशङ्का अब भी मेरे हृदयमें खलबली मचाती है। आपको एक दिन पछताना होगा। आपका हृदय मुझे याद करके रोयेगा। परमात्मा आपका मङ्गल करे, आपकी आँख भी मैली न हो।" यह कह कर राजकुमार फौरन सभा-भवन से निकल वनको चले गये। महाराज सिर पर हाथ धर कर कुछ सोच में पड़ गये। इसके बाद कई वर्ष निकल गये। कोई नई घटना न घटी।

नगरी का एक दरिद्र ब्राह्मण, अपनी इष्ट-सिद्धिके लिये वनमें जाकर किसी देवता की घोर तपस्या करता था। उसे तप करते हुए अनेक वर्ष बीत गये। तप:कष्टसे जब उसका शरीर एकदम कृश हो गया; तब देवता का आसन हिला। उसने ब्राह्मणके सामने सशरीर आकर उस से कहा—"ब्राह्मण! मैं तेरी तपस्या से अतीव सन्तुष्ट हुआ हूँ, इसलिये तुझे यह "फल" देता हूँ। यह फल मामूली फल नहीं है। इसका नाम "अमर फल" है। इसके खानेवाले पर मौत का ज़ोर नहीं चलता। मृत्यु उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकती। तू इसे खाकर पृथिवी पर अमर रह और



देवता ब्राह्मण की तपस्या से सन्तुष्ट होकर उसे अमरफल प्रदान कर रहे हैं।

सुखपूर्व्वक अपनी ज़िन्दगी बसर कर !" यह कह कर और फल देकर देवता अन्तर्द्धान हो गया।

ब्राह्मण उस "अमरफल" को लेकर अपने घर आया और अपनी स्त्री को उस फलका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। ब्राह्मणी उस फलकी बात सुन कर सन्तुष्ट नहीं, वरन् असन्तुष्ट हुई। उसने कहा—"नाथ ! देवताने आपको 'अमर फल' दिया है; पर इससे अपना कष्ट घटनेके बजाय उल्टा बढ़ेगा। अगर वह धन देते तो हमारा भला होता। हम लोग जन्म से दरिद्र हैं। हमारे घरमें प्रत्येक वस्तुका अभाव है। आजकल धन बिना सुख कहाँ ? धन बिना समाजमें प्रतिष्ठा कहाँ ? जिसके पास धन है, वही सुखी है। निर्धनको इस जगत्में सुख नहीं। दरिद्री से भाई-बन्धु लजाते हैं; उसे अपना कहने में भी उन्हें शर्म आती है; इसलिये वे लोग अपना रिश्ता या सम्बन्ध तक छिपाते हैं। दरिद्र विपत्तियों का घर है। यह मरणका दूसरा पर्य्याय है। नाथ! दरिद्र देहधारियों को परम दुःख और अपमान है। दरिद्रीको नाते-रिश्तेदार मरा हुआ ही समझते हैं। शौचसे शेष रही मिट्टी की क़ीमत है, पर दरिद्री की क़ीमत नहीं; निर्धन उस मिट्टी से भी निकम्मा है। हम लोग दरिद्रके मारे योंही इस ज़िन्दगीसे आरी आरहे हैं, अब तो अपना कष्ट औरभी बढ़ जायगा। अबतक यह आशा तो थी, कि कभी मृत्यु आकर हमारे कष्टोंका अन्त कर देगी, पर जब यह फल खा लिया जायगा, तब तो अनन्त काल तक महादारिद्र्य कष्ट भोगना पड़ेगा। सारी ज़िन्दगी, जिसका ओर-छोर नहीं,

दरिद्रावस्था में ही व्यतीत करनी पड़ेगी। यह फल तो उनके लिये अच्छा है, जिन्हें परमात्माने धन-रत्न-राजपाट प्रभृति सभी संसारी सुख दिये हैं। आप यदि मेरी सलाह मानें, तो इसे महाराजा भर्तृहरि को दीजिए और उनसे बदलेमें धन लेकर सुखसे शेष जीवन व्यतीत कीजिये।"

बहुत कुछ तर्क-वितर्क और सोच-विचारके बाद ब्राह्मण-देवता भी इसी बात पर जम गये। उन्हें ब्राह्मणीकी बात ही सोलह आने ठीक जँची। इसलिये वह कपड़े पहन, फल हाथमें ले, महाराजकी सभामें पहुँचे। चोबदारने ख़बर दी। महाराज ने उस ब्राह्मणको अपने निकट बुला लिया और पूछा—"देवता! क्या चाहते हो? आज्ञा कीजिये; इसी क्षण आपकी आज्ञा पालन की जायगी।" ब्राह्मणने उस अमर फलकी सारी कहानी सुना कर, वह फल राजाके हाथमें दे दिया। राजाने उसे खुशीसे ले लिया और ब्राह्मणको कई लक्ष सुवर्ण मुद्रा देनेका हुक्म दिया। ब्राह्मण अशरफियाँ लेकर हँसता-हँसता अपने घर आया।

अब महाराज मन-ही-मन विचार करने लगे—"वास्तवमें यह फल परमात्मानेही दया करके मेरे पास भिजवाया है। पर अब यह समझमें नहीं आता, कि इस फलको मैं खाऊँ या अपनी प्राण-प्रतिमा, प्राणाधिका, प्राणप्रदा रानी पिङ्गलाको खिलाऊँ। अगर मैं इसे खाऊँगा, तो सदा अमर रहूँगा; मेरा रूप-यौवन सदा स्थिर रहेगा, दुःखदायी बुढ़ापा पास न आवेगा; पर मेरी



तपस्वी ब्राह्मण महाराजाधिराज भर्तृहरि को "अमरफल" दे रहा है।



महाराजाधिराज भर्तृहरि "अमरफल" जैसे दुर्लभ फलको आप न खाकर, अपनी प्यारी रानी पिंगला को देते हैं।

प्यारी पिङ्गला, मेरे सुखों की मूल पिङ्गला तो कुछ दिन बाद ही बूढ़ी हो जायगी—उसका यह रूप-लावण्य नष्ट हो जायगा। उस दशा में, मैं किसके साथ सुख उपभोग करूँगा? इसलिये मैं इसे पिङ्गला को ही खिलाऊँगा। वह यदि अमर रहेगी, वह यदि बूढ़ी न होगी, यदि उसकी सौन्दर्य्य-प्रभा ज्यों की त्यों बनी रहेगी; तो मैं उसी के साथ संसारी सुखों का आनन्द उपभोग करूँगा। यह सोच और इस विचार पर दृढ़ हो, महाराजा फल को हाथ में लेकर रनवास को चल दिये।

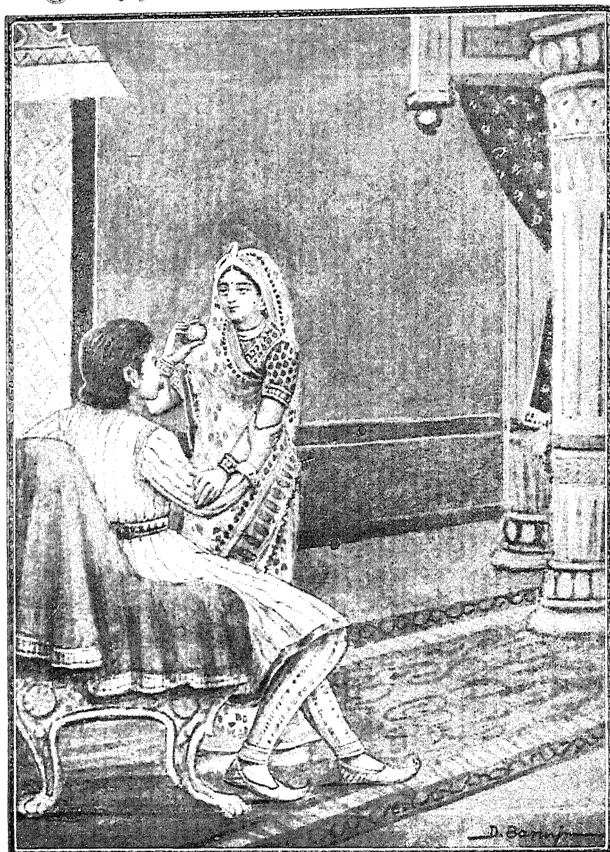
महाराज के महल के द्वार पर पहुँचते ही दासियों ने जाकर महारानी को महाराज के आगमन की सूचना दी। पिङ्गला शीघ्र ही तैयार हो उन्हें लेने के लिये द्वार तक आई और उनके गले में हाथ डाल उन्हें अन्दर लिवा ले गई। उन्हें एक परमोत्कृष्ट आसन पर बिठा, आप भी उनकी बग़लमें बैठ गई और अपने हाव-भाव और नाज़ो-नखरों से उनका मन अपने हाथों में करने लगी। शेष में पूछा—"महाराज! आज असमय में इस दासी पर कैसे कृपा की?" महाराज ने कहा—"प्रिये! आज एक अपूर्व फल मेरे हाथ लगा है। उसी को लेकर तुम्हारे पास आया हूँ।"

रानी ने कहा—"महाराज! वह फल मुझे दिखाइये और यह भी बताइये, कि उसमें ऐसा कौनसा गुण है, जिससे आप उसकी इतनी लम्बी-चौड़ी तारीफ़ करते हैं?

राजा ने कहा—"रानी यह फल, जिसे आप मेरे हाथमें देख रही हैं, "अमरफल" है। इसे एक देवता ने एक ब्राह्मण को उसके

तपसे सन्तुष्ट हो कर दिया था। ब्राह्मण ने इसे मुझे दिया। इसमें यह गुण है, कि इसका खाने वाला न कभी बूढ़ा होता है और न कभी मरता है; सदा नौजवान बना रहता है। मैं चाहता हूँ कि, इस फल को तुम खाओ, जिस से तुम सदा नवयुवती बनी रहो—तुम्हारा रूपलावण्य सदा आज जैसाही बना रहे।" यह कह कर राजाने वह अमर फल रानी के हाथ में दे दिया।

रानी उस फल को हाथ में लेकर कहने लगी,—नहीं प्राणनाथ! आपही इस फल को खायँ; क्योंकि आप ही मेरी माँग के सिन्दूर हैं, आप ही से मेरा सौभाग्य है, आप ही मेरे सूर्य और चाँद हैं, आपही से मुझे जगत् में उजियाला है। परमात्मा सदा आप को अजर-अमर रखे, इसी में मेरा सुख-सौभाग्य है।" रानी की ये बातें बनावटी थीं। मुँह में राम और बग़ल में छुरी वाली बात थी। उसके पेट में कपट की कतरनी चल रही थी। राजा उसके जाल में पूर्णरूप से फँसे हुए थे, इसलिये वह उसके फरेबों को कैसे समझ सकते थे? उन्होंने फिर कहा,—"नहीं, यह फल तुमको ही खाना होगा। तुम्हारे फल खाने से ही मुझे सन्तोष होगा।" रानी तो यह चाहती ही थी, फलको राजा न खावे और वह मेरे हाथ में रहे; इसलिये शेष में वह राज़ी हो गई और कहने लगी—"आपकी आज्ञा को मैं उल्लङ्घन नहीं कर सकती। जिसमें आप राज़ी, उसीमें मैं राज़ी हूँ। आपके ही सन्तोषमें मुझे सन्तोष है। आप का जब यही हुक्म है, तो मैं ही इस फल को खाऊँगी; पर यह देवताका दिया हुआ है, इसलिये इसे अशुद्ध अवस्थामें न



महाराजाधिराज भर्तृहरि की परमप्यारी रानी पिंगला, महाराज का दिया हुआ 'अमरफल' अपने यार दारोग़ा को दे रही है ।

खाऊँगी। स्नान-ध्यान पूजा-पाठ करके खाऊँगी।" राजा उस मक्कारा की बात पर राज़ी हो गये और फल देकर सभा में लौट आये।

राजाके पीठ फेरते ही, रानी ने दासी भेजकर, अपने उपपति-अस्तबल के दारोग़ा-को बुला भेजा। वह शैतान सन्देशा पाते ही दौड़ा चला आया। रानी उसे लेने को दरवाज़े पर पहुँची और उसके गले में हाथ डालकर महल में ले आई। उसे मख़मली पलँग पर बैठाकर, आप उसकी गोदमें पड़ गई और उसे प्यार करने लगी।

दारोग़ाने पूछा—"रानी साहिबा, आज यह ग़ुलाम असमय में ही क्यों याद किया गया? क्या बात है?"

रानी—प्यारे! आज महाराज ने मुझे एक फल दिया है। उस के खाने से मनुष्य अमर बना रहता है, जवानी सदा स्थिर रहती है, बुढ़ापा कभी नहीं आता। राजा साहब मुझसे उस फलके खाने को कह गये हैं। मैंने उनसे वादा भी कर लिया है। पर प्राणाधार! संसार में मुझे आपसे अधिक कोई प्रिय नहीं, आप ही मेरे सुख के कारण हो, आप ही से मेरा आनन्द है; इसलिये मैं चाहती हूँ, कि आपही उस फल को खावें।

दारोग़ा— अच्छा प्यारी! आपकी आज्ञा सर आँखों पर। मैं ही इसे खाऊँगा। पर वह देव-दत्त वस्तु है, इसलिये पवित्र हो कर खानी चाहिये। मैं अभी जाकर क्षिप्रा में स्नान करूँगा और उसे खा लूँगा।

यह सुनते ही रानी ने दारोग़ा को वह फल दे दिया। वह भी

फल ले कर चलता हुआ। रानी उसे द्वार तक पहुँचा आई। दारोग़ा जाते-जाते राह में सोचने लगा—"उस रण्डी को मैंने अच्छा चकमा दिया। मैं इस फल को खाऊँगा, तो क्या फ़ायदा होगा? यदि मैं अपनी आशना को खिलाऊँगा, तो सचमुच ही बड़ा लाभ होगा। मेरी प्राणप्यारी इसके खाने से सदा आज जैसी ही रूपलावण्य-सम्पन्ना नवयुवती बनी रहेगी और मैं सदा उसके-साथ आनन्द उपभोग करूँगा।" यह सोचता हुआ वह अपनी आशना—वेश्या के मकान पर जा पहुँचा। उस समय वह वेश्या एक तकिये के सहारे बैठी हुई थी। उसके चन्द यार उसकी सेवा में बैठे थे। दारोग़ा साहब को वेश्या ने आदर से सामने बिठाया और आने का कारण पूछा।

दारोग़ा ने कहा—"प्रिये! आज मुझे एक अद्भुत फल मिला है। इसको खानेवाला कभी बूढ़ा नहीं होता और मृत्यु उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकती। मैं चाहता हूँ, इस फल को तुम खाओ। तुम्हारे सदा-सर्वदा आज जैसी नवयुवती बनी रहने से मेरी ज़िन्दगी सुख से कटेगी।"

वेश्याने कहा—"अच्छा प्यारे! आप की आज्ञा मैं टाल नहीं सकती। मैं स्नान करके इस फल को खाऊँगी।"

वेश्या की यह बात सुनते ही दारोग़ा ने वह अमर फल उसे दे दिया और आप अपने डेरे को चला आया। उसके जाते ही वेश्या सोचने लगी—"मुझे सारी उमर पाप कमाते बीती। न जाने इतने पापों का ही मुझे क्या-क्या दण्ड भोगना होगा? यदि मैं इस फल



नमकहराम दारोग़ा साहब दुराचारिणी अमली रानी के दिये हुए अमरफल को अपनी प्रणयिनी वेश्या को दे रहे हैं।



सारथी की प्यारी वेश्या उसी 'अमरफल' को लेकर महाराजा भर्तृहरि के सामने खड़ी है। वह उस फल को महाराज को देना चाहती है।

को खाऊँगी, तो अनन्तकाल तक इस तरह पापों की गठरियाँ बटोरती रहूँगी; अतः मुझे यह फल खाना हरगिज़ मुनासिब नहीं। इसे तो मेरे प्यारे महाराज भर्तृहरि खायँ तो अच्छा। उनके अजर अमर रहनेसे मेरी आत्माको सन्तोष होगा। ऐसे राजाके राज्य में प्रजा सदा सुखी रहेगी। हमारे महाराज आदर्श राजा हैं। ऐसे राजा बहुत कम हैं।" यह सोचकर, वह कपड़े-लत्तोंसे टिचन हो, फल लेकर राजसभा की ओर चली। सभामें पहुँचते ही चोपदार ने महाराजको ख़बर दी, कि बाईजी साहिबा तशरीफ लाई हैं। महाराजने वेश्याको सामने बुलाया और उसके बेवक्त आनेका सबब पूछा।

वेश्याने कहा,—"महाराज! आज मुझे एक अपूर्व फल मिला है। यह फल अजीब तासीर रखता है। इसके खानेवाला सदा अमर रहता है। मैं इस फलको खाऊँगी, तो सदा पाप कमाऊँगी; इसलिये यह फल आप ही के खाने योग्य है। आप अजर अमर रहेंगे, तो पृथ्वी सुखी रहेगी।"

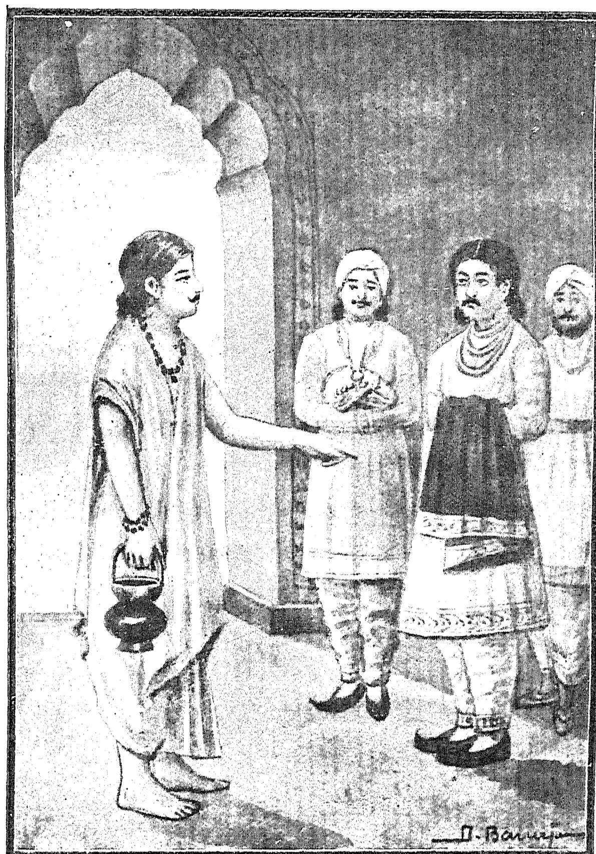
वेश्या के हाथ में उस फल को देख तथा उसकी बातें सुनकर महाराज के चेहरे का रंग उड़ गया। वह आश्चर्य्य चकित हो गये। ऊपरका साँस ऊपर और नीचेका साँस नीचे रह गया। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो सोचमें पड़ गये। शेषमें; होश-हवाश ठिकाने आने पर, उन्होंने वह फल वेश्याके हाथसे ले लिया और धोकर खा गये।

परमात्मा की इच्छासे ही वह फल घूमघाम कर फिर राजा के

पास पहुँचा। राजा ने अनुसन्धान द्वारा सारा भेद जान लिया। उन्हें पिङ्गला के छल-छिद्र-युक्त कपट व्यवहार पर बड़ी घृणा उत्पन्न हो गई। उन्हें अपनी सब से अधिक प्यारी रानी के दुर्व्यवहार और विश्वासघात से बड़ा दुःख हुआ। उनके दिलपर सख़्त चोट लगी। उन्हें मालूम हो गया, कि स्त्रियोंकी प्रीतिमें सार नहीं; स्त्री-जातिकी मुहब्बत का कोई ठिकाना नहीं। उन्हें संसार से विरक्ति हो गई। उन्हें संसार और विषयभोगों से एकदम नफ़रत हो गई। उन्होंने समझ लिया, संसार में कोई किसी का नहीं है। यह मिथ्या जाल है। इसमें फँस कर लोग अपना दुष्प्राप्य जीवन वृथा खोते हैं। उन्होंने अपने तईं धिक्कारते हुए कहा।

"यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता।
साप्यन्यमिच्छति जनं सजनोऽन्यसक्तः॥
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या।
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च॥"

मैं जिसको सदा चाहता हूँ, वह (मेरी रानी पिंगला) मुझे नहीं चाहती; वह दूसरे पुरुष को चाहती है! वह पुरुष (दारोग़ा) रानी को नहीं चाहता; वह दूसरी ही स्त्री पर मरता है! वह स्त्री जिसे रानीका यार दारोग़ा चाहता है, वह मुझे चाहती है! इसलिये रानी को धिक्कार है! उस दारोग़ाको धिक्कार है! उस वेश्याको धिक्कार है! मुझको धिक्कार है और उस कामदेव को धिक्कार है, जो ये सब काण्ड कराता है।



महाराजाधिराज भर्तृहरि को संसार से विरक्ति होगई है। आप राजपाट, धनदौलत प्रभृति को तृणवत् परित्याग कर वन को जा रहे हैं।

इस घटना से संसार महाराज के लिये बिल्कुल ही बुरा मालूम होने लगा। आपने प्रधान मंत्रीको सामने बुला, राजका सारा काम उसे सम्हला, अपनी राजसी पोशाक उतार कर उसे दे दी और

"भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम् ।
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ॥
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयम् ।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥

"अहौ व हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा ।
मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा ॥
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यांतु दिवसाः ।
क्वचित्पुण्यारण्ये शिवशिवशिवेति प्रलपतः ॥"

"विषयों के भोगनेमें रोगोंका भय है, कुलमें दोष होने का भय है, धनमें राजका भय है, चुप रहनेमें दीनता का भय है, बल में शत्रुओंका भय है, सौन्दर्य में बुढ़ापे का भय है, गुणों में दुष्टों का भय है, शरीर में मौत का भय है, संसार की सभी चीज़ों में मनुष्यों को भय है, केवल "वैराग्य" में किसी प्रकार का भय नहीं है।

"हे परमात्मन्! मेरे शेष दिन किसी पवित्र वन में शिव-शिव रटते बीतें; सर्प और पुष्पहार, बलवान् शत्रु और मित्र, कोमल पुष्प-शय्या और पत्थर की शिला, मणि और पत्थर, तिनका और

सुन्दरी कामिनियोंके समूह में मेरी दृष्टि एक सी हो जाय—यही मेरी इच्छा है।"

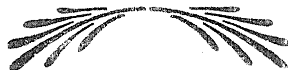
यह कहते हुए आपने सारा राज-पाट धन-दौलत प्रभृति एक क्षणमें त्याग कर वन का रास्ता लिया। चलते समय उन्होंने मन्त्री से और भी कहा,—"मैंने अपने धर्मात्मा और सत्यवादी सहोदर भाई विक्रमके साथ बड़ा अन्याय किया! उस समय मेरी अक्ल पर पर्दा पड़ा हुआ था। मुझे उचित-अनुचित का ज़रा भी ज्ञान नहीं रहा था। उस कुलटा ने मुझ पर जादू सा कर दिया था। मैं अब संसार के लोगों को सलाह देता हूँ कि, वे अगर सुख से जीवन बिताना चाहें, तो स्त्रियों का विश्वास न करें और जो परमपद के अभिलाषी हों, वे तो उनका नाम भी न लें। मन्त्रीवर! आप विक्रमका पता लगाना। यदि वह मिलजाय, तो उसे राज-गद्दी पर बिठा देना।"

यदि महाराज भर्तृहरि चाहते, तो रानी पिंगला को जीती ही ज़मीन में गड़वा देते, उस दारोग़ाको तोप के मुँह से बँधवा कर उड़वा देते तथा और शादी कर लेते; पर आप को तो निर्मल ज्ञान हो गया था, आप संसारकी असलियतको समझ गये थे, इसी से आप को संसार से घृणा हो गई। आपने उपभोग, वस्त्र, चन्दन, वनिता, रत्न और राज-पाट सब को तृण के समान समझ कर एक क्षणमें त्याग दिया। ऐसा सब किसी से नहीं हो सकता। ऐसा उनसे ही होता है, जिन पर जगदीश की दया होती है या पूर्व्व संचित पुण्यों का उदय होता है। मनुष्य से फूटे-टूटे हाँड़ी

बर्तन और गुदड़े ही नहीं छोड़े जाते, कोरी इच्छाओंका भी त्याग नहीं होता, तब राजपाट और धन-दौलतका छोड़ना तो बड़ी बात है।

महाराजा भर्तृहरि भूपालों में आदर्श भूपाल हो गये हैं। उन्होंने जो किया है वह शायद ही कोई भूपाल उनके बाद कर सका हो। जब तक सूर्य्य चन्द्रमा रहेंगे, जब तक यह दुनियाँ रहेगी, तब तक महाराजका प्रातःस्मरणीय पुण्यश्लोक नाम लोगोंकी ज़बान पर रहेगा।

हमने महाराजा भर्तृहरि और महाराजा विक्रमादित्य के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह एक थियेट्रिकल कम्पनी के तमाशे और एक पुरानी पुस्तक के आधार पर लिखा है, जो हमने, कोई २५ साल पहले, एक पब्लिक की लाइब्रेरी में अङ्गरेजी और हिन्दीमें देखी थी। हमें जो याद था वही लिखा है। इस समय न तो हमारे पास वह पुस्तक ही है और न हमें उसका नाम ही याद है।



॥ श्रीः ॥

भर्तृहरिकृत

नीति-शतक ।

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्त्तये ।
स्वानुभूत्येकसाराय नमः शान्ताय तेजसे ॥१॥

दशों दिशाओं और तीनों कालों में परिपूर्ण, अनन्त और चैतन्यस्वरूप, अपने ही अनुभव से प्रत्यक्ष होने योग्य, शान्त और तेजोरूप परब्रह्म को नमस्कार है ।

भारतीय कवि या ग्रन्थकार अक्सर, अपने ग्रन्थ के बिना विघ्न-बाधा सुख से समाप्त होने के लिये, ग्रन्थके आदि मध्य और अन्त में, मङ्गलाचरण किया करते हैं । इस "नीतिशतक" के कर्त्ता योगिराज राजर्षि भर्तृहरि महोदय भी अनन्त, अविनाशी और आत्मज्ञान से प्रत्यक्ष होने योग्य परब्रह्म परमात्मा की वन्दना करके ग्रन्थारम्भ करते हैं ।

सोरठा—सर्ब दिशा सब काल, पूरि रह्यो चैतन्य घन ।

सदा एकरस चाल, बन्दन वा परब्रह्मको ॥१॥

1. To One unlimited by time or space, to the Boundless, to Him Who is all consciousness, to One Who is the essence of self-contemplation and to the Supreme Peace and Light, I bow down in prayer.

यांचिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साप्यन्यमिच्छति जनं सजनोऽन्यसक्तः ।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या,
धिक् तां च तं च मदनंच इमां च मां च ॥ २ ॥

मैं जिसके प्रेम में रात-दिन डूबा रहता हूँ—किसी क्षण भी जिसे नहीं भूलता, वह मुझे नहीं चाहती; किन्तु किसी और ही पुरुषको चाहती है ? वह पुरुष किसी और स्त्री को चाहता है ! इसी तरह वह स्त्री मुझे प्यार करती है ! इसलिये उस स्त्री को, मेरी प्यारी के यार को, प्यारी को, मुझ को, और उस कामदेव को, जिसकी प्रेरणा से ऐसे ऐसे काम होते हैं, अनेक धिक्कार हैं !

इस श्लोक में महाराज अपनी प्यारी रानी पिङ्गला पर इशारा करते हैं । यद्यपि महाराजा पूर्ण विद्वान् और चतुर नरेश थे, तथापि इस रानी के एकदम वशीभूत हो गये थे। स्त्रियाँ जितेन्द्रिय मुनियों को भी वशीभूत करके विषयाभिलाषी बना देती हैं, तब अजितात्माओं का तो कहना ही क्या है ? कहते

हैं—धनी होकर किसने गर्व नहीं किया? किस विषयी की आपत्ति नाश हुई? राजा का प्यारा कौन हुआ? काल से किसका नाश न हुआ? किस माँगनेवाले का मान रहा? दुष्टों की सङ्गति से किस की कुशल हुई और स्त्रियों से किसका मन खण्डित न हुआ? स्त्रियों के सम्बन्ध में शास्त्रों में लिखा है—

स्त्री किसी के साथ बात करती है, किसीको विलास-पूर्वक देखती है और दिलमें किसीका विचार करती है। स्त्रियों का प्यारा कोई नहीं। जब तक स्त्री पुरुष को अपने ऊपर मोहित नहीं कर लेती, तब तक उसे हर तरह से प्रसन्न करती और मधुर भाषण करती है, ज्योंही उसे काम के वशीभूत देखती है, त्योंही उसे माँस ग्रहण करनेवाली मछली की तरह उठा लेती है। जब पुरुष उसके वश में हो जाता है,—जब उसका बल बढ़ जाता है, तब वह पंख-नुचे हुए कव्वे की तरह उससे खेल करती है।

स्त्रियाँ मुँह से मनोहर बातें कहती हैं और तीक्ष्ण नेत्रोंसे चोट करती हैं। इनके सामने करालमुख सिंह, मदमत्त गजराज और बुद्धिमान समरशूर भी कायर हो जाते हैं।

स्त्रियाँ शम्बर की माया, नमुचिकी माया तथा बलि और कुम्भीनस की माया को जानती हैं। जिन शास्त्रोंको वृहस्पति और शुक्र जानते हैं, उन्हें ये स्वभाव से ही जानती हैं।

स्त्रियाँ मोहित करतीं, मद पैदा करतीं, प्रसन्न करतीं, घुड़-

कियाँ देतीं, रमण करतीं, विषाद करतीं, हँसते के साथ हँसतीं, रोते के साथ रोतीं, समय-योग से अनुरक्त को प्यारी-प्यारी बातों से ग्रहण कर लेतीं एवं असत्य को सत्य और सत्य को असत्य करती हैं—इनकी माया अपरम्पार है। झूठ, साहस, माया, मूर्खता, अतिलोभ, अपवित्रता और निर्दयता ये तो इनके स्वाभाविक दोष हैं।

अपना पति कैसा ही बलवान और रूपवान हो, वह हर तरहसे प्यार करता हो; दासकी तरह आज्ञा पालन करता हो, घर में सब तरहके सुखैश्वर्य्य के सामान हों; पर असती स्त्री इन सब को तिनके के समान समझती है। अगर उसे एकान्त में नीच, लँगड़ा, लूला और कोढ़ी भी मिल जाय, तो वह अपने सुन्दर पति को न भजकर उस नीच को ही चाहती है। कुलटा को अपने कुल की हीनता, लोकनिन्दा और अपने बन्धन प्रभृति की कोई परवा नहीं रहती। और तो और; वह अपने प्राणनाश की भी परवा नहीं करती।

स्त्रियों को कोई अगम्य नहीं; बूढ़े और जवान, कुरूप और सुरूप, धनी और निर्धन, नीच और ऊँचका कोई ख़याल नहीं—ये तो पुरुषमात्र को भजती हैं। कुलटायें गाय की तरह होती हैं। जिस तरह गाय नई-नई घास खाना चाहती है; उसी तरह ये नये-नये पुरुषों को चाहती हैं। ये दण्ड, शस्त्र, दान और स्तुति किसी से भी वश में नहीं रहतीं। अगर इन्हें मौक़ा नहीं मिलता या चाहनेवाला नहीं मिलता

—तब तो ये सती बनी रहती हैं। कहा है—एकान्त नहीं, अवकाश नहीं और प्रार्थी नहीं; हे नारद, इसीसे सती का सतीत्व रहता है। जो कोई स्त्री से प्रार्थना करता है, उसके पास जाता है और थोड़ी भी सेवा करता है, स्त्री उसी की हो जाती है। आग को काठ से, सागर को नदियों से, कालको प्राणियों से और स्त्री को पुरुषों से तृप्ति नहीं होती। जो पुरुष अज्ञान से यह जानता है, कि यह स्त्री मुझे प्यार करती है, वह स्त्री के वशीभूत होकर खेल के पक्षी की तरह हो जाता है। जो स्त्री के कहने में चलता है और उसका विश्वास करता है, उसका अवश्य अनिष्ट होता है। स्त्रियों के मोह-जाल में फँस कर पुरुष उसी तरह नष्ट होता है; जिस तरह दीपक की ज्योति पर भूल कर पतङ्ग नष्ट होता है। किसी ने खूब कहा है—

> काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं
> सर्पे क्षान्तिः स्त्रीषु कामोपशान्तिः।
> क्लीबे धैर्य्यं मद्यपे तत्त्वचिन्ता
> राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ?॥

कव्वे में पवित्रता, जूए में सत्य, सर्प में सहनशीलता, स्त्रियों में कामशान्ति, नपुंसक में धीरज, शराबी में तत्वचिन्ता और राजा में मैत्री किसने देखी या सुनी ?

इन सब बातों को जान कर भी, हमारे प्रातःस्मरणीय

योगिराज रानी पिङ्गला के मोहजाल में फँस गये। भाई विक्रम के समझाने से भी न समझे। जब वेश्या के हाथ से उन्हें अमर-फल मिला—तब उनके होश ठिकाने आ गये, आँखें खुल गईं। उन्हें मालूम हो गया, कि शास्त्रों में स्त्रियों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह राई रत्ती सच है—वह लाखों-करोड़ों वर्ष के अनुभव का निचोड़ है।

राजा अपनी प्यारी रानी का कुलटापन देखकर मन-ही-मन कहने लगे—"संसार में कोई किसी को नहीं चाहता—यहाँ किसी को किसीसे प्रेम और मुहब्बत नहीं। मैं झूठे मोह से अन्धा हो रहा था; परमात्मा की दया और पूर्व्वजन्म के सुकर्म्मों के प्रभाव से मेरी आँखों के आगे से पर्दा हट गया। जितना जीवन वृथा नष्ट हुआ, सो तो हो ही गया। गया समय तो हाथ आनेवाला नहीं। अब मुझे आगे को सम्हलना चाहिये और शेष जीवन को परमात्मा की भक्ति में लगाना चाहिये। ये राजपाट, धन-दौलत प्रभृति चिरस्थायी नहीं—ये सब असार और मिथ्या हैं। धिक्कार है, उस वेश्या को जो अपने यार को न चाहकर मुझे प्यार करती है! धिक्कार है उस रानीके यार को,जो रानी को न चाहकर वेश्या से प्रेम करता है! धिक्कार है मेरी प्यारी रानी को जो मुझ से विरक्त होकर दूसरे को प्यार करती है! धिक्कार है मुझे, जो मैं इस कुलटाको सती और अपनी अनुरागिनी समझे हुए था और धिक्कार है उस कामदेव को जो इतने प्रपञ्च कराता है!" यह कहते

हुए महाराज ने अपने राज-वस्त्र और मुकुट प्रभृति मन्त्री को सौंप कर वन को राह ली। महाराज ने जो आदर्श संसार के सामने रखा है, उस से भारत का मस्तक उन्नत होता है। संसार के इतिहास में ऐसे आदर्श अति विरल हैं।

नोट—स्त्रियों की माया के सम्बन्ध में और भी अधिक जानने की इच्छा हो, तो हमारा अनुवाद किया "शृंगार शतक" देखिये।

छप्पय--जाकी मेरे चाह, वह मोसों विरक्त मन !
और पुरुषसों प्रीति, पुरुष वह चहत और धन ।
मेरे कृतपर रीझ रही, कोऊ इक औरहि ।
यह विचित्र गति देख, चित ज्यों तजत न ठौरहि ॥
सब भाँति राजपत्नी सुधिक्, जार पुरुषको परमधिक् !
धिक् काम याहि धिक् मोहि धिक्, अब ब्रजनिधि की शरण इक ॥२॥

2. The woman I constantly adore does not care for me. She has given her heart to another man and that other man has some other sweetheart. I again am the object of affection for a third woman Fie on her and him and Cupid and this woman and me!

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि च तं नरं न रंजयति ॥ ३ ॥

हिताहितज्ञानशून्य नासमझ को समझाना बहुत आसान है, उचित और अनुचित को जाननेवाले ज्ञानवान को राज़ी

करना और भी आसान है; किन्तु थोड़े से ज्ञान से अपने तईं पण्डित समझनेवाले को स्वयं विधाता भी सन्तुष्ट नहीं कर सकता।

संसार में तीन तरह के मनुष्य होते हैं—(१) अज्ञ, (२) सुज्ञ, और (३) अल्पज्ञ। जिसे अपने बुरे-भले का ज्ञान नहीं होता, जो निरा मूर्ख होता है, उसे "अज्ञ" कहते हैं। जिसे युक्तायुक्त, उचित और अनुचित का ज्ञान होता है, उसे "सुज्ञ" कहते हैं। जो अज्ञ और सुज्ञ के बीचका होता है, जिसे थोड़ा सा ज्ञान होता है, न वह पूरा पण्डित ही होता है और न निरा मूर्ख ही, उसे "अल्पज्ञ" कहते हैं। अल्पज्ञको बहुत थोड़ा ज्ञान होता है, पर वह अपने तईं बड़ा भारी पण्डित समझता है और इस नशे में चूर रहता है—थोड़े से ज्ञान से उसका सिर घूम जाता है। इसीसे कहते हैं----"कम इल्म बुरा।" शुक्रने भी कहा है----"ज्ञानलवदौर्विदग्ध्यादज्ञता प्रवरमता" अर्थात् अल्पज्ञता से मूर्खता भली।

कोरा अज्ञानी अपनी अज्ञानता—मूर्खता को समझता है। उसे पण्डताई का घमण्ड नहीं होता, इसी से वह विद्वानों की बात कान देकर सुनता है और उनके उपदेशों को ग्रहण करके राह पर आजाता है। युक्तायुक्त का जाननेवाला विद्वान् उचित अनुचित को समझता है—युक्ति और तर्क को मानता है; इसलिये वह और भी आसानी से अपने से अधिक बुद्धिमान की बात को मान लेता है;

परन्तु जिसे ज़रा से ज्ञान से घमण्ड हो जाता है, उसे मनुष्य तो क्या चीज़ है, उसके और संसार के रचने वाला ब्रह्मा भी नहीं समझा सकता।

सब अनर्थों की जड़ खुदी या अहङ्कार है। अहंकार मनुष्यको ऊँचा होने नहीं देता। अहंकारके कारणसे ही मूर्ख मूर्ख रह जाता है। मनुष्य के बड़प्पन और सच्चे सुख में अहंकार ही बाधक है। जो अहंकार को जीत लेता है, वह निश्चय ही एक न एक दिन सच्चे सुख और महत् पदका अधिकारी होता है। अल्पज्ञोंमें अक्सर घमण्ड होता ही है; इसी से वे पराया उत्तम से उत्तम उपदेश नहीं मानते। अपनी शान में बट्टा लगने के ख़याल से, वे जिस बातको नहीं जानते, उसे किसी से पूछते भी नहीं; इसी से उन की उन्नति नहीं होती। दुनिया में जो अपने तईं सब से छोटा और तुच्छ समझते हैं एवं जो वास्तव में बुद्धि रखते हैं—वे अवश्य चतुरचूड़ामणि हो जाते हैं। मूर्ख और घमण्डी किसीका उपदेश ग्रहण नहीं करते। कहा है—

उपदेशन को धारिवे, बुद्धिमन्त जड़ नाहिं।
जों पुहुपन की गन्धकों, तिल धारें जव नाहिं॥

दोहा—सुखकर मूढ़ रिझाइये, अति सुख पण्डित लोग।
स्वल्पज्ञानगर्विष्ट को, विधिहु न रिझवन योग॥ ३॥

3. An ignorant person is easy to please. It is still easier to please a man of learning, but even the God Brahma can not please a man stained with the possession of partial talents.

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्राङ्कुरात् ,
समुद्रमपि संतरेत्प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।
भुजंगमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारयेत्
न्नतु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ४ ॥

यदि मनुष्य चाहे तो मगर की दाढ़ों की नोक में से मणि निकाल लेने का उद्योग भले ही करे ; यदि चाहे तो चञ्चल लहरों से उथलपुथल समुद्र को अपनी भुजाओं से तैर कर पार हो जाने की चेष्टा भले ही करे ; क्रोध से भरे हुए सर्प को पुष्पहार की तरह सिर पर धारण करने का साहस करे तो भले ही करे ; परन्तु हठ पर चढ़े हुए मूर्ख मनुष्य के चित्त को असत् मार्ग से सत् मार्ग पर लाने की हिम्मत हरगिज़ न करे ।

मगर की दाढ़ों में से बलपूर्व्वक रत्न को निकाल लेना मनुष्य के लिये असम्भव है। इस में भारी संकट और जान-जोखिम है। आज तक ऐसा कोई मनुष्य कर भी नहीं सका। फिर भी ; कोई बलवान ऐसा करने की चेष्टा करे तो कर सकता है ; कदाचित् सफलता हो जाय। चञ्चल लहरों से व्याकुल समुद्र को अपनी भुजाओं के बल से तैर कर पार कर लेना असम्भव है। फिर भी ; कोई तैराक ऐसा करने का

प्रयत्न करे तो कर सकता है; शायद कामयाबी हो जाय। कुपित भयानक सर्प को माला की तरह मस्तक पर धारण करना महा कठिन काम है। कोई तेजस्वी पुरुष, शिवजी की तरह, सर्प को सिर पर धारण करने का उद्योग करे, तो भले ही करे; कदाचित् वह सर्प को मस्तक पर रख सके। कोई भी मनुष्य इन तीनों कामों को कर नहीं सकता; पर कदाचित् कोई पुरुष इन अघटित—असम्भवों को सम्भव करने में समर्थ हो जाय। लेकिन दुराग्रही—अपनी हठ पर चढ़े हुए मूर्ख मनुष्य के चित्त को अपने क़ाबू में करने की कोई भी चेष्टा न करे—भूल कर भी इस बात का वृथा प्रयास न करे।

सारांश यह, ज़िद पर चढ़ा हुआ मूर्ख किसी के भी समझाये नहीं समझता। वह जिस बात पर जम जाता है, उस से नहीं हटता। मिस्टर लोवेल नामक एक यूरोपीय विद्वान् कहते हैं *—"केवल मूर्ख और मृतक अपनी राय नहीं बदलते।" लेवेटर नामक एक विद्वान् ने कहा है†—"जो शख़्स किसी बात पर जमे हुए मनुष्य के चित्त को युक्ति और तर्क से अपने क़ाबू में करने की आशा रखता है, वह मानव-जाति के सम्बन्ध में बहुत कम ज्ञान रखता है।" निसन्देह हठ

* The foolish and the dead alone never change their opinion.—*Lowell.*

† He knows very little of mankind who expects, by fact of reasoning, to convince a determined party-man. *Lavator.*

पर चढ़ा हुआ मूर्ख विधाता के समझाये भी नहीं समझता।

दुर्योधन ने अन्याय और अनीति से पाण्डवों का सारा राज्य छीन लिया; उनके ऊपर अनगिन्ती अत्याचार किये। विदुर, भीष्म और सञ्जय प्रभृति राज के सच्चे शुभचिन्तकों ने उसे बहुत समझाया, पर वह किसी की भी बात से टस से मस न हुआ। शेष में; सर्वशक्तिमान् त्रिलोकीनाथ कृष्ण लोकरीति पूरी करने के लिये उसे समझाने गये; पर वह उनकी भी नीतिपूर्ण और दोनों पक्षों के लिये भली बातों से न पसीजा। अज्ञानी उलटा उनका ही अपमान करने पर उतारू हुआ; तब कृष्ण भगवान् वापिस लौट आये। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है और बहुत ही ठीक कहा है—

> जो मूरख उपदेश के, होते योग जहान।
> दुर्योधन कहँ बोध किन, आये श्याम सुजान॥

4. It is possible to tear off a gem sticking in the roots of a crocodile's teeth. It is possible to swim across the ocean made impassable by a series of tossing currents. It is even possible to adorn one's head with an angry snake as if it were a flower, but it is very difficult to please the heart of a bigoted and ignorant person.

> लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्,
> पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः।

कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादये-
न्न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ५ ॥

कदाचित् कोई किसी तरकीब से बालू में से भी तेल निकाल ले ; कदाचित कोई प्यासा मृगतृष्णा के जल से भी अपनी प्यास शान्त कर ले ; कदाचित् कोई पृथ्वी पर घूमते-घूमते खरगोश का सींग भी खोज ले; परन्तु हठ पर चढ़े हुए मूर्ख मनुष्य के चित्त को कोई भी अपने क़ाबू में नहीं कर सकता।

बालू के दानों में तेल नहीं होता, पर कदाचित् कोई बार बार प्रयत्न करने से बालू के कणों से भी तेल निकालने में सफल हो जाय। मृगमरीचिका में जल नहीं होता, पर कदाचित् कोई प्यासा खोज लगा कर वहाँ भी जल पा जाय; खरगोश के सींग नहीं होते, पर कदाचित कोई चतुर पर्यटक पृथ्वी पर भ्रमण करते-करते कहीं खरगोश के सींगोंका भी पता लगा ले—इन असम्भवों के सम्भव करने में जो परिश्रम किया जाय, शायद वह सफल हो जाय; पर ज़िद पर चढ़े—अपनी ही बात पर अड़े हुए मूर्ख का चित्त किसी भी उपाय से वश में नहीं हो सकता।

मूर्खों का स्वभाव ही ऐसा होता है, कि वे जिस बातपर जम जाते हैं, जिस बात को ज़िद कर लेते हैं, उसे किसी के भी कहने से नहीं त्यागते। यद्यपि ऐसे दुराग्रही घोर दुःख

भोगते हैं, पर किसी का उपदेश ग्रहण नहीं करते। रावण को मारीच ने बहुत कुछ समझाया, पर उसने उसकी एक न मानी; यती का वेश धर कर सीता को ले ही गया। परिणाम यह हुआ कि, उसका कुटुम्ब सहित नाश हुआ। बालि बन्दर को तारा ने अनीति का नतीजा समझाया, पर उसने उसकी एक न सुनी; अन्तमें अपनी ज़िन्दगीसे हाथ ही धोये। इन्द्रपुत्र जयन्त ने किसी की न मान, सीता जी के साथ छेड़खानी की। शेष में; त्रिलोकी में मारा-मारा फिरा, पर कोई शरणदाता न मिला। जो लोग हठ करते हैं—किसी की सीख नहीं मानते, उनका अन्त में बुरा ही होता है। तुलसीदास जी ने कहा है—

साहस ही सिख कोपवश, किये कठिन परिपाक।
शठ संकटभाजन भये, हठि कुयति कपि काक॥

छप्पय—निकसत बारू तेल, जतन कर काढ़त कोऊ।
मृगतृष्णा को नीर, पिये प्यासो है सोऊ।
लहत शशाको शृंग, ग्राहमुखतें मणि काढ़त।
होत जलधि के पार, लहर वाकी जब बाढ़त॥
रिसभरे सर्प कों पहुप ज्यों, अपनें सिरपै धर सकत।
हठभरे महासठ नरनको, कोऊ बस नहिं कर सकत॥४॥५॥

5. A man may get oil out of sand by strenously squeezing the latter. A thirsty person will perhaps drink water out of mirage. It is just possible that a man in his wanderings may come across the horns of a hare, but it is extremely difficult to please the heart of a bigoted and ignorant person.

व्यालं बालमृणालतंतुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते,
छेत्तुं वज्रमणीञ्छिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते ।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते,
नेतुंवाञ्छतियःखलान्पथिसतांसूक्तैः सुधास्यन्दिभिः ॥६॥

जो मनुष्य अपने अमृतमय उपदेशों से दुष्ट को सुराह पर लाने की इच्छा करता है, वह उसके समान अनुचित काम करता है, जो कोमल कमल की डंडो के सूत से ही मतवाले हाथी को बाँधना चाहता है, सिरस के नाजुक फूल की पंखड़ी से हीरे को छेदना चाहता है अथवा एक बूँद मधु से खारी महासागर को मीठा करना चाहता है ।

हाथी जैसा बलवान जानवर रस्सों से भी नहीं बँध सकता, जो मनुष्य उसे कोमल कमल की डंडी के सूत से बाँधने की चेष्टा करता है, वह मूर्ख है । हीरे में बड़े बड़े घनों की चोट से भी कुछ नहीं होता, पर जो मनुष्य सिरस के से नाज़ुक फूल की पंखड़ी से उसमें छेद करना चाहता है, वह निश्चय ही मूर्ख है । समुद्र सारी पृथ्वी के मधु और चीनी-शक्कर प्रभृति से भी मीठा नहीं हो सकता, पर जो मनुष्य उस महा-

सागर का खारापन एक बूँद शहद से मिटाना चाहता है, वह निश्चय ही मूर्ख है। ये तीनों काम करनेवाले जिस तरह मूर्ख हैं; उसी तरह वह भी मूर्ख है, जो अपने उत्तमोत्तम अमृतोपम उपदेशों से दुष्ट को कुराह से हटाकर सुराह पर लाने की अभिलाषा करता है। सारांश यह,—दुष्ट को उपदेश देकर भला आदमी बनाना मूर्खता से खाली नहीं। गधे को उपदेश देनेवाला भी गधा ही समझा जाता है।

अच्छी मिट्टी में बोने से बीज उगता है। अच्छे लोहे पर पालिश करने से ही चमक आती है। जिसे ईश्वर योग्यता देता है, उसी पर सुशिक्षा का फल होता है। जिसमें स्वयं बुद्धि होती है, उसी को सदुपदेश और शास्त्र से लाभ होता है। सुपात्र को दिया दान फलता है और कुपात्र को दिया दान वृथा जाता है। यही हाल सुशिक्षा का है। कुपात्र में कोई भी क्रिया फलवती नहीं होती। हज़ारों तरह के उपाय करने से भी बगुला तोते की तरह पढ़ाया नहीं जा सकता। शेख़ सादी ने कहा है—

> अब्र गर आबे ज़िन्दगी बारद।
> हर्गिज़ अज़ शाख़े बेद बर न ख़ुरी॥

बादल का पानी की जगह अमृत बरसाना मुमकिन हो सकता है, पर बेत की शाख़ों में कभी फल नहीं लग सकते। दूषित जड़ से छायादार वृक्ष नहीं हो सकता। नालायक़ को

नसीहत देना गुम्बद पर अखरोट फेंकना है। कमीने के पीछे अपना समय नष्ट करना अच्छा नहीं; क्योंकि नरकुल से कभी चीनी नहीं निकल सकती। कुत्ते की पूँछ को कोई कितना ही तेल प्रभृति से मल कर और बाँध कर बारह वर्ष तक भी क्यों न रक्खे, खुलने पर वह वैसी की वैसी ही रहेगी। कवियों ने कहा है:—

फले फले न बेत, यदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलें विरंचि सम॥ तुलसी।
बिगर्यो होय कुसंग जिहि, कौन सकै समुझाय।
लसन बसाये बसन कौं, कैसे फल बसाय॥ वृन्द।

छन्द–कमलतन्तुसों बाँधि, गजहि बसकरन उमाहत।
सिरस-पुहुप के तार, बज्रकों बेध्यो चाहत॥
बूँद सहतकी डार, उदधि को खार मिटावत।
ये बातें विपरीति होहिं बरु, यह श्रुति गावत॥
पर अमृतमयी निज बैनसों, सतपथ में खैंचत चहै।
जो कोउ कहु खल जननको, इहै एक अचरज अहै॥६॥

6. He attempts to bind an elephant with the fibres of a young lotus stalk or to make a bore in a diamond with the help of the point of a Shrish flower or to make the water of the ocean sweet by adding to it a single drop of honey, who tries to make evil-minded persons walk in the path of virtuous men by his nectar-like precepts.

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा,
विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः ।
विशेषतः सर्वविदां समाजे,
विभूषणं मौनमपण्डितानाम् ॥ ७ ॥

मूर्खों को अपनी मूर्खता छिपाने के लिये ब्रह्मा ने "मौन धारण करना" अच्छा उपाय बता दिया है और वह उनके अधीन भी कर दिया है। मौन मूर्खता का ढकन है। इतना ही नहीं; वह विद्वानों की मण्डली में उनका आभूषण भी है।

संसार में मौन रहने या चुप साध लेने के समान मूर्खता के छिपाने का दूसरा और उपाय नहीं है। अँगरेज़ी में एक कहावत है—"जब कि मूर्ख मौन साधे रहता है, तब वह बुद्धिमान समझा जाता है* ।" एक और विद्वान् ने कहा है—"जिसे आत्म-विश्वास नहीं है, उस मनुष्य के लिये मौन सर्वोत्तम निरापद पथ है† ।" बोनार्ड नामक विद्वान् ने कहा है—"मौन मूर्खों की बुद्धिमत्ता और बुद्धिमानों का एक गुण है‡ ।" बर्न

* A fool when is silent is wise.—*Pr.*

† Silence is the safest course for the man who is diffident of himself.—*La Roche*

‡ Silence is the wit of fools, and one of the virtues of the wise men.—*Bonard.*

नामक विद्वान् ने कहा है—"चुप रहने की आदत सीखो और इसे अपना मॉटो (Motto) मानो* । कहाँ तक लिखें, मौन की सभी देशों के शास्त्रों में बड़ी प्रशंसा लिखी है । महात्मा रेले ने कहा है—"सुनो बहुत और बोलो कम ; क्योंकि संसार में सब से बड़ी भलाई और सब से बड़ी बुराई इस ज़बान से ही होती है+ ।"

चुप रहने से मनुष्य मिथ्याभाषण और परनिन्दा के पाप से बचता है। जो ज़ियादा बोलता है, उसके मुँह से कोई न कोई बुरी बात भी निकल ही जाती है और शत्रु की नज़र सदा बुरी बातों पर ही रहती है । जब तक मनुष्य नहीं बोलता, उसके ऐब और हुनर छिपे रहते हैं—बोलते ही सब भेद खुल जाता है। कव्वे और कोयल दोनों काले होते हैं। जब तक वे नहीं बोलते, यह तमीज़ करना कठिन हो जाता है, कि कौन कौवा और कौन कोयल है। शेख़ सादी ने भी कहा है—

ता मर्दे सुख़न न गुफ़्ता बाशद ।
ऐबो हुनरस न हुफ़्ता बाशद ॥

---

o Learn taciturnity ; let that be your Motto—*Burne.*

† Hear much and speak little ; for the tongue is the instrument of the greatest good and the greatest evil that is done in this world.—*Releigh.*

जब तक कोई बात-चीत नहीं करता, तब तक उसकी भलाई बुराई नहीं मालूम होती।

हमारे चाणक्य महाराजने भी कहा है—

मूर्खोऽपि शोभते तावत् सभायां वस्त्रवेष्टितः।
तावच्च शोभते मूर्खो यावत् किंचिन्न भाषते॥

सभा में मूर्ख वस्त्र पहने हुए उस समय तक अच्छा दीखता है, जब तक कुछ नहीं बोलता। बोलते ही सारी क़लई खुल जाती है। इसलिये मूर्खों को अपनी मूर्खता छिपाये रखने के लिये मौनावलम्बन करना ही अच्छा है। गुलिस्ताँ में एक कहानी है—

एक बुद्धिमान नौजवान, जिसने विद्या और धर्म-कार्यों में खूब उन्नति की थी, विद्वानों की समाज में अक्सर कुछ न बोला करता था। एक दिन उसके पिता ने कहा—"पुत्र! तुम जो जानते हो, उसे कहते क्यों नहीं?" पुत्र ने जवाब दिया—"पिताजी! मैं इस बात से डरता हूँ, कि वे लोग मुझ से कोई ऐसी बात न पूछ बैठें, जिसे मैं न जानता हूँ और उसके कारण मुझे लज्जित होना पड़े। क्या आपने उस सूफी की बात नहीं सुनी, जो अपनी खड़ाउँओं में कील ठोक रहा था? कीलें ठोंकते देख कर, एक हाकिम ने उसकी आस्तीन पकड़ ली और उससे कहा—'चलो, मेरे घोड़े के पैरों में नाल बाँध दो।' जब तुम चुप रहोगे, तब तुम्हें कोई

न छेड़ेगा। अगर बोलोगे, तो सुबूत ले कर तैयार रहना पड़ेगा। खुदाने मनुष्य को कान दो और जीभ एक इसी ग़रज़ से दी है कि, वह सुने बहुत और बोले कम। जिस में मूर्ख की प्रतिष्ठा-रक्षा तो मौन धारण करने में ही है।" कहा है—

कम खाना और कम बोलना अक़्लमन्दी है॥
बहुत खाना और बहुत बोलना बेवक़ूफी है॥

दो०-मूरखता के ढकन को, रच्यो विधाता मौन।
ज्ञानि-सभा महँ आभरण, अज्ञाहि गुणको मौन॥ ७॥

7. Silence which is within one's own power: and which has numerous other facilities, has been made by the Creator to serve as a cover for ignorance. Especially in an assembly of learned men it is the best ornament of those who are ignorant.

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं,
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चित्किञ्चिदबुधजनसकाशादवगतं,
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥ ८॥

जब मैं कुछ थोड़ा सा जानता था, तब मैं, मदोन्मत्त हाथी की तरह घमण्ड से अन्धा होकर, अपने तईं सर्व्वज्ञ समझता

था। लेकिन ज्योंही मैंने विद्वानों की संगति से कुछ जाना और सीखा, त्योंही मुझे मालूम हो गया कि, मैं तो निरा मूर्ख हूँ। उस समय मेरा मद ज्वर की तरह उतर गया।

कहावत है—"अल्पविद्यो महागर्वी।" थोड़ी विद्यावाला बड़ा अभिमानी होता है। अल्पज्ञ अपने सिवा सारे संसार को मूर्ख समझता है। जब तक वह विद्वानों की सुहबत नहीं करता—अनेक प्रकार के ग्रन्थों को नहीं देखता, तब तक वह अपने तईं सर्वज्ञ समझता है और उतनी सी विद्या के घमण्ड से मतवाला रहता है, लेकिन ज्योंही वह पण्डितों की संगति करता है, उनसे कुछ सीखता है, उसकी आँखें खुल जाती हैं—उसका सारा नशा किरकिरा हो जाता है—उस का मदज्वर फौरन उतर जाता है।

अल्पज्ञ की दशा कूपमण्डूक की सी होती है। कूए का मेंडक सदा कूए में रहता है और कूए के सिवा और किसी जलाशयको नहीं देखता। उस दशामें, वह उस कुए को ही सर्वश्रेष्ठ जलाशय समझता है। लेकिन जब वह सरोवरों, नदियों अथवा सागर को देखता है, तब उस की आँखें खुल जाती हैं। उसी तरह जो लोग थोड़ा सा इल्म रखते हैं, अनेक विषयों से अनजान रहते हैं, वे अपने साधारण ज्ञान को ही सर्वश्रेष्ठ समझते हैं और उस पर अभिमान करते हैं; किन्तु जब वे विद्वानों की संगति से कुछ और देखते और जानते हैं, तब उनको होश होता है, तब वे समझते

हैं कि, हम तो कुछ भी नहीं जानते। उस्ताद ज़ौक़ ने कहा है—

हम जानते थे इल्म से कुछ जानेंगे।
जाना तो यह जाना कि न जाना कुछ भी॥

वाल्टेयर* नामक विद्वान् ने भी ठीक यही बात कही है ;—"जितना ही अधिक हमने पढ़ा, जितना ही अधिक हमने सीखा, जितना ही अधिक हमने चिन्तन किया, उतना ही हमारा दृढ़ निश्चय हुआ, कि हम तो कुछ भी नहीं जानते; अर्थात् अधिकाधिक पढ़ने, सीखने और विचार करने से हमारी यह धारणा हो गई, कि हम तो अज्ञ हैं।"

मनुष्य ज्यों-ज्यों देशाटन करता है, त्यों-त्यों उसकी देश देखने की इच्छा होती है और वह समझने लगता है कि, जिस गाँव में मैं रहता हूँ, पृथ्वी उतनी ही नहीं है—पृथ्वी बहुत बड़ी है, मैंने अभी कुछ भी नहीं देखा है। इसी तरह ज्यों-ज्यों मनुष्य विद्वानों की सुहबत करता है, ज्यों-ज्यों नये-नये शास्त्र देखता है, त्यों-त्यों उसे मालूम होता है, कि मैं जितना जानता हूँ, उतना कुछ भी नहीं है—अभी मेरे सीखनेके लिये बहुत पड़ा है—अगर सारी उम्र सीखता रहूँगा, तो-भी विद्या का अन्त न आवेगा। इस विचार पर पहुँचने

* The more we have read, the more we have learned, the more we have medicated, the better conditioned we are to affirm that we know nothing—*Voltaire.*

से उसे अभिमान नहीं रहता और वह दिन-दिन उन्नति करके एक दिन सचमुचही आदर्श विद्वान् हो जाता है। जो मनुष्य अपनी त्रुटियों—अपनी कमज़ोरियों को जानता है, जो अपने तईं सब से छोटा समझता है; वह निश्चय ही विद्वान् और गुणवान् हो जाता है; किन्तु वह मनुष्य जो अपने तईं सर्वज्ञ समझता है, अपने सर्वज्ञ होने में सन्देह भी नहीं करता, अपनी नाममात्र की विद्या-बुद्धि के घमण्ड में चूर रहता है, वह जहाँ का तहाँ ही पड़ा रहता है---उसकी मूर्खता कभी नहीं जाती। मूर्ख ही अपने तईं बुद्धिमान समझता है। बुद्धिमान तो सदा अपने तईं मूर्ख समझता है।

छप्पय-जब हों समझों नेक, तबहि सर्वज्ञ भयो हौ।
जैसे गज मदमत्त, अंधता छाय गयो हौ॥
जब सतसंगति पाय, कछुक हों समझन लाग्यौ।
तबहि भयो अति गूढ़, गर्व गुण कौ सब भाग्यौ॥
ज्वर चढत-चढत अति ताप ज्यों, उतरत सीतल होत तन।
त्योंही मनकौ मद उतरिगौ, लियो शील सन्तोष पन॥८॥

8. When I knew but little, I was blind with madness like an elephant and my mind was full of vanity with the idea that I knew all. Now that I have learnt a little by keeping company with wise men, my vanity has vanished like fever with the idea that I know nothing at all.

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगर्हिजुगुप्सितं,
निरुपमरसं प्रीत्या खादन्नरास्थिनिरामिषम् ॥
सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शंकते,
नहि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफलगुताम् ॥ ६ ॥

जिस तरह कीड़ों से भरे हुए, लारयुक्त, दुर्गन्धित, रस-मांसहीन मनुष्य के घृणित हाड़ को आनन्द से खाता हुआ कुत्ता पास खड़े हुए इन्द्र की भी शङ्का नहीं करता; उसी तरह क्षुद्र जीव जिसको ग्रहण कर लेता है, उसकी तुच्छता पर ध्यान नहीं देता ।

नीचों का स्वभाव कुत्ते का सा ही होता है। जिस तरह कुत्ता बुरी-से-बुरी चीज़ को आनन्द से खाता है; उसी तरह नीच और स्वार्थी लोग बुरे-से-बुरे कर्म करने अथवा निन्द्य-से-निन्द्य उपायों से जीविका उपार्जन करके पेट भरने में किसी की शंका नहीं करते। अगर कोई उनके सौ सौ जूतियाँ मार कर और हज़ारों गालियाँ दे कर भी उन्हें टुकड़ा देता है, तोभी वे बड़े खुश रहते हैं। ऐसे लोग भी संसार में देखने में आते हैं, जो लुच्चे बदमाश भंगी चमार चोर लुटेरे प्रभृति के पीकदान, नरक की मूल, वेश्या के बुरे-से-बुरे काम करते हैं; उस से पिटकुट कर और दुत्कार-फटकार सुन-कर उस की जूठी दो रोटियाँ पाने से ही आनन्दित हो जाते हैं। नीच और स्वार्थियों का स्वभाव ही ऐसा होता है, कि वे बुरे

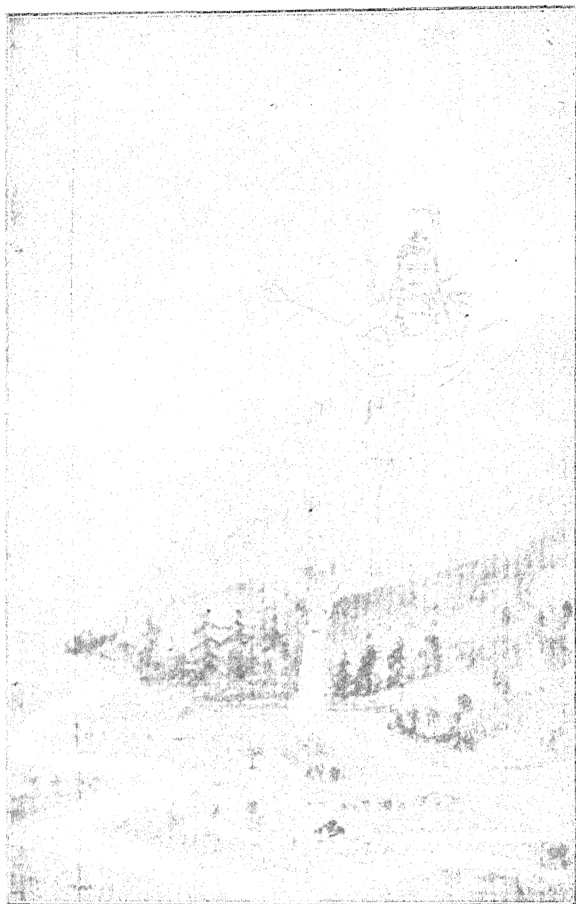
से बुरा काम करने में नहीं लजाते और जिस निंद्य कर्म को करने लगते हैं, जिस बुरी आदत को अख्त्यार कर लेते हैं, उसे नहीं छोड़ते। न वे लोकनिन्दा की परवा करते हैं और न परमात्मा से भय खाते हैं।

कुण्डलिया-कूकर शिर कारा परै, गिरै बदन ते लार।
बुरी वास बिकराल तन, बुरौ हाल बीमार॥
बुरौ हाल बीमार, हाड सूखेको चावत।
लखि इन्द्रहु को निकट, कछू उर शंक न लावत॥
निठुर महा मनमाँहि, देख घुरांवत हूकर।
तैसेही नर नीच, निलज डोलै ज्यों कूकर॥ ९॥

9. A dog while eating a human bone which is covered over by whole families of germs and is dripping with saliva and full of vicious smell such as can not be likened to anything good, and which is devoid of all flavour and has not an iota of flesh sticking to it, feels no shame even if he sees the God Indra standing by his side. So a degenerate person does not care for the propriety or otherwise of any action that he sets himself to.

शिरः शार्वं स्वर्गात्पतति शिरसस्तत्क्षितिधरं,
महीध्रादुत्तुंगादवनिमवनेश्चापिजलधिम्।
अधोऽधोगंगेयं पदमुपगता स्तोकमथवा,
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः॥ १०॥

N. [illegible]



[illegible] के वृत्तान्त से मालूम होता है कि, कैदखानों का [illegible] का बैकुंठ नरक से [illegible] होता है। (पृष्ठ ८७)

गंगा पहले स्वर्ग से शिवजी के मस्तक पर गिरी, उनके मस्तक से हिमालय पर्वत पर गिरी, वहाँ से पृथ्वी पर गिरी और पृथ्वी से बहती-बहती समुद्र में जा गिरी। इस तरह ऊपर से नीचे गिरना आरम्भ होने पर, गङ्गा नीचे-ही-नीचे गिरती और स्वल्प होती गई। गंगा की सी ही दशा उन लोगों की होती है, जो विवेकभ्रष्ट हो जाते हैं। उनका भी अधःपतन गङ्गा की ही तरह सौ सौ तरह से होता है।

गङ्गा जैसी पतितपावनी सुरनदी, अभिमान के कारण, विष्णुचरणों में लोप हुई। वहाँ से शिव के मस्तक पर गिरी। वहाँ से भी हिमालय की चोटी पर आई। हिमालय की चोटी से पृथ्वी पर आई। पीछे हरिद्वार, प्रयाग, काशी, पटना प्रभृति स्थानों में बहती-बहती गङ्गासागर के पास समुद्र में जा गिरी। जो गङ्गा एक दिन सर्व्वोच्च स्थान स्वर्ग में थी, वही, ज्ञानमार्ग से भ्रष्ट होने के कारण, बार-बार नीचे ही नीचे गिरती-गिरती, सब से नीचे स्थान समुद्र में जा गिरी। वहाँ पहुँच कर उसका अस्तित्व ही लोप हो गया—नाम ही मिट गया। इतना अधःपतन क्यों हुआ? केवल विवेक—विचार-शक्ति से काम न लेने या विवेक के खो देने से। जो संसारी लोग विवेक या विचार-शक्ति से काम नहीं लेते, जो कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विचार खो बैठते हैं, उनकी भी दशा गंगा की सी ही होती है। उनपर नाना प्रकार की विपत्तियाँ पड़ती हैं। जिस तरह एक बार अधःपतन आरंभ होकर

गङ्गा फिर ऊँची न उठ सकी, उसी तरह वे भी जब नीचे गिरने लगते हैं, तब ऊँचे नहीं उठते और एक दिन मिट्टी में ही मिल जाते हैं ।

विचार-शक्ति ही हमारी सच्ची रक्षिका और मार्ग-प्रदर्शिका है । जो लोग प्रत्येक बुरे और भले काम में इसकी सलाह नहीं लेते अथवा इसका कहना नहीं मानते, उनकी दुर्गति निश्चय ही होती है । स्वयं विष्णु भगवान् ने भले और बुरे काम का विचार न करके, जलन्धर की स्त्री वृन्दाका सतीत्व भङ्ग किया । इस का परिणाम यह हुआ, कि आप को नीचा देखना पड़ा और अब सदा उसे तुलसी के रूप में सिर पर धारण करना पड़ता है । आपने बौने का रूप धर कर राजा बलि को छला । नतीजा यह हुआ कि, आप को उनके दरवाज़े का दरबान होना पड़ा । राजा बलि ने विवेक से काम न लेकर सर्वस्व दान कर दिया । परिणाम यह हुआ, कि आप बाँध कर पाताल पठाये गये । चन्द्रवंशी राजा नहुष को विवेकभ्रष्ट होने से, महामुनि अगस्त के शाप से, दस हज़ार वर्ष तक सर्प बन कर रहना पड़ा । लंकेश ने विवेक-भ्रष्ट होकर जगज्जननी सीता पर मन डिगाया और उन्हें, रामचन्द्र जी को धोखा देकर, लंका को ले गया । इसी कारण से उसे सकुल नाश होना पड़ा । कहाँ तक दृष्टान्त दें ? जिसने भी विचार-शक्ति से काम न लिया, उसका अधःपतन ही हुआ ।

दुनियाँ में रोज़ ही देखते हैं, कि जो लोग विचार कर काम नहीं करते, वे अहर्निश नीचे-ही-नीचे गिरते चले जाते हैं। अज्ञानी लोग पहले तो परिणाम का विचार न करके खलों की सङ्गति करते हैं। दुष्ट लोग उन्हें गाना बजाना सुनाने के बहाने वेश्याओं के यहाँ ले पहुँचते हैं। गाना सुनते-सुनते वे वेश्या-प्रेमी हो जाते हैं; फिर उन्हें उसके बिना चैन नहीं पड़ता; उसे ही अपनी आराध्य देवी समझ कर रात-दिन उसी की आराधना में लगे रहते हैं। सोते-बैठते खाते-पीते उसी का ध्यान रखते हैं; अपना धन, यौवन और स्वास्थ्य सब उस जगत् की जूठन और चोर बद-माशों के पीकदान पर न्योछावर कर देते हैं; उसकी सङ्गति में धीरे धीरे शराबी और मांसाहारी हो जाते हैं एवं कोकन प्रभृति प्राणहारक विषैले पदार्थों को सेवन करने लगते हैं। जब तक पैसा पास रहता है, उसे देते हैं और जब पैसा चुक जाता है, तब बापदादे की जायदाद बेच-बेच कर उसको भेंट करते हैं। जब कुछ भी नहीं रहता, ऋण-भार सिर पर चढ़ाते हैं। जब क़र्ज़ भी नहीं मिलता, तब जूआ खेलते और चोरी डकैती करते हैं। किसी न किसी दिन पकड़े जाते हैं, तो जेल की हवा खाने भेज दिये जाते हैं। वहाँ उनका चरित्र नीच क़ैदियों की सुहबत से और भी बिगड़ जाता है। जब मियाद पूरी होने पर छूट कर आते हैं, तब पहले से भी अधिक बुरे कर्म करने लगते हैं, क्योंकि उन्हें उस समय न

किसी से शर्म आती है और न किसी तरह का भय रहता है। अगर कुछ भी नहीं होता है, तो उसी वेश्या के जूठे बर्त्तन मलते हैं, उस के गन्दे कपड़े धोते हैं और मार और गालियाँ खाते हुए उसकी जूठन पर गुज़ारा करते हैं। यह दशा नामी-ग्रामी करोड़पतियों की विवेकहीन होने से होती देखी जाती है। एक बार ज़रा सा अधःपतन आरंभ होने से ही मनुष्य इस हीन दशा को पहुँच जाता है; क्योंकि बुरी आदतें बढ़ती ही चली जाती हैं। ड्राइडन ने कहा है, जिस तरह पहले छोटे-छोटे नाले बनते हैं, फिर वे ही नाले दरिया हो जाते हैं और एक दिन समुद्र का रूप धारण करते हैं; उसी तरह हमारी बुरी आदतें पहले नालों के रूप में रहती हैं, पीछे वे ही नदियों और समुद्र का रूप धारण करके बेत-हाशा बढ़ती चली जाती हैं। इस तरह हमारा अधःपतन अहर्निश होता ही रहता है। लेकिन जो बुद्धिमान प्रत्येक काम में विवेक से काम लेते हैं, ज्ञानमार्ग से ज़रा भी विच-लित नहीं होते, प्रत्येक बुरे और भले काम के आरंभ करने में खूब ग़ौर करते हैं, परिणाम या नतीजेको सोचते हैं, उनका अधःपतन हरगिज़ नहीं होता—उन्हें संसार में दुःख-भोग नहीं करना पड़ता। संसार में विवेक-भ्रष्ट—अपरिणामदर्शी लोग ही दुःख पाते और अपनी हँसी कराते हैं।

दोहा—ईशशीश दिविशैल तजि, भू तजि गिरी समुद्र।
यथा गंग तिमि ज्ञान बिनु, नीचहि गिरते क्षुद्र ॥१०॥

10. Look how the great Ganges has fallen lower and lower from her high pedestal. From the Swarga down on to the head of the God Shiva, thence to the summit of the mountain, from the mountain to the plain earth below and thence down to the sea. Similar is the fate of men, devoid of discrimination, who undergo a down-fall in hundreds of ways.

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो-
नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्द्दभौ।
व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधमन्त्रप्रयोगैर्विषं,
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्॥११॥

पानी से आग को बुझा सकते हैं; छाते से धूपको रोक सकते हैं; तेज़ अङ्कुश से श्रेष्ठ हाथी को वश में रख सकते हैं; डण्डे के ज़ोर से दुष्ट बैल और गधे को क़ाबू में रख सकते हैं; नाना प्रकार की औषधियों से रोगोंको नष्ट कर सकते हैं; विविध प्रकार के मन्त्रों से विष को उतार सकते हैं, शास्त्र में सब का इलाज है, पर मूर्ख का इलाज नहीं है।

योगिराज की टक्कर का ही एक श्लोक और किसी विद्वान् ने कहा है। पाठक ! आपके मनोरञ्जनार्थ हम उसे यहाँ उद्धृत किये देते हैं।

पोतो दुस्तर वारिराशि तरणे दीपो अन्धकारागमे,
निर्वाते व्यजनं मदान्ध करिणां दर्पोपशान्त्यै सृणिः॥

इत्थं तद्भुवि नास्ति यस्य विधिना नोपाय चिन्ताकृता,
मन्ये दुर्जन चित्तवृत्ति हरणे धातापि भग्नोद्यमः ॥

दुस्तर महासागर से पार होने के लिये नाव है; अन्धकार नाश करने के लिये दीपक है; हवा करने के लिये पंखा है; मदमत्त गजराज के घमण्ड को नाश करने के लिये अङ्कुश है। पृथ्वी पर ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसके उपाय की विधाता ने फ़िक्र न की हो। इस को मानते हुए भी यह कहना पड़ता है, कि दुष्ट की चित्तवृत्ति को हरण करने के उपाय में विधाता का भी उद्योग निष्फल हुआ; अर्थात् दुष्ट या मूर्ख की दवा स्वयं ब्रह्मा भी न निकाल सका।

जिस विधाता की चातुरी और कारीगरी को देखकर मनुष्य चकित हो जाता है, जिसने पृथ्वी, आकाश, सूर्य और चाँद तथा अगणित तारागणों की सृष्टि की, जिसने मनुष्य पशु-पक्षी, जलचर, थलचर और नभचर नाना प्रकारके जीव-जन्तुओं की रचना की; जो अनन्त और सर्वशक्तिमान् है, वह विधाता भी मूर्ख की औषधि न निकाल सका, यह कम आश्चर्य की बात नहीं है। यहाँ आकर उसका भी दिमाग़ चक्कर खा गया, तब मनुष्य की क्या सामर्थ्य है, जो ज़िद पर चढ़े हुए, अपने तईं बुद्धिमान समझनेवाले मूर्ख की चित्त-वृत्ति को सुधार सके—उसे किसी तरह समझा-बुझाकर राह पर ला सके? मूर्ख किसी को भी नहीं मानता और बुद्धिमान दूसरे की उचित बात को फौरन मान लेता है।

इसका मुख्य कारण मूर्ख का अपने तईं मूर्ख न समझना है। शेक्सपियर के 'ऐज़ यू लाइक इट' में एक जगह लिखा है*—
"मूर्ख अपने तईं बुद्धिमान् समझता है; किन्तु बुद्धिमान् अपने तईं मूर्ख मानता है।" मूर्ख का अपनी मूर्खता न समझना, अपनी ही बात को सर्व्वश्रेष्ठ समझना, और अपनी निकम्मी अक्ल पर घमण्ड करना ही उसके सदा-सर्वदा मूर्ख रहने का ख़ास कारण है। परमात्मा दुराग्रही मूर्ख से पाला न पटके। बुद्धिमानों को चाहिये, कि ऐसे हठीलों से माथापच्ची करके अपना समय बर्बाद न करें, क्योंकि उन्हें हरगिज़ कामयाबी न होगी। जो ऐसों को राह पर लाने की उम्मीद करता हैं, वह अपने हाथों अपनी मौत को आह्वान करता है। अक्लमन्द उसे भी मूर्ख ही समझते हैं। भामिनी विलास में लिखा है:—

हालाहलं खलु पिपासति कौतुकेन,
कालानलं परिचुचुम्बिषति प्रकामम्।
व्यालाधिपञ्च यतते परिरब्धुमद्धा,
यो दुर्जनं वशयितुं कुरुते मनीषाम्॥

जो मनुष्य दुष्ट को वश में करने का यत्न करना चाहता है, वह हलाहल विष को पीने, कालाग्नि को चूमने और भयङ्कर नागेन्द्र को आलिङ्गन करने की इच्छा करता है।

* The fool doth think he is wise, but the wise man knows himself to be a fool.—*As you like it.*

छप्पय-मिटै छत्रसों धूप, और जल अग्नि बुझावै।
तीखे अंकुश मार, मत्त गज बस में लावै॥
दण्ड दिये ते दुष्ट बैल, अरु गदहा मूरख।
औषधि विविध प्रदान, व्याधि खोवै चित तू रख॥
अरु लिखे अनेकन मन्त्र, जिमि हरहिं जु बिषता सबनकी।
पै इक नहिं औषधि जगत में, दहै मूर्खता कुजनकी॥११॥

11. Fire can be put down by water; protection from the sun can be effected by an umbrella; an elephant can be curbed by a sharp-pointed Ankusha weapon; a head-strong bull or an ass can be controlled by a stick; a disease can be cured by medicines or various preventive measures and the effects of poison can be nullified by the chanting of Mantras. There is a special remedy for everything given in the Shastras, but there is no remedy for an ignorant person.

साहित्यसंगीतकलाविहीनः,
साक्षात्पशुःपुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमान
स्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्॥ १२॥

जो मनुष्य साहित्य और संगीतकला से विहीन है; यानी जो साहित्य और संगीतशास्त्र का ज़रा भी ज्ञान नहीं रखता या इन में अनुराग नहीं रखता, वह बिना पूँछ और सींग का

साक्षात् पशु है। वह घास नहीं खाता और जीता है, यह इतर पशुओं का परम सौभाग्य है।

जो मनुष्य काव्य, अलङ्कार और न्याय प्रभृति का ज्ञान नहीं रखता—इन से अनुराग नहीं रखता; गानविद्या में रुचि नहीं रखता, उस का मर्म नहीं जानता, वह मनुष्य होने पर भी मनुष्य नहीं; किन्तु बिना दुम और सींग का जानवर है। वह घास नहीं खाता और जीता है, यह अन्य पशुओं का सौभाग्य है। अगर वह भी कहीं घास खाता होता, तो बेचारे पशुओं को अपना पेट भरना कठिन हो जाता—बेचारे घास बिना भूखों मर जाते।

जन्म लेने के समय मनुष्य के बच्चे और पशु के बच्चे में कोई फ़र्क़ नहीं होता। दोनों ही ज्ञानहीन पशु होते हैं। केवल रूप रङ्ग और आकृति में फ़र्क़ रहता है, सो यह भेद तो पशुओं में भी रहता है। पशु भी अनेक प्रकार के होते हैं। उन में ही, मनुष्य भी एक प्रकार का पशु ही होता है। मनुष्य जब विद्यार्ज्जन करता है, नाना प्रकार के ग्रन्थ पढ़ता है, विद्वानों को सङ्गति करता है, तब उसे ज्ञान होता है, वह हिताहित और कर्त्तव्याकर्त्तव्य को समझने लगता है, तभी वह पशु से मनुष्य बनता है। मनुष्य और पशु में इतना ही भेद होता है, कि मनुष्य में ज्ञान और विवेक होता है; पर पशुओं में यह नहीं होता। अगर मनुष्य भी अज्ञानी और निरक्षर हो, तो वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं। कहा है—

आहार निद्रा भय मैथुनं च
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणां ।
धर्मोहि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

मनुष्य खाते-पीते हैं, पशु भी खाते-पीते हैं; मनुष्य सोते हैं, पशु भी सोते हैं, मनुष्य डरते हैं, पशु भी डरते हैं; मनुष्य मैथुन करते हैं, पशु भी मैथुन करते हैं। ये चारों काम मनुष्य और पशु समान रूप से करते हैं। फिर; मनुष्य और पशुओं में भेद क्या ? बस, भेद यही है, कि मनुष्यों में धर्म-ज्ञान होता है; किन्तु पशुओं में वह- नहीं होता। धर्म-ज्ञान से ही मनुष्य—मनुष्य कहलाता है और धर्म-ज्ञान के अभाव से पशु—पशु कहलाते हैं। स्विनाक नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने भी यही बात कही है। आप कहते हैं,—"विद्या मनुष्य का गुणोत्कर्ष है, जिस से वह साधारण रूप से इतर पशुओं से विभिन्न समझा जाता है।"

अँगरेज़ी में और हमारे यहाँ भी एक कहावत है—"कोई भी मनुष्य माँ के पेट से बुद्धिमान् और विद्वान् नहीं पैदा होता।" सभी पढ़ लिखकर और अनुभव प्राप्त करके विद्वान् और बुद्धिमान हो जाते हैं। मनुष्य को इस संसार में जीवन का बेड़ा सुख से पार करने के लिये, आगे की यात्रा के लिये अच्छी-अच्छी तैयारियाँ करने के लिये, साहित्य

(Literature) और सङ्गीत शास्त्र (Music) में जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। साहित्यावलोकन से मनुष्य के ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं, उन पर पड़ा हुआ पर्दा हट जाता है। वह स्वार्थ और परमार्थ दोनों की सिद्धि में सफलता लाभ करता है, इस लोक में सुख से ज़िन्दगी बसर करता है और मरने पर स्वर्ग में जाकर देवताओं के समान आनन्द करता है अथवा जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा पाकर नित्य सुख भोगता है।

एक दिन हमारे देश में सङ्गीत-शास्त्र—गान-विद्या या स्वरशिक्षा का बड़ा आदर था। लोग इस कला में अच्छी निपुणता लाभ करते थे। कोई ३०० साल हुए, अकबर के ज़माने में ही, तानसेन जैसे सङ्गीत-कला मर्मज्ञ हो गये हैं। सुनते हैं, उन्हों ने 'दीपक राग' से दीपक जला दिये थे। रावण ने अपनी स्वर विद्या से ही शिव जी को मोहित करके मनमाने वर लाभ किये थे। पञ्चतंत्र में लिखा है—

नान्यद्गीतात्प्रियं लोके देवानामपि दृश्यते।
शुष्क स्नायु स्वराह्लादात्र्यक्षं जग्राह रावणः।

संसार में गीत से अधिक प्यारी चीज़ और नहीं है। तपस्या के कारण से इन्द्रियों के सूख जाने पर भी, रावण ने "स्वर" से ही शिवजी को अपने वशीभूत किया था।

हमारे नारद जी इस कला में कैसे निपुण हैं, इसे कौन

नहीं जानता ? श्रीकृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि से ब्रजबालायें अपने पतियों को सोते छोड़कर, अपने प्राणप्यारे बालकों को विसार कर, कृष्ण भगवान् की सेवा में पहुँचती थीं। भगवान् की बाँसुरी की रसीली ध्वनि से एक दिन जमुना का बहना और चन्द्रमा का चलना बन्द हो गया था। इस पर पशु भी मुग्ध हो जाते हैं। हिरन बंसी की ध्वनि से व्याधा के बन्धन में पड़ कर प्राण दे देता है। सर्प जैसा भयङ्कर जन्तु भी मदारी की पुङ्गी की ध्वनि पर नाचने लगता है, तब मनुष्यों का क्या कहना ?

पाश्चात्य विद्वानों ने भी इस विद्या की कम तारीफ नहीं की है। जगद्विजयी सम्राट्कुलतिलक नेपोलियन ने कहा है—सङ्गीत का सब विद्याओं की अपेक्षा मनुष्य के चित्त पर सब से अधिक प्रभाव पड़ता है, इसलिये आईन बनाने वाले को इसे सब से अधिक प्रोत्साहन देना चाहिये।" लूथर महोदय कहते हैं—"सङ्गीत मनुष्यों को अधिक भव्य, सभ्य, विनीत और नम्र तथा विवेकी और न्यायी बनाता है।" एडीशन महोदय कहते हैं—"सङ्गीत ही एक मात्र इन्द्रियों को आनन्दित करने वाला विषय है, जिसे मनुष्य यदि अधिकता से भी उपभोग करे, तोभी उस से उनके नैतिक और धार्मिक विचारों की हानि नहीं होती।" बीथोविन साहब कहते है—"सङ्गीत आत्मिक और दैहिक जीवन का मध्यस्थ है।" वीवी महाशय कहते हैं—"संगीत हमारी चार

बड़ी ज़रूरियातों में से एक है—पहली ज़रूरियात भोजन है; दूसरी पोशाक है; तीसरी आश्रय-स्थान है और चौथी संगीत या गानवाद्य कला है।" लूथर महाशय और भी कहते हैं—सङ्गीत भविष्यवक्ताओं की विद्या है। इस एकमात्र विद्या से ही अशान्त या उद्विग्न आत्मा को शान्ति मिल सकती है।" एक महाशय कहते हैं- "सङ्गीत में वह जादू है, जो निष्ठुर पशुवत् हृदयों को भी शान्त कर सकता है। कहिये पाठक! अब तो आप ने सङ्गीत-विद्या की गुणावली समझी? यह वह विद्या है, जिस पर मत्त होकर सिपाही रणभूमि में हँसता हुआ अपने प्राण दे देता है।

सारांश यह है, कि साहित्य और सङ्गीत विद्या दोनों ही मनुष्य को मनुष्य बनाने वाली और मानव जीवन के लिये परमावश्यक हैं। जो इन दोनों से कोरे हैं, वे निस्सन्देह पशु हैं। मनुष्यमात्र को इन दोनों से अनुराग रखना चाहिये। काम-धन्धों से जो समय मिले—उसे सोने, कलह करने या ताश चौपड़ में न गँवा कर, इन में लगाना चाहिये। इन में जो आनन्द है, उसे हम लिखकर बता नहीं सकते। बुद्धिमानों का समय इन में ही जाता है। कहा है—

काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥

काव्य और शास्त्र के आनन्द में ही बुद्धिमानों का समय बीतता है। मूर्खों का समय व्यसन, निद्रा और लड़ने-झगड़ने में जाता है।

दोहा—गीत कला साहित्यहूं, नहिं सीख्यो नर जौन।
सींग पूँछ बिन पशू पर, तृण नहिं खाते तौन ॥१२॥

12. A man destitute of literary or musical attainments is a very beast minus tail and horns. He does not eat grass but still lives on and so is a very remarkable member of the beast family.

येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥ १३ ॥

जिन्हों ने न विद्या पढ़ी है, न तप ही किया है, न दान ही दिया है, न ज्ञान ही उपार्ज्जन किया है, न सच्चरित्रों का सा आचरण ही किया है; न गुण ही सीखा है, न धर्म का अनुष्ठान ही किया है—वे इस लोक में वृथा पृथ्वी का बोझा बढ़ाने वाले मनुष्य की सूरत-शकल में मृगों की तरह पशु हैं।

जिन्हों ने न्याय, नीति, वेदान्त आदि शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया है, जिन्होंने मधुसूदन की भक्ति नहीं की है, जिन्हों ने मकुन्द के चरणकमलों का समाधि लगा कर ध्यान नहीं किया है, जिन्होंने सत्पात्रों को दान नहीं दिया है,

जिन्हों ने ग़रीब और मुहताजों के कष्ट निवारण नहीं किये हैं, जिन्हों ने शास्त्रीय और लौकिक ज्ञान सम्पादन नहीं किया है, जिन्हों ने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का ज्ञान लाभ नहीं किया है, जिन्हों ने भले आदमियों का सा आचरण नहीं किया है, जिन्हों ने शीलव्रत धारण नहीं किया है, जिन्हों ने गुणों का उपार्ज्जन नहीं किया है, जिन्हों ने धर्म-कार्य नहीं किये हैं—उन्हों ने इस दुनियाँ में, वृथा पृथ्वी का भार बढ़ाने के लिये, पशुओं की तरह जन्म लिया है। वे सूरत-शकल या आकृति से मनुष्य हैं, पर वास्तव में जानवर हैं। हितोपदेश में लिखा है—

दाने तपसि शौर्य्ये च यस्य न प्रथितं यशः ।
विद्यायामर्थलाभे च मातुरुच्चार एव सः ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥

दान, तप, बहादुरी, विद्या और धनार्ज्जन में जिसने नाम नहीं कमाया है, वह महतारी के मलमूत्र के समान है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन में से जिसे एक को भी प्राप्ति नहीं हुई, उस का जन्म लेना बकरी के गले के स्तनों की भाँति वृथा ही है । परम नीतिज्ञ महात्मा शेख़ सादी ने भी कहा है—

चूँ इन्साँरा न बाशद फ़ज़लो ऐहसाँ ।
चे फ़र्क़ज़ आदमी ता नक़्श दीवार ॥

हाजी ते नेस्ती शुतरस्त अज़ बराये आँके ।
बेचारा ख़ार मी खुरद वा बार मी बरद ॥

यदि मनुष्य में गुण सम्पादन करने और परोपकार करने की इच्छा न हो, तो उस में और दीवार पर खिँचे चित्र में क्या अन्तर है ? जिस हाजी में दया आदि सद्गुण नहीं हैं, उस से वह ऊँट अच्छा जो काँटे खाकर बोझ उठाता है ।

और भी कहा है—पूर्णवयस्क वही मनुष्य है, जो सांसारिक वासनाओं से मन हटा कर, ईश्वर के प्रसन्न करने के उद्योग में लगा रहता है । जिस में यह बात नहीं, उसे विद्वान् पूर्णवयस्क—जवान नहीं समझते । पानी की एक बूँद ने चालीस दिन तक माँ के पेट में रह कर मनुष्य का रूप प्राप्त किया । अगर किसी पूरी उम्र के आदमी में समझ, ज्ञान और सच्चरित्रता या शील न हो, तो उसे "मनुष्य" न कहना चाहिये ।

दोहा—विद्या दान न ज्ञान तप, शील धर्म गुण हीन ।
बिचरहिं ते नररूप पशु, भूमि भार अति दीन ॥१३॥

13. Those who neither possess knowledge nor perform penances, who do not cultivate habits of charity and self-realisation, and who have neither politeness nor capability nor a sense of duty, are only a burden of this earth and roam over it like beasts in the shape of men.

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह ।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ॥ १४ ॥

सिंह व्याघ्र प्रभृति वनपशुओं के साथ घूमना अच्छा; पर मूर्ख का सहवास इन्द्रभवन में भी भला नहीं ।

मनुष्य के न पहुँच सकने योग्य दुर्गम पहाड़ों और भयानक घोर जङ्गलों में सिंह, व्याघ्र आदि हिंसा करने वाले जानवरों में रह कर ज़िन्दगी को ख़तरे में डालना कहीं अच्छा, पर मूर्ख के साथ मेलजोल, दोस्ती और परिचय करके स्वर्ग-समान सुखों का भोगना किसी दशा में भी भला नहीं । दरिद्रता का जीवन यापन करना भला; पर मूर्ख या दुष्ट के साथ अमीरी के सुख भोगना भला नहीं ।

किसी और महापुरुष ने भी कहा है:—

वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्ट वृषभो
वरं वेश्या पत्नी न पुनरविनीता कुलवधः ।
वरं वासोऽरण्ये न पुनरविवेकाधिप पुरे
वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः ॥

सूनी ग्वाड़ भली, पर दुष्ट बैल अच्छा नहीं; वेश्या पत्नी अच्छी, पर दुश्चरित्रा कुलवधू भली नहीं; वन में बसना अच्छा, पर अविवेकी—अविचारवान् के राज्य में रहना भला नहीं । मर जाना भला, पर नीच का सङ्ग करना अच्छा नहीं ।

ईसाइयों की इञ्जील में लिखा है—"बुद्धिमानों की झिड़कियाँ सुनना भला, पर मूर्खोंके गीत सुनना अच्छा नहीं ।"* और भी कहा है—"जो बुद्धिमानों की सङ्गति करता है, वह निश्चय ही बुद्धिमान हो जायगा; किन्तु मूर्खों के साथ रहनेवाला अवश्य ही नष्ट हो जायगा †"

हितोपदेश में कहा है:—

> त्यज दुर्जन संसर्गं, भज साधु समागमम् ।
> कुरु पुण्यमहोरात्रं, स्मरन्नित्यमनित्यताम् ॥

दुर्जनों का संसर्ग त्याग, सज्जनों का सङ्ग कर और सदा संसार की अनित्यता का ध्यान रख कर, दिन-रात पुण्य सञ्चय कर ।

और भी कहा है—

> न स्थातव्यं न गन्तव्यं दुर्जनेन समं क्वचित् ।
> काक संगाद्धतो हंसस्तिष्ठन् गच्छंश्च वर्तकः ॥

दुष्टके साथ न रहना चाहिये और न उसके साथ चलना चाहिये । कव्वे के साथ रहने से हंस और साथ चलने से बटेर मारा गया ।

शेख़सादी ने भी कहा है—"जो दुष्टों की सङ्गति करता

---

* It is better to hear the rebuke of the wise than for a man to hear the song of fools.—*Bible*

† He that walketh with wise man shall be wise ; but a companion of fools shall be destroyed.—*Bible*

है, वह भला आदमी नहीं बनता । फरिश्ता यदि देवों की सङ्गति करता है, तो चोरी और धूर्त्तता ही सीखता है ।"

मनुष्य जैसे की सङ्गति करता है, वैसा ही हो जाता है । हीन की सङ्गति से हीन, समान की सङ्गति से समान और उच्च की सङ्गति से उच्च हो जाता है । जो मूर्ख और दुष्टों की सङ्गति करता है, वह स्वयं मूर्ख हो जाता है और अपनी तथा अपने मूर्ख साथियों की सङ्गति से विविध प्रकार के क्लेश और दुःख भोग करता है; इसीलिये मूर्ख और दुष्टों के सङ्ग रहने-सहने, चलने-फिरने और बोलने-चालने तक की मनाही की है; क्योंकि दुष्ट अपने अच्छे-से-अच्छे साथी को अपना जैसा बना लेते हैं ।

कुसङ्ग सर्वथा परित्याज्य है । कुसङ्ग के समान सर्व्वनाशक और कुछ भी नहीं है । जिन लोगों का अधःपतन हुआ है उनसे पूछिये, तो उन में से प्रायः सभी अपने अधःपतनका कारण कुसङ्ग बतावेंगे । संसार में कुपथगामियों की संख्या बहुत है । ये लोग भले आदमियों को ख़राब-ख़राब क़िस्से-कहानियाँ सुना कर, लण्डनरहस्य, छबीली भटियारी, तोता-मैना के क़िस्से प्रभृति पुस्तकों के पढ़ने का चसका लगा कर, रण्डियों के यहाँ ले जाकर, थियेटर के तमाशे दिखा कर— अनेक प्रकार के आचरण करके और प्रलोभन देकर बेदाग़ आदमियों को भी ख़राब कर देते हैं । मूर्खों के साथ रहकर मनुष्य लड़ना-भिड़ना, जूआ खेलना, चोरी करना, शराब

पीना, ऐयाशी करना—ऐसे-ऐसे ही गन्दे काम सीखता है।

मूर्ख और दुष्टों के साथ रहने से काम, क्रोध, लोभ, मोह की उत्पत्ति होती है और स्मृति तथा बुद्धि का नाश होता है। नीचों के दृष्टान्त से, उनके साथ कुसङ्गीत सुनने और ख़राब पुस्तकें पढ़ने से, मनुष्य के दिल में, स्वभाव से ही, काम की उत्पत्ति होती है—भोग-लालसा बलवती होती है और जब भोगेच्छा की परितृप्ति नहीं होती, उस में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित होती है, तब क्रोध का उद्रेक होता है। क्रोध से मोह की उत्पत्ति होती है। उस समय मनुष्य का चित्त अन्धकारावृत हो जाता है। चित्त में अँधेरा होते ही स्मृतिभ्रम होता है अर्थात् जो कुछ ज्ञान सञ्चय हुआ था, दृष्टान्त देख कर या शास्त्र पढ़ कर जो सत्पथानुरागी होने की इच्छा हुई थी, वह सर्वथा नाश हो जाती है। इस तरह स्मृति-विभ्रम होने से ही बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धि नाश होने से मनुष्य की वैसी ही दशा होती है, जैसी कि नाव का पाल टूट जाने से नाव की होती है। बहुत क्या कहें, बुद्धि के नाश से सर्वनाश हो ही जाता है। मूर्ख और नीचों के सङ्ग रहने से उस बुद्धि का ही नाश हो जाता है, जिस के बिना मनुष्य इस जगत् में एक क्षण भी स्थित नहीं रह सकता; इसी से महापुरुषों ने मूर्खों की संगतिसे वन्य पशुओं की संगति अच्छी कही है।

उनके साथ रह कर मनुष्य कदाचित् जीवन-रक्षा कर भी ले; पर इन के साथ मनुष्य की ख़ैर नहीं । उनके खा जाने से तो मनुष्य का जीवन ही नाश होता है—परलोक नहीं बिगड़ता; पर इन की सङ्गति से पद-पद पर विपत्तियाँ झेलनी पड़ती हैं, लोग थू थू करते हैं और प्राण नाश होने पर परलोक बिगड़ जाता है। कहाँ तक कहें, मूर्खों के संग से सिंह प्रभृति भयानक जन्तुओं का संग लाख दर्जे सुखदायी है ।

लङ्केश रावण नीतिशास्त्रका धुरन्धर पण्डित था; पर सूर्पणखा जैसी मूर्खा ने उस की मति क्षणभर में बिगाड़ दी—उस को, जनकनन्दनी के अलौकिक रूप-लावण्य की बात सुनाकर, पागल कर दिया । सूर्पणखा की बातों से ही उसके चित्त में काम की उत्पत्ति हुई । भय तो उसे किसी का था ही नहीं, कामातुर होने से वह पूरा निर्लज्ज बन गया । चुपचाप आकर, यती का भेष धर कर, जगज्जननी सीता माता को ज़बरदस्ती उठा ले गया । रामचन्द्रजी ने अपने मित्र सुग्रीव और हनुमान प्रभृति की सहायता से वानरदल लेकर लङ्का पर चढ़ाई की। जब रावण को अपनी भोगलालसा में बाधा उपस्थित होती दिखाई दी; वह एकदम से क्रोधान्ध हो गया । क्रोधान्ध होने से उसका चित्त भी अन्धकाराच्छन्न हो गया। शास्त्र और नीति को पढ़ कर जो अपूर्व ज्ञान उसने सञ्चय किया था, वह सब नाश हो गया ।

रही सही बुद्धि भी नष्ट हो गई। इसी से विभीषण, कुम्भकर्ण, मन्दोदरी प्रभृति हितचिन्तकों के समझाने से भी वह न माना और जगत्पति रामचन्द्रजी से लड़ने को तैयार हो गया। परिणाम जो हुआ, उसे संसार में कौन नहीं जानता है ? जिस के घर में एक लाख पूत और सवा लाख नाती थे, उसके घर में दिया जलानेवाला भी न रहा ! यह सब क्यों हुआ ? एकमात्र मूर्खा सूर्पणखा की कुसंगति और कुमन्त्रणा से। कहते हैं, दुष्ट का पड़ोस भी बुरा। रावण के पड़ोस में बसने से बेचारा समुद्र वृथा ही बाँधा गया। अगर वह रावण जैसे नीच के पड़ोस में न होता, तो उसकी दुर्गति क्यों होती ? दुष्ट जो कुकर्म करते हैं, उन का फल भले आदमियों को भी भोगना पड़ता है। हितोपदेश में लिखा है:—

खलः करोति दुर्वृत्तं, नूनं फलति साधुषु।
दशाननोऽहरत्सीतां, बन्धनंस्यान्महोदधेः॥

खल—दुष्ट जो दुष्कर्म्म करता है, उस का फल साधुओं को निश्चय ही भोगना होता है। रावण ने सीताहरण किया और समुद्र बेचारा बाँधा गया।

अगर हम मूर्ख-संसर्ग के दोषों को इसी तरह समझाते चले जायेंगे, तो एक इसी विषय से बड़ा पोथा तैयार हो जायगा। यह हमारा अभीष्ट नहीं, इसलिये मूर्ख की परिभाषा समझा कर ही, हम इस विषय को समाप्त करेंगे।

क्योंकि नासमझ और नातजुर्बेकार लोग केवल अपढ़—निरक्षरों को ही मूर्ख समझते हैं; पर मूर्ख पढ़े लिखे भी होते हैं और बिना पढ़े भी। जर्मनों में एक कहावत है—"पढ़े-लिखे मूर्ख सब मूर्खों से बड़े होते हैं"। मनुष्य को अपढ़ मूर्खों से जितनी बुराई होती है, उसकी अपेक्षा पढ़े-लिखे मूर्खों से बहुत अधिक होती है। निरक्षर मूर्ख साधारण सर्पों के समान होते हैं; किन्तु साक्षर—पढ़े-लिखे मूर्ख मणिधारी कालसर्प के समान भयङ्कर होते हैं।

असल बात यह है, जो मनुष्य मूर्खों के से काम करे, वही मूर्ख है; चाहे वह पढ़ा-लिखा हो और चाहे अपढ़ हो। शेख़सादी ने यही बात कही है:—

इल्म चन्दाँ कि बेश्तर ख़्वानी।
च अमल नेस्त दर तो नादानी॥
न मुहक्क़िक़ बुवद न दानिशमन्द।
चारपाये बरो किताबे चन्द॥

जो पढ़े-लिखे मनुष्य मूर्खों केसे काम करते हैं, वे पढ़े-लिखे मूर्ख हैं। किसी गधे पर यदि कुछ ग्रन्थ लाद दिये जायँ, तो क्या वह उनसे विद्वान् या बुद्धिमान बन सकता है?

चन्दन का भार उठानेवाला गधा केवल भार को बात जानता है, वह चन्दन और उसके गुणों को नहीं जानता;

इसी तरह जो लोग अनेक शास्त्रों को पढ़ तो लेते हैं, पर शास्त्रों के उपदेशानुसार नहीं चलते—वे मूर्ख गधे ही हैं। ऐसों को ख़ाली अहंकार हो जाता है। इस से उन की मूर्खता और भी भयङ्कर हो जाती है। अँगरेज़ी में एक कहावत है—"विद्या से मनुष्य बुद्धिमान हो जाता है; किन्तु मूर्ख उस से और भी मूर्ख हो जाता है।" गुलिस्ताँ में लिखा है—"निकम्मे लोहे से कोई भी अच्छी तलवार नहीं बना सकता। अक़्लमन्दो! सुनो, बदज़ात नालायक़ को नेक बनाना असम्भव है। मेह—क्या बाग़ीचा और क्या ऊसर ज़मीन—सर्वत्र यकसाँ जल बरसाता है, पर बाग़ीचों में लाला फूलते हैं और ऊसर में घास उपजती है। ऊसर ज़मीन में कभी सम्बुल नहीं लगता।" इसका यही मतलब है, कि जिन में स्वाभाविक योग्यता होती है, वे ही विद्या से बुद्धिमान् बन जाते हैं।

वकिल नामक एक विद्वान् कहते हैं—"विषयों से परिचित होना यथार्थ विद्या नहीं है; किन्तु विषयों का प्रयोग करना यथार्थ विद्या है। उस से मनुष्य ख़ाली अहंकारी बनता है और इस से दार्शनिक पण्डित होता है।" हमारे भारत के भूतपूर्व्व स्टेट सेक्रेटरी जान मारले ने भी कहा है—"यह समझना बड़ी ग़लती है, कि हमने अमुक उच्च श्रेणी के ग्रन्थ को एक, दो या दस बार पढ़ लिया। बस, अब हो गया······तुम्हें अपनी रोज़ाना ज़िन्दगी में उसे अपना साथी

बनाना चाहिये।" बात यह है, जो पढ़ो उस पर विचार करो और उसे अपने जीवन में प्रयोग करके अनुभव प्राप्त करो।

बहुत ही कम लोग ऐसा करते है। लोग पढ़ते हैं, सो करते नहीं; उत्तमोत्तम सारपूर्ण निबन्ध लिखते हैं; परमोत्तम कवितायें करते हैं; पर आप स्वयं वैसे उत्तम कर्म नहीं करते। मैंने स्वयं अनेक लोग ऐसे देखे हैं, जो सचमुच ही लिखने में कमाल करते हैं। विद्याबुद्धि के कारण उनकी सुख्याति भी बहुत है। पर जब मैंने उनके भीतरी चरित्रों पर निगाह दौड़ाई, तो मालूम हुआ, कि उन जैसे नीच, निर्दयी, कपटी, अहंकारी बहुत कम लोग हैं। उन से निरक्षर ग्रामीण लाखों दर्जे उत्तम हैं। वे पढ़े-लिखे मूर्ख अपनी सामान्य विद्या के कारण मदोन्मत्त हाथी से भी अधिक मतवाले रहते हैं। उनके अहंकार की सीमा नहीं। जिन में अहंकार है, उन्हें विद्वान् कौन कह सकता है? जो अहंकारी है, उस में कौनसा दुर्गुण नहीं? विद्या का फल अहंकार का नाश होना है। जिन में अहंकार है, वे तो मूर्खों के राजा हैं। बकौल शेखसादी, वे उस बर्र के समान हैं, जो डङ्क तो मारती है, किन्तु मधु नहीं देती। उन से मनुष्यों को कष्ट ही होता है।

अब बहुत हो गया। समझदारों को सब तरह के मूर्खों से सदा अलग रहना चाहिये। मूर्खों की छाया भी भली

नहीं। दुष्टों का ज़रा सा संसर्ग भी बुरा। एक बार एक कारखाने के स्वामी मेरे यहाँ आकर ठहरे। मैंने उन्हें ऊँचे दर्जे का आदमी समझ कर, उनकी बड़ी आव-तवाज़ा की। उनके लिये नाना प्रकार के षट्‌रस भोजन बनवाये और चाँदी सोने के बर्तनों में परोस कर खिलाये। और भी सब तरह से उनकी ख़ातिर की। नतीजा यह हुआ, कि वे कुढ़ गये और मेरे सर्वनाश की बन्दिशें बाँधने लगे। उन से जो बना, उस में उन्होंने घाटा न रखा; पर, परमात्मा की दया से, मेरा बाल भी बाँका न हुआ। महामुनि वशिष्ठजी ने महाराज विश्वामित्र को अपने आश्रम में टिका कर क्या-क्या आफ़तें नहीं उठाईं ? इसी से कहा है:—

वक्रैः क्रूरतरैर्लुब्धैर्न कुर्य्यात्प्रीति संगतिम् ।
वशिष्ठस्याहरद्धेनुं विश्वामित्रो निमन्त्रितः ॥

दोहा—कुटिल क्रूर लोभी जो नर, करै न संगति ताहि ।
ऋषि वशिष्ठ धेनू हरी, विश्वामित्र जु चाहि ॥

पर ऐसे दुष्टों का पहचानना सहज नहीं। आप किसी की विद्या-बुद्धि का हाल कदाचित् एक ही दिन में जान लें, पर उसके मानसिक दोषों का पता आप को वर्षों में भी नहीं लग सकता। इसलिये शीघ्र ही किसी पर विश्वास न कर लेना चाहिये—शीघ्र ही उसे अपना साथी न बना लेना चाहिये; चाहे वह कैसा ही विद्वान् और हँसमुख क्यों न

हो। अगर किसी मूर्ख से पाला पड़ गया, तो आप को दिन में तारे दीख जायँगे। गोल्डस्मिथ ने कहा है:—"मर्खों की संगति, आरम्भ में, यदि हमें हँसा भी दे, तोभी अन्त में वह हमें ग़मगीन बनाये बिना न रहेगी।"*

चाणक्य ने कहा है:—

> मूर्खस्तु परिहर्त्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः ।
> भिनत्ति वाक्यशल्येन, अदृशं कंटको यथा ॥

मूर्ख से दूर रहना ही उचित है; क्योंकि वह देखने में मनुष्य है, पर यथार्थ में दो पाँव का पशु है। जिस तरह अन्धेको काँटा बेधता है; उसी तरह वह अपने वाक्य-रूपी शल्य से मनुष्य के हृदय में छेद कर देता है।

दोहा—बनचर संग रहवो सुखद, वन पर्वत के माहिं ।
पै मूरख संग स्वर्गहू, दुखयुत संशय नाहिं ॥१४॥

14. It is better to wander over hills or forests in the company of wild animals rather than to live in the society of ignorant men in the palace of Indra (the God of Paradise).

---

* The company of fools may at first make us smile, but at last never fails of rendering us melancholy.—*Goldsmith.*

विद्वानों की प्रशंसा ।

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमा-
विख्याता कवयो वसन्ति विषयेयस्यप्रभोर्निर्धनाः
तज्जाड्यं वसुधाधिपस्य कवयोह्यर्थं बिनापीश्वराः,
कुत्स्याः स्युः कुपरिक्षका हि मणयो यैरर्घतः पातिताः ॥१५॥

जिन कवियों की वाणी शास्त्राध्ययन की वजह से शुद्ध और सुन्दर है, जिन में शिष्यों के पढ़ाने की योग्यता है, जो अपनी विद्या के लिये सुप्रसिद्ध हैं—ऐसे विद्वान् जिस राजा के राज्य में निर्धन रहते हैं, वह राजा निस्सन्देह मूर्ख है। कविजन तो बिना धन के भी श्रेष्ठ ही होते हैं। रत्नपारखी यदि किसी बहुमूल्य रत्न का मोल घटा दे, तो रत्न का मूल्य कम न हो जायगा। रत्न का मूल्य तो जितना है उतना ही बना रहेगा; हाँ, मूल्य घटानेवाला अनाड़ी समझा जायगा।

जो राजा शुद्ध और मधुर वाणी बोलनेवाले, शिष्यों को सम्पूर्ण शास्त्रों की शिक्षा देने की योग्यता रखनेवाले सुप्रसिद्ध विद्वानों की क़दर नहीं करता, उनसे राजकाज में सलाह नहीं लेता, उनको उनकी योग्यतानुसार पद देकर उनका धनाभाव नहीं मिटाता,—वह राजा निस्सन्देह मूर्ख है—वह स्वयं विद्वान् नहीं है। अगर उसने स्वयं विद्याध्ययन किया होता, तो निश्चय ही पण्डितों की क़दर करता। राजा की बेक़दरी

से विद्वानों की योग्यता नहीं घट जाती, किन्तु राजा की मूर्खता ही प्रकट होती है। यदि कोई मूर्ख हीरे को पा कर फेंक दे, तो क्या हीरे की क़ीमत कम हो जायगी? जंगलों में भील कोल आदि जंगली लोग गजमोतियों को पा कर भी फेंक देते हैं। क्या उनके फेंक देने से मोतियों का मूल्य घट जाता है? जब वे सच्चे जौहरियों के हाथ पड़ जाते हैं, तब उनका यथार्थ आदर होता ही है। गुणी लोग ही गुणवानों की क़दर करते हैं---वे ही उनसे सन्तुष्ट होते हैं। निर्गुणियों को गुणियों से कभी भी प्रसन्नता नहीं होती। भौंरे दूर से भी आकर कमल का मधुपान करते हैं; पर मेंडक रात-दिन पास रहकर भी उनका मज़ा नहीं लेते। मेंडकों की अजान-कारी या बेक़दारी से कमलों का क्या घट जाता है?

शेख़सादी ने कहा है:---

आलिम अन्दर मयाने जाहिल रा।
मस्ले गुफ़्तह अन्द सद्दीकाँ॥
शाहिदे दर मयाने कोरानस्त।
मसहफ़े दर मयाने ज़िन्दीक़ाँ॥

विद्वानों की क़दर विद्वान् ही करते हैं। मूर्खों में विद्वानों की वही दशा होती है, जो किसी सुन्दरी की अन्धों में और धर्मपुस्तक की नास्तिकों में।

और भी कहा हैः—

परिडत जन को श्रम परम, जानत जे मत-धीर ।
कबहुँ बाँझ न जानही, तन प्रसूत की पीर ॥
मूरख गुण समझै नहीं, तो न गुणी में चूक ।
कहा भयो दिनको बिभो, देखी जो न उलूक ॥
बिरले नर पंडित गुनी, बिरले बूझनहार ।
दुखखण्डन विरले पुरुष, ते उत्तम संसार ॥

पण्डितों को राजाओं या अमीरों की बेक़दरी से मन में दुःखित न होना चाहिये। उनके पास यदि उत्तम विद्या है, तो क्या घाटा है? विद्या स्वयं अक्षय धन है। एक मूर्ख की अवज्ञा से क्या होगा? कोई न कोई गुणग्राही मिल ही जायगा। उनके दुःखित चित्त के सन्तोष-विधानार्थ हम "भामिनी विलास" की एक अन्योक्ति यहाँ उद्धृत कर देना उचित समझते हैं :—

कमलिनी मलिनी करोषि चेतः
किमिति बकैरवहेलिताऽनभिज्ञैः ।
परिणतमकरन्द मार्मिकास्ते
जगति भवन्तु चिरायुषो मिलिन्दाः ॥

हे कमलिनी! अगर तेरे मकरन्द के मर्म को समझने-वाले भौंरे संसार में जीते हैं, तो तू मूर्ख बगुलों की अवज्ञा से अपने मन को क्यों दुखी करती है?

छप्पय—सब ग्रन्थन को ज्ञान, मधुर बाणी जिनके मुख।
नित प्रति विद्या देत, सुयशको पूर रह्यो सुख॥
ऐसे कवि जिहिं देश, बसत निर्धनता लहि अति।
राजा नाहिं प्रवीण, भई याही ते यह गति॥
वे हैं विवेक सम्पति सहित, सब पुरुषनमें अतिहि बर।
घट कियो रतन को मोल, जिन तेइ जौहरी कूरनर॥१५॥

15. If the poets of reputed fame whose speech is beautified by elegant expressions derived out of the sacred bore of Shastras and whose knowledge is fit for being imparted to their disciples, live in the territory of a King in a state of poverty, the fault lies at the door of the King himself; otherwise the poets are the Lords of all even without the possession of wealth. It is the unworthy jewellers who are to blame if they have reduced the price of precious gems (through their want of knowledge in setting the price of those gems).

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा,
ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम्।
कल्पांतेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं,
येषां तान्प्रति मानमुज्झतनृपाः कस्तैःसह स्पर्द्धते॥१६॥

हे राजाओ! जिन महापुरुषों के पास असाधारण विद्या-रूपी गुप्त धन है, उनसे आप हरगिज़ भी अभिमान न करें।

उस धन को चोर देख नहीं सकते, उस से सदा सुख की ही वृद्धि होती है, याचकों को देने से भी वह सदा बढ़ता ही रहता है और कल्पान्त या प्रलय काल में भी उसका नाश नहीं होता। जिनके पास ऐसा धन है, उनकी बराबरी कौन कर सकता है ?

जो राजा या धनी लोग अपने धन-वैभव के कारण से विद्वानों के सामने अभिमान करते हैं, उनको अपने मुक़ाबिले में तुच्छ समझते हैं,—उनका मान मर्द्दन करने के लिये राजर्षि भर्तृहरिजी कहते हैं—"हे धनियो ! आप का धन चोर-चकोर, लुटेरे और डाकू सब की नज़रों में रहता है। इसे आप छिपा कर भी छिपा नहीं सकते, इसलिये इसके जाने का सदा भय रहता है। आप के धन से आप को वास्तविक सुख कभी नहीं मिलता। इसके कमाने में दुःख, इसकी रक्षा में दुःख और इसके नाश में दुःख है। ज्यों-ज्यों यह बढ़ता है, त्यों-त्यों चिन्ता और तृष्णा बढ़ती है। धनियों का जीवन सदा ख़तरे में रहता है। अगर यह धन माँगने वालों को दिया जाता है या और तरह ख़र्च किया जाता है, तो घटता ही जाता है, देने से बढ़ता नहीं। आप का यह धन चन्द-रोज़ा है; सदा-सर्वदा नहीं रहता। अब विद्या धन की महिमा सुनिये,—वह धन सचमुच ही गुप्त धन है। वह किसी को भी नहीं दीखता, इसी से उसे चोर चुरा नहीं सकते; डाकू लूट नहीं सकते; उस से उसके रखनेवालों का सदा भला ही होता

है। वह चिन्ता और शोक घटाता और मन को प्रफुल्लित करके सुख को बढ़ाता है। उसकी रक्षा की चिन्ता नहीं, जाने का खटका नहीं। वह ज्यों-ज्यों दिया जाता है, त्यों-त्यों उल्टा बढ़ता है और जन्मजन्मान्तर क्या कल्पान्त में भी नाश नहीं होता—मनुष्य के हर बार जन्म लेने पर साथ रहता है। उस असाधारण अक्षय धन की बराबरी क्या आप का यह तुच्छ साधारण और क्षणभङ्गुर धन कर सकता है? जिनके पास असाधारण गुणोंवाला विद्याधन है, वे सचमुच ही महापुरुष हैं। उनकी समता संसार के राजा महाराजा और धनी कदापि नहीं कर सकते। जो मूर्ख और नासमझ हैं, वे ही विद्वानों के सामने ऐंठते और अभिमान करते हैं; जिन में कुछ भी अक्ल है, वे विद्वानों के सामने अपने धनैश्वर्य्यका घमण्ड नहीं करते। महामूर्ख ही इस तुच्छ और सदा दुःखदायी धन से फूलते और अपने तईं सुखी मानते हैं।

छप्पय—चोर सकत नहिं चोर, भोर निशि पुष्ट करत हित।
अर्थिन हूँ को देत, होत क्षण क्षणमें अगणित॥
कबहूँ विनसत नाहिं, लसत विद्या सु गुप्त धन।
जिनके ये सुख साज, सदा तिनको प्रसन्न मन॥
राजाधिराज प्रभु छत्रपति, ये एतो अधिकार लहि।
उनको निहार दृग फेरिबो, यह तुमको है उचित नहिं॥१६॥

16. Knowledge is a thing incapable of being stolen by thieves. It is always beneficial to everybody. Imparted to those whe seek for it, it invariably finds something added to it. It is not destroyed even at the end of a Kalpa. O Kings, give up your pride in respect to those to whom this knowledge is their sole internal wealth. Who would behave improperly towards them ?

अधिगतपरमार्थान् पण्डितान्मावमंस्था-
स्तृणमिव लघुलक्ष्मीर्नैव तान्संरुणद्धि।
अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां,
न भवति विसतन्तुर्वारणं वारणानाम् ॥१७॥

हे राजाओ ! जिन्हें परमार्थ-साधन की कुञ्जी मिल गई है, जिन्हें आत्मज्ञान हो गया है, उनका आप लोग अपमान न कीजिये; क्योंकि उनको तुम्हारी तिनके जैसी तुच्छ लक्ष्मी उसी तरह नहीं रोक सकती, जिस तरह नवीन मद की धारा से सुशोभित श्याम मस्तक वाले मदोन्मत्त गजेन्द्रको कमलकी डंडी का सूत नहीं रोक सकता।

जिनका ईश्वर में सच्चा प्रेम हो जाता है, जो उसके अनन्य भक्त हो जाते हैं, जिनका उस पर सच्चा विश्वास हो जाता है अथवा जो आत्मा और ब्रह्म को जान जाते हैं, वे केवल ईश्वर या अपनी आत्मा में ही मस्त रहते हैं। उन्हें संसारी धन-वैभव तो क्या त्रिलोकी का आधिपत्य भी तुच्छा-तितुच्छ जँचता है। वे धन के लोभ से संसारी राजा महा-

राजाओं और धनियों की खुशामद क्यों करने लगे ? जो आत्मानन्द में मग्न रहते हैं या अपनी अचल भक्ति से ईश्वर को अपना बना लेते हैं, उन्हें किस बात का अभाव रहता है ? अष्ट सिद्धि नवनिधि उनके सामने हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। महाकवि दाग़ ने कहा है:—

तेरी बन्दा नवाज़ी हफ्त किशवर बख्शा देती है।
जो तू मेरा जहाँ मेरा अरब मेरा अजम मेरा ॥

तेरी सेवा करने से सातों वलायतों का राज्य मिल जाता है। जब तू अपना हो जाता है, तो सारे संसार के अपना होने में क्या सन्देह ?

किसी बादशाह ने एक महात्मा से पूछा—"क्या तुम कभी मेरा भी ख़याल करते हो ?" महात्मा ने जवाब दिया— "हाँ, उस समय जब कि मैं ईश्वर को भूल जाता हूँ।"

शेख़सादी ने कहा है:—

हर छ दवद आँकसजे दरे ख़ेश बर आनद।
बाँरा बख़्वानद बदरे कस न दवानद ॥

जिसे ईश्वर अपने द्वार से भगा देता है, वही घर-घर टुकड़े माँगता फिरता है; परन्तु जिसे वह अपने पास बुला लेता है, उसे किसी के भी द्वार पर जाने की ज़रूरत नहीं होती ; अर्थात् जिनका ईश्वर से प्रेम हो जाता है, जिन्हें आत्मज्ञान

हो जाता है, वे धन और रोटी के लिये किसी की खुशामद नहीं करते । अज्ञानी ही जगत की झूठी माया में फँसते हैं ।

हमें इस मौके पर एक कहानी याद आ गई है । उसे हम अपने पाठकों के उपकारार्थ नीचे लिखे देते हैं—किसी राजाके एक मिहतर था । मिहतर ने एक दिन राजभण्डार में चोरी करने का विचार किया । आधी रातके समय वह राजा के शयनागार के पास ही सेंध लगाने लगा । ठीक उसी समय रानी ने राजा से कहा—"मैं कितने दिनों से कहती हूँ, पर तुम बड़ी पुत्री की शादी नहीं करते ।" राजा ने कहा—"उपयुक्त वर मिले बिना, मैं किस के हाथ कन्या समर्पण करूँ ?" जब रानी ने बहुत ही कहा सुनी की, तो राजा ने मजबूर होकर कहा—"अच्छा, कल सवेरे ही मैं पास के तपोवन में जाऊँगा । वहाँ मुझे पहले ही जो योगी मिल जायगा, उसी को अपनी कन्या और आधा राज्य दे दूँगा ।" मेहतर ने राजा का यह संकल्प सुन लिया । वह मन-ही-मन विचार करने लगा—"अब वृथा परिश्रम क्यों करूँ ? चोरी करने आया हूँ । अगर किसी को पता लग गया और मैं पकड़ा गया, तो प्राणनाश होने में भी सन्देह नहीं । जाऊँ योगी का वेश बनाकर तपोवन में बैठ जाऊँ ; इस तरह अनायास ही राजकन्या और आधा राज मिल जायगा ।" वह ऐसा स्थिर करके अपने घर गया और वहाँ योगिवेश धारण

करके रात में ही प्रभात न होने पर भी, राजा के आनेकी राह के किनारे ही तपोवन में बैठ गया। गजरदम सवेरे ज्योंही राजा तपोवन के क़रीब पहुँचे, वह समाधि लगा कर बैठ गया। राजा ने देखा कि योगी गम्भीर ध्यान में मग्न है। राजा, उसे साष्टांग प्रणाम करके, उसके पास ही बैठ गया। राजाने बहुत देर तक प्रतीक्षा की, पर महात्मा का ध्यान भङ्ग न हुआ। अवशेष में, बहुत देर के बाद महात्मा ने आँखें खोलीं। राजा ने उस के पैरों में गिर कर नगर में चलने की प्रार्थना की। बहुत कुछ ना-नू के बाद योगिराज ने राजा की बात मान ली। राजा उन्हें बड़े आदर के साथ आगे करके ले आया। राजमहल में आने पर राजा ने योगिराजको सिंहासन पर बैठाकर उनके पैर धोये। रानी चँवर ढोरने लगी। कुछ समय बाद, राजा रानी दोनों ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की—"भगवन्! हमारे एक परमासुन्दरी कन्या है। आप की अनुमति पाने से हम उस कन्या को और अपने आधे राज्यको श्रीचरणों में उत्सर्ग करना चाहते हैं।" मेहतर यह तमाशा देख कर मन ही मन विचारने लगा—"मैंने केवल ढोंग से योगी का वेश धारण किया है—इतने से ही राजा रानी मेरे पैरों में गिर कर राजकन्या और आधा राज्य देने के लिये व्याकुल हैं। अगर मैं सच्चा योगी हो जाऊँगा, तो न जाने कितने राजा रानी मेरे पदानत होंगे—कितनी राजकन्या और कितने राज्य मुझे मिलेंगे।" इस तरह विचार करते-करते उसका दिल

बदल गया। उसने राजा और रानी की प्रार्थना अस्वीकृत कर दी ; और तत्क्षण सिंहासन से उतर कर व्याकुलभाव से भगवान् को पुकारता-पुकारता वनको चला गया। फिर विषय उसका स्पर्श तक न कर सके। भक्ति का द्वार खुल गया। जीवन सार्थक हो गया। भगवान् की कृपा हो गई—अमावस्या का अन्धकार पूर्णिमा की रात में परिणत हो गया। यह तो ज्ञान की प्रथमावस्था की बात है। जिन्हें पूर्ण ज्ञान हो जाता है, उनका तो कहना ही क्या ?

सच है ; जिन पर जगदीश की कृपा हो जाती है, जिनके ज्ञानचक्षु खुल जाते हैं, जिनका अज्ञानान्धकार दूर हो जाता है, उन को संसारी धन-वैभव तुच्छ-से-तुच्छ जँचते हैं। ऐसे ईश्वर के सच्चे भक्तों और ज्ञानियों को जो प्रलोभनों में फँसाना चाहते हैं, वे उन मूर्खों के समान ही हैं, जो मदमत्त गजराज को कमलनाल से बाँधने का वृथा प्रयास करते हैं।

कुण्डलिया—पण्डित परमार्थीन को, नहिं करिये अपमान ।
तृण सम सम्पत को गिनै, बस नहिं होत सुजान ॥
बस नहिं होत सुजान, पटा झरमद है जैसे ।
कमलनाल के तन्तु, बंधे रुक रहिहैं कैसे ॥
तैसे इनको जान, सबहिं सुख शोभा मण्डित ।
आदरसों बस होत, मस्त हाथी ज्यों पण्डित ॥१७॥

17. Do not treat with disrespect the learned who have the highest objects of life within their reach. Riches which are as worthless as a straw are no deterrent for them. The fibre of a lotus-stalk can not restrain an elephant the upper part of whose trunk is black with the marks of fresh *mada* fluid bespeaking the restiveness of his temper.

अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव,
हंसस्य हन्ति नितरांकुपितो विधाता।
न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां,
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्त्तमसौ समर्थः ॥ १८ ॥

अगर विधाता हंस से नितान्त ही कुपित हो जाय, तो उसका कमल-वन का निवास और विलास नष्ट कर सकता है; किन्तु उसकी दूध और पानी को अलग-अलग कर देने की प्रसिद्ध चतुराई की कीर्त्ति को स्वयं विधाता भी नष्ट नहीं कर सकता।

दूध और जल को अलग-अलग कर देने की हंसमें स्वाभाविक सामर्थ्य है। इस गुण के लिये हंस सुप्रसिद्ध है। अगर विधाता किसी वजह से हंस से अप्रसन्न हो जाय, तो वह इतना ही कर सकता है, कि उस को कमल-वन के निवास और विलास से वञ्चित कर दे—उसे सकमल सरोवर में आनन्द न करने दे; पर उसे उस की जन्मसिद्ध क्षीर और नीर को बिलगानेकी चतुराई से रहित नहीं कर सकता। मतलब

यही है, कि कोई भी किसी के स्वाभाविक गुण को नष्ट नहीं कर सकता।

मसल मशहूर है, "गौर रूसे तो अपना सुहाग ले; किसी का भाग्य नहीं ले सकती।" अगर कोई राजा महाराजा या अमीर उमरा किसी विद्वान् से नाराज़ हो जाय, तो उसे अपनी नौकरी से निकाल दे सकता है; बहुत करे तो अपनी दी हुई जागीर और ज़मीन जायदाद छीन ले सकता है; उसे अपनी दी हुई पदवियों से महरूम कर सकता है; पर उसकी विद्या-बुद्धि और स्वाभाविक चतुराई को नहीं छीन सकता। दुनियवी राजा महाराजा तो क्या चीज़ हैं, स्वयं विधाता भी उसकी विद्या-बुद्धि से उसे वञ्चित नहीं कर सकता। सर्व्वस्व नाश हो जाने पर भी विद्वान् के गुण नष्ट नहीं हो सकते; इसलिये विद्वानों को राजाओं और धनियों से भय करने और मन में ज़रा भी निराश होने की आवश्यकता नहीं। राजाओं को भी, इस बात पर विचार करके, अपने मिज़ाज का पारा नीचा रखना चाहिये। विद्वानों को डराने, धमकाने और उनका अपमान करने का ख़याल भी दिल में न लाना चाहिये।

दोहा—कोपित यदि विधि हंसको, हरत निवास विलास।
पय पानीको पृथक गुण, तासु सकै नहिं नाश ॥१८॥

18. The God Brahma, if he becomes angry, can only

deprive a Hansa-bird of its residence in a wood of lotus flowers or its enjoyment of the same; but he is powerless to rob that bird of its untainted and world-wide fame in having the power of separating milk from water when these two are mixed with one another.

केयूरा न विभूषयंति पुरुषं हारा न चंद्रोज्ज्वला।
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्द्धजाः॥
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृताधार्यते।
क्षीयंते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणंभूषणम्॥ १६॥

बाजूबन्द, चन्द्रमा के समान उज्ज्वल मोतियों के हार, स्नान, चन्दनादि के लेपन, फूलों के शृङ्गार और सँवारे हुए बालों से पुरुष की शोभा नहीं होती; पुरुष की शोभा केवल संस्कार की हुई सुन्दर वाणी से है; क्योंकि और सब भूषण निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं, किन्तु वाणी रूप भूषण सदा वर्त्तमान रहता है।

तात्पर्य्य यह है, कि और सब भूषण नाशमान हैं; किन्तु वाणी रूप भूषण नाशमान नहीं; इसलिये और भूषण वाणी रूप भूषण की बराबरी नहीं कर सकते। वाणी रूपी भूषण सब भूषणों से उत्तम है।

और सब ज़ेवर अमीरी के चोचले हैं; जब तक धन रहता है ये रहते हैं; जहाँ धन गया और ये गये। धन का क्या भरोसा? इस क्षण है, अगले क्षण न रहे। धन बिजली की

चमक और बादल की छाया के समान चञ्चल है। जिन्हों ने विद्यार्ज्जन करके, अपनी वाणी को विशुद्ध और सुन्दर कर लिया है, वे वास्तव में रूपवान् हैं। उनका रूप सदा यकसाँ रहेगा। जो लोग पढ़ लिख कर वाणी को विशुद्ध नहीं करते, तमीज़ और तहज़ीब नहीं सीखते; वे चाहे जितने गहने लाद लें, चाहे जितने खूबसूरत बन लें, पर निकम्मे हैं।

छप्पय-कंकन छबि नहिं देत, हार उज्ज्वल नहिं सोहैं।
कर उबटन अस्नान, कुसुम नहिं मनको मोहै॥
केतिक कसे सँभार, नाहिं शोभा दें ऐसी।
बाणी मनहर लसै, एक सुन्दर मुख जैसी॥
जग और अभूषण सब गिरें, टूटें विसते हैं सही।
पै बाणी जो है एक रस, शुभ भूषण बिगड़ै नहीं॥१९॥

19. It is neither armlets nor (pearl) necklaces, bright as the moon, nor bathing, nor (sandal-wood) plastering (of limbs), nor flowers, nor finely dressed hair that can add to the beauty of a man but it is only chastened speech that does so. All the other adornments are destructible, but the ornament of speech is the real ornament.

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तंधनं।
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः॥
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं।
विद्या राजसुपूज्यते नहिधनं विद्याविहीनः पशुः॥ २०॥

विद्या मनुष्य का सच्चा रूप और छिपा हुआ धन है; विद्या मनुष्य को भोग, सुख और सुयश को देनेवाली है ; विद्या गुरुओं को भी गुरु है ; परदेश में विद्या ही बन्धु का काम करती है ; विद्या ही परम देवता है; राजाओं में विद्या का ही मान है, धन का नहीं। जिस में विद्या नहीं, वह पशु के समान है।

निस्सन्देह विद्या मनुष्य का सर्वोपरि रूप है। विद्या कुरूपों को भी रूपवान करनेवाली है। मनुष्य कैसा ही खूबसूरत और नौजवान क्यों न हो, पर विद्या विना उसकी खूबसूरती पलाश के फूल की तरह वृथा और निकम्मी है।

विद्या मनुष्य का गुप्त धन है, उसे चोर चुरा नहीं सकते, डाकू लूट नहीं सकते, राजा छीन नहीं सकता, भाई-बन्धु और कुटुम्बी बँटा नहीं सकते।

विद्या से विनय की, विनय से सुपात्रता की और सुपात्रता से धन की प्राप्ति होती है। धन को उत्तम कार्य्यों में लगाने और सत्पात्रों को देने से धर्म की प्राप्ति होती है। निस्सन्देह विद्या धन, धर्म, सुख और सुयश की देने वाली है। इस में यह बड़ा भारी गुण है, कि यह महानीच को भी राजा तक पहुँचा कर उसे धन और मान से परिपूर्ण कर देती है।

संसार में दो विद्या हैं—(१) शस्त्र-विद्या, और (२) शास्त्र-विद्या। पहली जवानी में ही काम देती है, पर बुढ़ापे में काम नहीं देती ; उस अवस्था में उलटी हँसी कराती है;

किन्तु दूसरी—शास्त्र-विद्या सदा-सर्वदा मनुष्य का कल्याण करती और अन्तकाल तक आदर कराती है।

विद्या उपदेशकों की भी उपदेशक और गुरुओं की भी गुरु है। विद्या से ही संशयों का नाश होता है और परोक्ष प्रत्यक्ष होता है। विद्या सब की आँख है। विद्या-विहीन अन्धा है।

विपद्-मुसीबत और विदेश में विद्या ही सच्चे बन्धु का काम करती है। आपत्तिकाल में यह सच्चे मित्र की तरह सलाह और तसल्ली देती है। घोर विपद् में जब मनुष्य को अपने बचने की ज़रा भी उम्मीद नहीं रहती, तब यह अपने बलसे अपने साथी का सहज में छुटकारा करा लेती है। दुर्दिन में मनुष्य को माता-पिता भाई-बन्धु और अन्यान्य कुटुम्बी त्याग देते हैं, पर यह नहीं छोड़ती। जब मनुष्य की आत्मा शोकताप से जलने लगती है, तब यही सुधावारि सिञ्चन करके उस में शान्ति का सञ्चार करती है। विक्टर ह्यूगो ने कहा है:—"संकट के दिनों में बुद्धिमान लोग पुस्तकों से ही शान्ति लाभ करते है।"* बहुत कहाँतक कहें, विपद् में इसके समान सच्चा मित्र और नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है:—

तुलसी साथी विपति के, विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्यव्रत, राम-भरोसो एक॥

* It is from books that wise men derive consolation in the trouble of life—Victor Huego.

पाश्चात्य विद्वानों ने भी विद्या की कम प्रशंसा नहीं की है। यंग नामक एक विद्वान् ने कहा है—"विद्या चन्द्र-किरणों की तरह उत्तापरहित आलोक प्रदान करती है।" हारवे नामक एक विद्वान् कहते हैं—"जिस तरह सूर्य हमारे पथ को आलोकित करता और हमें काम पर लगाता है; विद्या भी ठीक सूर्य की तरह हमारे पथ को आलोकित करती और हमें सत्कर्मों में प्रवृत्त करती है।" चेष्टरफील्ड महोदय कहते हैं—"बुढ़ापे में विद्या ही हमारा रक्षास्थल और आश्रयस्थान है।"

इसी तरह सभी देशों के विद्वानों ने विद्या महारानी का कीर्त्ति-गान किया है। इन पंक्तियों के लेखक ने जीवन में बहुत से परिवर्त्तन और उलट-फेर देखे हैं; कितनी ही बार इसने धनियों के प्रायः सभी सुख उपभोग किये और कितनी ही बार इसके पास जल पीने तकको लोटा भी न रहा; कितनी ही बार अनेक बन्धुबान्धव इस पर दया करके इसके साथ रहे और कितनी ही बार सभी ने इसे त्याग दिया और यह अकेला निर्जन निर्जल स्थानों और बयाबाँ जङ्गलों में भटकता-फिरा। यह अपने अनुभव से कहता है, कि घोर दुर्दिन में मनुष्य का विद्यादेवी जैसा साथ देती है, सच्चे मित्र की तरह उत्तमोत्तम सलाहें देती है, परम गुरुओं की तरह अच्छे-अच्छे उपदेश देती है, अन्नवस्त्रहीन होनेपर उनकी व्यवस्था करती है, शोक-ताप से जलती हुई आत्मा को शान्ति

प्रदान करती है,—वैसा जगत् में कोई भी प्यारे से प्यारा नहीं करता । बनी-बनी के सभी साथी रहते हैं, बिगड़ी में सभी मनुष्य को त्याग देते हैं । उस समय भी विद्या अपने साथी को नहीं त्यागती । सारे संसार के विद्वान् यदि एक साथ मिलकर भी विद्या-देवी की महिमा बखान करें, तोभी न कर सकेंगे; तब इस क्षुद्रातिक्षुद्र लेखक की क्या सामर्थ्य, जो विद्या देवी के गुणों का बखान कर सके ।

छप्पय-विद्या नरको रूप, अधिक विद्या सुगुप्त धन ।
विद्या सुख यश देत, संग विद्या सुबन्धुजन ॥
विद्या सदा सहाय, देवता हू विद्या यह ।
विद्या राखत नाम लसत विद्याही ते गृह ।
सब भाँति सबन सों अति बड़ी, विद्याको कविजन कहत ॥
शिव विधि कहँ विद्या बसकरत, नृपति न्याय विद्या चहत ॥२०॥

20. Knowledge is the greatest beauty of a man and his most hidden treasure. It is the giver of all enjoyments, fame and happiness. It is the teacher of teachers and serves the function of a relative in going to a foreign country. It is the greatest God. It is knowledge that is honoured by kings, not riches. A man without knowlodge is like a beast.

क्षान्तिश्चेत्कवचेन किं किमरिभिः क्रोधोस्तिचेद्देहिनां,
ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदिसुहृद्दिव्यौषधैः किं फलम् ।

किं सर्पैर्यदि दुर्जनाः किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि,
व्रीडाचेत्किमुभूषणैः सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ॥२१॥

यदि क्षमा है, तो कवच की क्या आवश्यकता ? यदि क्रोध है, तो शत्रुओं की क्या ज़रूरत ? यदि स्वजातीय हैं, तो अग्नि का क्या प्रयोजन ? यदि सुन्दर हृदयवाले मित्र हैं, तो आशुफलप्रद दिव्य औषधियों से क्या लाभ ? यदि दुर्जन हैं, तो सर्पों से क्या ? यदि निर्दोष विद्या है, तो धन से क्या प्रयोजन ? यदि लज्जा है, तो ज़ेवरों की क्या ज़रूरत ? यदि सुन्दर कविताशक्ति है, तो राज्यवैभव का क्या प्रयोजन ?

जिस मनुष्य में क्षमा रूप उत्तम गुण है, उसे अपनी रक्षा की क्या चिन्ता ? क्षमा हज़ार कवचों का एक कवच है। जो तलवार चलानेवाले के सामने अपनी गर्दन नीची कर देता है, उसे कौन मार सकता है ? क्षमाशील के आगे सब का सिर नीचा हो जाता है, उसका कोई शत्रु नहीं । जो क्रोध-जित् है, उसका सदा मंगल है।

जिस मनुष्य में क्रोध है, उसे शत्रुओं का क्या अभाव ? क्रोधी को शत्रुओं का घाटा नहीं। क्रोधी का सदा अमङ्गल होता है । क्रोध के वश होकर, मनुष्य अपने विनाश का कारण आप हो जाता है। क्रोधी को कार्य्याकार्य्य का विचार नहीं रहता। क्रोधान्ध मनुष्य गुरुजन के भी प्राणनाश और अपमान पर उतारू हो जाता है। क्रोधी आत्महत्या को भी

घोर पाप नहीं समझता। क्रोध से क्या-क्या अमङ्गल नहीं होते? दुर्जय दूरस्थ शत्रुओं के जीतने से कोई शूर नहीं हो सकता; जो अन्तःशत्रु क्रोध को जीत ले, वही सच्चा रिपुञ्जय है। जो क्रुद्ध के ऊपर क्रोध नहीं करता, वह अपने तईं और दूसरों के तईं बड़ी भारी विपद् से बचा सकता है। बुद्धिमान मनुष्य बुद्धिबल से क्रोध के जीतने में ही अपनी तेजस्विता समझते हैं। क्रोध के परित्याग करने में जो तेजस्विता प्रकट होती है, उसको मूर्ख नहीं समझ सकते। क्रोधविहीन प्रशान्तचित्त के सुख का आस्वादन अशान्त लोग नहीं कर सकते। विधाता ने मानव-संहार के लिये ही मनुष्य के मन में रजोगुण-स्वरूप जिस क्रोध की सृष्टि की है, केवल उसी के द्वारा जीवों का संहार होता है। यदि हिंसा करने से प्रतिहिंसा करनी पड़े, दुःखित होनेपर दुःख दिया जाय, तो इस प्रणाली से प्रतिहिंसा की अनुहिंसा में समस्त जगत् ही नष्ट हो जाय। क्षमा के द्वारा पृथ्वी का जो अभ्युदय हुआ है, वह तब नयनगोचर न होगा। यदि क्षमा गुण न होता, तो भूतधात्री धरित्री की भूतसृष्टि ही लोप हो जाती। क्षमा से ही धर्म की शान्ति होती है। क्षमाविहीन मनुष्य अपने दोनों लोक नष्ट कर देता है। क्षमाशील मनुष्य इहलोक और परलोक की रक्षा करता है। धर्मनन्दन महात्मा युधिष्ठिर वनवास में द्रुपदतनया महारानी द्रौपदी को यह उपदेश देकर कहते हैं—"हे साधुशीले! यदि मुझे स्वधर्म परित्याग करना

पड़े, तोभी क्षमा को परित्याग करके क्रोध का आश्रय नहीं लूँगा।" पाठको! क्षमा और क्रोध के सम्बन्ध में धर्मराज ने जो अनमोल बातें कही हैं, उन्हें मनुष्यमात्र को अपने हृदय-पट पर अङ्कित कर लेना चाहिये। निस्सन्देह इस जगत् में क्षमा से बढ़कर मनुष्य की रक्षा करनेवाला और क्रोध से बढ़ कर नाश करनेवाला और नहीं है। क्रोध और क्षमा पर गोस्वामि तुलसीदासजी ने केवल चार ही पंक्तियों में बहुत कुछ कह डाला है। पाठक उनकी भी सुधा-समान वाणी का आनन्द लेकर उपदेश ग्रहण करें:—

दुर्जन बदन कमान सम, वचन विमुञ्चत तीर ।
सज्जन उर वेधत नहीं, क्षमा सनाह शरीर ॥
कौरव पाण्डव जानिबो, क्रोध क्षमा को सीम ।
पाँचहि मारि न सौ सके, सबै निपाते भीम ॥

दुष्टों के मुख कमान की तरह होते हैं। उनसे वचनरूपी तीर—वाग्बाण छूटा करते हैं; पर वे सज्जनों के हृदय में नहीं लगते, क्योंकि सज्जन क्षमारूप कवच पहने रहते हैं।

कौरव और पाण्डव क्रोध और क्षमा की सीमा थे। दुर्यो-धनादि क्रोध की मूर्त्ति और धर्मराज क्षमा के अवतार थे। इसी से सौ कौरव भाई मिलकर भी पाँच पाण्डवों को न मार सके; किन्तु अकेले भीमने सौ को मार डाला।

दुर्योधन, दुःशासन और कर्ण प्रभृति दुष्टों ने पाण्डव-

भाइयों को क्या-क्या कष्ट नहीं दिये ? भीमसेन को विष देकर नदी में डुबा दिया। लाक्षागृह में उनके नष्ट करने को आग लगवादी। ये दुष्ट भरी सभा में पाञ्चाली को चोटी पकड़ कर ले आये और उसे नंगी करके उसकी लाज लूटने लगे; पर लज्जारक्षक भगवान् कृष्ण ने कृष्णा की लाज रख ली। कपट के जूए में उन्होंने पाण्डवों का सर्व्वस्व हरण कर लिया। भीम को बैल और स्वयं धर्मनन्दन को कायर प्रभृति क्या-क्या घृणित और कठोर वाक्य उन्होंने नहीं कहे ? पर महात्मा युधिष्ठिरने क्रोध को दबा कर, क्षमा से ही काम लिया। इसी का नतीजा था, कि अल्प-संख्यक पाण्डव बहुसंख्यक कौरवों के मुक़ाबिले में विजयी हुए। क्षमा के प्रताप से ही विजयलक्ष्मीने उनके गले में विजयमाल डाली। इसकी वजह यही है, कि क्षमाशील के साथी स्वयं भगवान् होते हैं। महात्मा कबीर ने कहा है और बहुत ही ठीक कहा है—

> जहाँ दया तँह धर्म है, लोभ जहाँ तहँ पाप।
> जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ क्षमा तहँ आप॥

जनकपुर में रामचन्द्रजी के शिव-धनुष तोड़ने पर क्षत्रियकुलनाशक महापराक्रमी परशुरामजी ने क्रोध के परवश हो रघुकुलतिलक रामचन्द्रजी को क्या-क्या कहनी-अनकहनी नहीं सुनाईं ? पर रामचन्द्रजी ने क्षमाके सिवा क्रोध का नाम भी न लिया। शेष में; परशुरामजी को ही परास्त

हो क्षमा-प्रार्थना करनी पड़ी। क्षमाशील की ही सदा जय होती है; इस में ज़रा भी सन्देह नहीं। महापुरुषों में क्षमा स्वभाव से ही होती है।

एपिकटेटस नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने भी कहा है—"क्षमा प्रतिशोध—बदले से भी कहीं उत्तम है; क्षमा सज्जन-स्वभाव का लक्षण है और प्रतिशोध दुर्जनता का।" अँगरेज़ी में एक कहावत है—"क्षमा सर्वोत्तम प्रतिशोध है।" जर्मनी में एक कहावत है—"क्षमा किया जानेवाला क्षमा करनेवाले को कभी नहीं भूलता।" अँगरेज़ों के धर्म-शास्त्र बाइबिल में लिखा है—"क्रोध मूर्खों के हृदय में निवास करता है।" बहुत लिखना व्यर्थ है—महात्मा सज्जन या बड़े आदमियों में क्रोध नहीं होता। वे क्रोध से सदा दूर रहते हैं और सदा क्षमा से अपनी और जगत् की रक्षा करते हैं। क्रोध से ही कलह होता है और कलह से नाश होता है। कलह से ही छप्पन करोड़ यादवों का नाश हुआ। कलह से ही भारत को ग़ारत करने वाला महाभारत हुआ। कलह से ही सन् १९१४ का विश्वव्यापी महासमर हुआ। यदि भूतपूर्व जर्मनसम्राट् कैसर विलियम और आष्ट्रिया नरेश क्रोधशत्रु को परित्याग करके क्षमा से काम लेते, तो पृथ्वी का इतना धनजन क्यों क्षय होता? अपनी अँगुली पर सारी पृथ्वी को नचानेवाले कैसर को स्वयं छोटे से राज्य हालैण्ड की शरण क्यों लेनी पड़ती? हमने अपनी आँखों से देखा है, कि कलह के मारे

अनेक फलती-फूलती गृहस्थियाँ बात-की-बात में नेस्तनाबूद हो गईं।

यदि मनुष्य कुछ भी समाज-विरुद्ध या लोक-विरुद्ध काम करता है, तो स्वजन या स्वजातीय लोग उसकी निन्दा करते हैं। उससे मनुष्य के दिल में दाह और सन्ताप होता है—हृदय में अहर्निश आग सी जलती रहती है; इसी से कहा है, कि स्वजनों के रहने पर आग की क्या जरूरत?

यदि मनुष्यका सच्चा हितकारी मित्र हो, तो वह सदा सुखी रहता है। मित्र सदा अपने मित्र का हित ही करता है। इस जगत् में मित्र से बढ़ कर मनुष्य का और हितकारी नहीं, माता-पिता और मित्र—ये तीन ही स्वभाव से हितकारी होते हैं; और लोग तो किसी मतलब से हित करते हैं। मित्र ही दुर्दिन में मनुष्य को हर तरह से सहायता करता है; उसको विपद् में छाया की तरह उसके साथ रहता है। जिसके शुद्धचित्त, दाता, सत्यशील, सरल, उदार, अनुरागी, शूर, सुख-दुःख और हर्ष-शोक में समान रहने वाला मित्र है, वह सच्चा भाग्यवान है। उसे इस जगत् में क्या दुःख है? वह सदा सुखी और आरोग्य है। उसके रोग, शोक और दुःखों की वही अव्यर्थ महौषधि है।

इस जगत् में दुर्जनों से बढ़कर मनुष्य को कष्ट देने वाले सर्प भी नहीं हैं। सर्प एकदम से मनुष्य को मार डालता है; पर दुर्जन छिद्र ढूँढ़ कर और घुला-घुला कर मारते

है। हाथी मनुष्य को छू कर मारता है; साँप काट कर या सूँघ कर मारता है; पर दुष्ट हँसते-हँसते प्राणनाश कर देता है। हम तो यही कहेंगे, कि दुर्जनसे कभी पाला न पड़े। जिसके पीछे दुर्जन लगे हैं, उसके पीछे भयङ्कर भुजङ्ग लगे हैं। कहा है:—

> खलहु सर्प इन दुहनमें, भलो सर्प खल नाहिं।
> सर्प डसत है कालमें, खल जन पद पद माहिं॥

यदि मनुष्य में निर्दोष विद्या है, तो धन की क्या ज़रूरत? क्योंकि विद्या स्वयं अक्षय और असामान्य धन है। विद्वान् को कहीं किसी तरह का अभाव नहीं। विद्वान् जहाँ भी चला जाता है, वहीं उसका सत्कार होता है। विद्वान को बयाबाँ जङ्गल में भी मङ्गल है।

यदि मनुष्य में सुकविता करने की शक्ति है, तो उसे राज्य-वैभव की आवश्यकता नहीं। कवियों का राजाओंमें ही मान होता है। राजाओं को भी उनकी सब से अधिक ज़रूरत रहती है; क्योंकि उनके बिना उनके सुयश-सौरभ को दिग्-दिगन्त में कौन फैला सकता है?

जिसमें लज्जा है, जो असत्कर्मों से लजाता है, वह रूपवान् है और सब का गुरु होने योग्य है। वह महा-तेजस्वी सूर्य्य के समान प्रकाशित है; किन्तु जो बुरे कामों से नहीं लजाता, बेहयाई का बुर्क़ा ओढ़ लेता है, वह महा

नीच है । ऐसा कौन है, जिससे कोई न कोई बुरा काम न हो जाय; पर जो अपने किये पर लज्जित होता है, मन-ही-मन अनुताप और पश्चात्ताप करता है, वह निस्सन्देह श्रेष्ठ पुरुष है। ऐसे को परमात्मा निश्चयही क्षमा कर देता है। लज्जा मनुष्य का सच्चा भूषण है। जिस में लज्जा है, उसे और ज़ेवरों की ज़रूरत नहीं। यूरोपविजयी महावीर नेपोलियन ने भी कहा है,—"प्रतिष्ठान्वित जीवन का सर्व्वोत्तम आभूषण लज्जा और नम्रता है......।"

छप्पय-कवच न चहिये ताहि, क्षमा जो चितमें राखत ।
　　कहा राज लों ताहि, सुकविता मुख जो भाषत ॥
　　क्रोध भये अरि कहा, जाति नहिं अनलहि चाहत ।
　　औषध तिनको व्यर्थ, जहाँ सन्मित्र निबाहत ॥
　　अरु धन संचय फलहीन, जो विद्या होय अदूषणौ ।
　　लज्जा संयुत जो होय, तेहि कछू न चहि भूषणौ ॥२१॥

21. If there is forgiveness in a man, where is the need for an armour ? If he has an angry temper, he need not (go far to seek for other) enemies. If there is the pride of caste, where is the need for fire, (as his own pride is sufficient to set fire to his heart in the shape of a feeling of hatred for those inferior to him in caste) ? If one has good friends, he does not stand in need of supernatural drugs. If a man is surrounded by wicked persons, he need not seek for (more

poisonous) snakes. If there is fair and faultless knowledge, what is the use of (any other sort of) wealth ? If a person possesses modesty, why should he seek for (better) ornaments ? If a man is a good poet, he need not wish for a kingdom.

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने,
प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जनेष्वार्जवम् ।
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता,
ये चैवं पुरुषाः कलासुकुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ॥२२॥

जो अपने रिश्तेदारों के प्रति उदारता, दूसरों पर दया, दुष्टों के साथ शठता, सज्जनों के साथ प्रीति, राज-सभा में नीति, विद्वानों के आगे नम्रता, शत्रुओं के साथ क्रूरता, गुरुजनों के साथ सहनशीलता और स्त्रियों में धूर्त्तता या चतुरता का बर्ताव करते हैं,—उन्हीं कलाकुशल नरपुंगवों से लोकमर्य्यादा या लोकस्थिति है ; अर्थात् जगत् उन्हीं पर ठहरा हुआ है।

मनुष्य का कर्त्तव्य है, कि वह अपने बन्धु-बान्धवों और नातेदारों के प्रति उदार व्यवहार करे—अपनी सामर्थ्य-भर उनका पालन-पोषण करे अथवा समय-समय पर—ज़रूरत होने से—उनकी धनधान्यादि से सहायता करे। जो मनुष्य, समर्थ होने पर भी, अपने बन्धु-बान्धवों को मदद नहीं देते, उनके दुःख-दर्द में आड़े नहीं आते, वे जीते हुए ही मृतक के

समान हैं। जिनसे अपने घर वालों और रिश्तेदारों का ही भला न हो, उनका इस जगत् में जन्म लेना ही वृथा है। शुक्र-नीति में लिखा है—"साध्वी स्त्री, पिता की स्त्री—माता, बालक, पिता, विधवा कन्या, पुत्र-वधू, बहिन, भाई, भौजाई, मौसी, भूआ, नाना, सन्तानहीन गुरु, मामा और भाञ्जा—इन सबका अपनी सामर्थ्यानुसार पालन करना ही चाहिये।" महाभारत में कुटुम्ब को न पालने वाला, शत्रु को न दबाने वाला, मिले हुए पदार्थ की रक्षा न करने वाला, सदा स्त्रियों के वश में रहने वाला, सदैव ऋणग्रस्त रहने वाला, महा दरिद्री, मँगता, गुणहीन और शत्रु के अधीन रहने वाला,—ये सब मुर्दे कहे हैं। अपना पेट कौन नहीं भर लेता? अपने पेट तो कव्वे और कुत्ते भी भर लेते हैं। आदमी वही है, जिस से अपने कुटुम्बियों और ग़ैरों का पालन-पोषण होता हो। महात्मा विदुर ने कहा है—"जो दान से मित्रों को, पराक्रम से शत्रुओं को और खान-पान तथा वस्त्र-आभूषण प्रभृति से कुटुम्बियों को जीतता है, उसी का जीना सफल है।" एक अङ्गरेज़ विद्वान् ने भी कहा है—"जो मनुष्य अपने प्रियजनों के लिये जीता है, उनके लिये परिश्रम करता और कष्ट सहन करता है, वह ईर्षा करने योग्य है।" हितोपदेश में भी लिखा है :—

जीविते यस्य जीवन्ति, विप्रा मित्राणि बान्धवाः।
सफलं जीवितं तस्य, आत्मार्थे को न जीवति॥

जिसके जीने से ब्राह्मण, बन्धु-बान्धव और मित्र जीते हैं, उसका ही जीना सार्थक है। अपने लिये कौन नहीं जीता?

संसार में दया के समान और गुण नहीं; दया के समान और धर्म्म नहीं। किसी प्राणी को कष्ट न देना और उसके दुःख को अपने दुःख के समान समझकर दुःख दूर करने की चेष्टा करना ही दया की साधारण परिभाषा है। महात्मा बुद्ध ने संसारियों के कष्ट से ही पानी-पानी होकर, लोकोपकारार्थ, युवावस्था में ही, अपनी युवती स्त्री और शिशु-पुत्र तथा राज-पाट को छोड़, वन में जाकर, घोर तपश्चर्य्या करके अपना शरीर सुखा डाला। उन्होंने ही कहा है—"जो मनुष्य जीवित प्राणियों को दुःख देता है, वह आर्य्य नहीं है; किन्तु जो समस्त प्राणियों पर दया-भाव रखता है, वही आर्य्य पुरुष है।" चीनी महात्मा कन्फ्यूशियस ने कहा है—"मनुष्य को दयालुओं के ही पड़ोस में बसना चाहिये। जो दयालु और चिन्तारहित है, वही श्रेष्ठ पुरुष है।" महात्मा शुक्राचार्य्य ने कहा है—"दया, मित्रता, दान और मधुर वाणी—इन चारों से बढ़ कर और वशीकरण नहीं है। कीड़े-मकोड़े और चींटियों पर भी, अपने समान समझ कर, दया करनी चाहिये। उपकार-योग्य शत्रु का भी उपकार करना चाहिये। दरिद्री का दारिद्र्य मिटाना चाहिये और शोकार्त्त का शोक मिटाना चाहिये।" किसी महापुरुषने कहा है—

"यदि मुक्ति की इच्छा है, तो विषयों को विषवत् त्यागो और सहन-शीलता, सरलता, दया, पवित्रता और सच्चाई को अमृत की तरह पीओ ।" क्या उत्तम उपदेश है ! कबीरदास ने भी कहा है—

दया भाव जानै नहीं, ज्ञान कथै बेहद ।
ते नर नर्कहि जायँगे, सुनि सुनि साखी शब्द ॥
दाया दिल में राखिये, तू क्यों निरदय होय ।
सांई के सब जीव हैं, कीरी कुञ्जर दोय ॥

राज-सभा में मनुष्य को नीतिपूर्व्वक ही बर्तना चाहिये । राजाओं के सारे काम नीति से होते हैं । प्रजापालन और दुष्टों का नाश—इस में नीति की ही ज़रूरत है और यही राजाओं का काम है । इसीलिये वहाँ नीतिज्ञों का मान होता है । इसके सिवा राजा के सामने विनीत भाव से रहना चाहिये ।

दुष्ट के साथ मनुष्य को शठता का ही व्यवहार करना चाहिये । दुष्ट के साथ नम्र व्यवहार करना—दुष्ट को सिर चढ़ा कर आफ़त मोल लेना है । सरल व्यवहार वाले को दुष्ट क़दम-क़दम पर तंग करते हैं । गोस्वामि तुलसीदासजी ने कहा है—

नीच चंग सम जानिवो, सुनि लखि तुलसी दास ।
ढील देत महि गिर परत, खैंचत चढ़त अकाश ॥

नीच उस पतङ्ग के समान होते हैं, जो ढील देने से ज़मीन पर गिर पड़ती है और खींचने से आकाश में चढ़ती है। अगर दुष्टों को खींचे रहोगे, तो वे डरते रहेंगे; अगर उनसे सरल व्यवहार करोगे, तो वे सिर पर चढ़ कर अनेक उपद्रव करेंगे।

शेख़सादी ने कहा है,—"दुष्टों पर दया करना, सज्जनों पर अत्याचार करना है। अत्याचारियों को क्षमा प्रदान करना, अत्याचारपीड़ितों पर अत्याचार करना है। अगर तुम कमीनों पर मिहरबानी करोगे, तो वे तुम्हारी हिमायत से अधिक अपराध करेंगे और तुमको उनके अपराधों का भागीदार बनना होगा। क्षमा करना बहुत अच्छा है; पर दुर्जनों के घावों पर मरहम लगाना भला नहीं। साँप की जान बचाने वाला नहीं समझता कि, यह आदम की औलाद को हानि पहुँचावेगा।

चाणक्य ने कहा है—"उपकारी के प्रति उपकार करना चाहिये। मारने पर मारना अपराध नहीं और दुष्टता करने पर दुष्टता करना अनुचित नहीं।"

महात्मा विदुर ने कहा है—"जो जैसा हो, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये। दुष्ट के साथ दुष्टता और सज्जन के साथ सज्जनता करनी चाहिये।"

गुलिस्ताँ में लिखा है—"कमीना अच्छा व्यवहार करने से नहीं सम्हलता। ऐसा करने से उस का घमण्ड औरभी बढ़

जाता है। जो तुम पर दया करे, तुम अपने तईं उसके चरणों की धूलि समझो; पर जो तुम्हारा अपकार करे, उस को आँखो में धूल झोंक दो। धूर्त्त के साथ सभ्यता से बात न करो, क्योंकि मोर्चा लगा हुआ लोहा रेती से साफ़ नहीं होता।"

सारांश यह, दुष्ट के साथ दुष्टता, शठ के साथ शठता और कुटिल के साथ कुटिलता करने में ही भलाई है। इस जगत् की रीति ही ऐसी है, कि सीधे को सभी खा जाना चाहते हैं। राहु भी पूर्ण चन्द्र को ही ग्रसता है; द्वितीयाके टेढ़े चन्द्र को नहीं ग्रसता। असल बात यह है, जैसे के साथ तैसा ही बर्ताव करना चतुराई है। किसी समय इन पंक्तियों का लेखक सभी के साथ अत्यन्त विनीत व्यवहार करता था। दुर्जन और सज्जन सभी इस के सामने समान थे। इस भयङ्कर भूल से इसे बड़े-बड़े कष्ट भोगने पड़े; किन्तु जब इसने दुष्टों के साथ कुटिलता का व्यवहार किया, तो इसका पीछा छूट गया।

जिस तरह दुष्टों के साथ कुटिलता का बर्ताव करना चाहिये; उसी तरह विद्वानों के साथ सदा नम्रता का बर्ताव करना चाहिये। उन से प्रत्येक काम में गर्व रहित व्यवहार करना चाहिये। जो बुद्धिमान विद्वानों का आदर-सत्कार करते हैं, उन के सामने विनीत रहते हैं, तमीज़—तहज़ीब और अदब-क़ायदे से बोलते चालते हैं, उन को हर तरह ख़ातिर करते हैं; विद्वान् उन से सन्तुष्ट रहते हैं और वे उनसे

फ़ायदा उठाते हैं। सच्चे विद्वान् आदर-सम्मान, सिधाई-सचाई और नम्रता से ही वश में होते हैं, इस में सन्देह नहीं; पर हमारी पहले लिखी हुई बात को कभी न भूलना चाहिये, कि जो विद्वान् सज्जनों के से काम करें, उन के साथ ही विनीत व्यवहार करना चाहिये; जो विद्वान् दुर्जनों के से काम करें, उन से भूल कर भी सरल व्यवहार न करना चाहिये।

शत्रुओं के प्रति शूरता का व्यवहार करने में ही भलाई है। जो शत्रुओं के मध्य में पराक्रम से काम नहीं लेता, उन से दबता है, उन से भय खाकर पीछे हटता है, उसे शत्रु मार लेते हैं; अतः शत्रु को सदा दबाना चाहिये, उस से दबना न चाहिये।

प्रीति सदा सज्जनों के साथ करनी चाहिये। सज्जनों के साथ प्रीति करने से सुख-सम्पत्ति की वृद्धि होती और शोक-ताप तथा दुःखों का नाश होता है। सज्जनों की प्रीति टूटने पर भी नहीं टूटती—टूट जाने पर भी, कमल-नाल के सूत की तरह कुछ-न-कुछ सम्बन्ध बना ही रहता है। वे जिसे एक बार अपना कह लेते हैं, उसे दोष होने पर भी निवाहे ही जाते हैं—वे जिसे अंगीकार कर लेते हैं, उसे नहीं त्यागते। शिवजी ने विष को और शेषजी ने पृथ्वी को आज तक नहीं त्यागा। सज्जन आम के वृक्ष के समान होते हैं, जो पत्थर मारने पर भी

फल देते है ; अथवा तरु के समान होते हैं, जो अपने काटने वाले पर भी छाया ही करता है। सज्जनों की गाली भी भली और दुर्जनों की तारीफ़ भी भली नहीं। श्रवण के पिता ने राजा दशरथ को शाप दिया ; पर वह आशीर्वाद के रूप में फला। इसी से कहा गया है, कि प्रीति सज्जनों के साथ करनी चाहिये। सज्जनों की प्रीति में जो आनन्द और सुख है, उसे काठ की लेखनी से लिख कर बताना असम्भव है।

माता-पिता, बड़े भाई और गुरु—इन को गुरुजन कहते हैं। चतुरों को इनकी कड़वी बातों को भी अमृत की तरह पी जाना चाहिये। संसारमें मीठी बातोंके कहने वाले बहुत हैं ; पर मीठी और यथार्थ हितकारी बात के कहने वाले विरले ही हैं। मा-बाप और गुरु जो कुछ कहते हैं, वह प्रायः हितकामना से ही कहते हैं। इसीलिये सभी देशों के शास्त्रकारों ने गुरुजनों की आज्ञा-पालन करने की आज्ञा दी है। रामचन्द्रजी ने पिता की आज्ञा से राज्य-वैभव त्याग कर वनवास किया। ऐसा उदाहरण भारतके सिवा और किसी भी देश में नहीं पाया जाता। परशुरामजीने पिता यम-दग्निकी आज्ञा से माताके प्राणनाश कर दिये। भीष्म पिता-महने, अपने पिता शान्तनुके सुखके लिये, अपना संसारी सुख जन्मभरके लिये त्याग कर ब्रम्हचर्य्यव्रतका पालन किया। राजा ययाति के छोटे पुत्र ने, अपने पिता की इच्छा पूरी करने

के लिये, अपनी जवानी उन्हें दे दी। हमारे यहाँ ऐसे बहुत दृष्टान्त हैं। महात्मा गोथे ने कहा है—"उत्तम उपदेश को ग्रहण करो और वृद्धों का सबसे अधिक सम्मान करो।" शेक्सपियर के 'किंग लियर' में लिखा है—"माता-पिता की आज्ञा पालन कर; अपने वचन को पूरा कर; क़सम न खा..............।"

माता-पिता की आज्ञा का पालन करना सन्तान का परम धर्म्म है; पर कहीं-कहीं ऐसे मौक़े भी आ जाते हैं, जहाँ इन की आज्ञा का पालन करना अनुचित हो जाता है। प्रह्लाद को अपने पिता की आज्ञा के विरुद्ध काम करने में ही भलाई दीखी और उसकी वह बात स्वयं भगवान् को भी पसन्द आई। अधर्म्मी और अत्याचारी पिता की आज्ञा उल्लङ्घन करने में दोष नहीं। विशेषकर देश और धर्म्म के लिये, पिता-माता की भी आज्ञा भङ्ग की जा सकती है; पर यह बात, छोटे-छोटे बालकों को नहीं, जवानों को लिखी गई है : क्योंकि सभी प्रह्लाद नहीं होते। पूर्णवयस्क हो जाने पर, स्वयं सोच-समझ कर ही काम करना चाहिये। अन्ध-भक्ति से गुरुजनों की राय पर चलने से बाज़-बाज़ औक़ात भयानक आफ़तों का सामना करना पड़ता है। इन पंक्तियों का लेखक, कोई २२ साल की उम्र तक, अपने पिता की बात आँख बन्द करके मानता था। सच्ची बात तो यह है कि यह अपने पूज्यपादका उचित से अधिक भय करता था।

उन्होंने इसे एक काम पर, इसकी पूर्ण अनिच्छा होने पर भी, लगा दिया और स्वयं ऐसी आज्ञा और नसीहतें दीं, कि उनकी वजह से इसने २४ साल तक वह-वह आपदायें भोगीं, जिन के सुनने से पत्थर का भी कलेजा दहले बिना न रहे। सच तो यह है, इसकी सारी ज़िन्दगी ही ख़राब हो गई। भला हो, महिमान्वित् श्रीमान् लार्ड चेम्सफर्ड और आनरेबिल मिष्टर गोरले सी० आई० ई०, आई० सी० एस० का, जिन्होंने दयासिन्धु दीनबन्धु की प्रेरणा से इस का संकट दूर करके, शेष जीवन सुख-शान्तिमय कर दिया! मेरे कहनेका यह मतलब नहीं, कि लड़कों को अपने गुरुजनों की आज्ञा न माननी चाहिये—अवश्य माननी चाहिये; उनकी परमात्मा के समान भक्ति और सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये; पर अपनी निजी बातों में, पूर्ण वयस होने पर, समझ पक जाने पर, अपनी विचारशक्ति से भी काम लेना चाहिये। इन कामोंमें अपने कॉन्शेन्स—अपने अन्तरात्मा की बात पर चलना सदा सुखदायी है। मैंने पिता जी की आज्ञा के मुक़ाबले में अन्तरात्मा की बात नहीं मानी; इसी से मुझे घोर विपत्तियाँ झेलनी पड़ीं।

स्त्रियोंके सम्बन्धमें हम इसी पुस्तकके पृष्ठ ३-७ में लिख आये हैं, कि वे स्वभाव से ही परले सिरे की चतुरा और मायाविनी होती हैं। यों तो वे चतुर-से-चतुर को भी नाच नचा सकती हैं; पर यदि कोई निरा भोंदू उन के हाथ में आ जाता है,

तब तो वे वह खेल खेलती हैं, जिनका क्या कहना? जो पुरुष इन की चाल और चालाकियों से जानकारी रखते हैं और इनको परखते रहते हैं एवं समयानुसार यथोचित बर्ताव करते हैं, वे ही संसार में सुख पाते हैं। महाराजा भर्तृहरि स्वयं पिंगला से किस तरह ठगे गये, यह "इसी शतक" के आरम्भ के पृष्ठ पढ़ने वालों से छिपा नहीं है। मेरा भी कुछ अनुभव है; उससे यही कहना पड़ता है, कि इनकी तारीफ़ में, इस पुस्तक के दूसरे श्लोक के नीचे, जो शास्त्रकारोंके वचन उद्धृत किये गये हैं, वे नितान्त सच हैं; पर मैं यह हरगिज़ नहीं कहता और न कह ही सकता हूँ, कि सभी देवियाँ वैसी ही होती हैं। लेकिन इस में शक नहीं, कि चन्दन वन-वन में नहीं होता और साधु पुरुष सर्व्वत्र नहीं होते; यानी सती देवियाँ और सज्जन पुरुष कम ही होते हैं, पर होते अवश्य हैं। जिन्होंने पूर्व्व जन्म में पुण्य किये हैं, जिन्होंने घोर तपश्चर्य्या की है, उन्हेंही वे मिलते हैं।

जिन पुरुषरत्नों में स्वजनों में उदारता, ग़ैरों में दयाभाव, दुष्टों के प्रति कुटिलता, सज्जनों में प्रीति प्रभृति उत्तमोत्तम गुण होते हैं, वे ही इस संसार के सच्चे स्तम्भ हैं, उन पर ही यह संसार ठहरा हुआ है। उन के बिना लोक-मर्य्यादा अथवा स्थिति नहीं। प्रत्येक सुखाभिलाषी को इन उत्तम गुणोंको ग्रहण करना चाहिये।

छप्पय-सज्जनसों हित रीति, दया परजन सों भाषहु ।
दुर्जन सों शठभाव, प्रीति सन्तन प्रति राखहु ॥
कपट खलनसों, विनय राखौ बुधजनसों
क्षमा गुरुन सों राख, शूरता बैरीगण सों ॥
अरु धूरतता राखि त्रियनसों, जो तू जग बसिबो चहै ।
अतिही कराल कलिकाल में, इन चालनसों सुख लहै ॥२२॥

22 Generosity for one's relatives, kindness for others, rigorous treatment for the wicked, love for the virtuous, judicious behaviour for Kings, respect for the learned, boldness for one's enemies, forgiveness for elders and cleverness for women are the qualities, which, if a man possesses them, make him famous in the world.

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ॥
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्त्तिं
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥ २३ ॥

सत्संगति बुद्धि की जड़ता को हरती है, वाणी में सत्य सींचती है, सन्मान की वृद्धि करती है, पापों को दूर करती है, चित्त को प्रसन्न करती है और दशों दिशाओं में कीर्त्ति को फैलाती है। कहो, सत्संगति मनुष्य में क्या नहीं करती?

इसका खुलासा अर्थ यह है, कि सत्संगति से बुद्धि की मन्दता नाश होती है; बुद्धि तीव्र होती है; सत्य बोलने में अनुराग होता है; सम्मान बढ़ता है; पाप नाश होते हैं; चित्त प्रसन्न रहता है और हर तरफ़ सुयश फैलता है। ऐसी कोई बात ही नहीं जो सत्संगति से न हो—

हितोपदेश में लिखा है—

सत्संगः केशवे भक्तिर्गंगाम्भसि निमज्जनम्।
असारे खलु संसारे त्रीणि साराणि भावयेत्॥

सज्जनों का संग, कृष्ण की भक्ति, निर्मल गङ्गाजल में स्नान—इस असार संसार में ये तीन ही सार समझे जाते हैं।

संसार के शोक-ताप से जलने वाले के लिये स्त्री-पुत्र और सत्संगति ही शान्ति देने वाले हैं। तीर्थ समय पर फल देता है; पर सज्जनों की संगति का फल शीघ्र ही मिलता है। इस मृगतृष्णा के समान मिथ्या संसार को क्षण-विध्वंसी समझ कर, धर्म और सुख की प्राप्ति के लिये, सत्संगति करनी चाहिये। इस संसार रूपी कड़वे वृक्ष के दो ही फल हैं:—(१) मधुर भाषण, और (२) सज्जनों का संग।

सत्संग की महिमा अपार है। जिस तरह लोह और पारस के मिलने से लोह भी सोना हो जाता है; उसी तरह सत्सङ्ग से नीच पुरुष भी महापुरुष हो जाता है। सप्त ऋषियोंके सत्संग से ही नित्य हत्या करने वाला व्याध महामुनि

हो गया। वाल्मीकिजी का पूर्व्व वृत्तान्त कौन नहीं जानता ?

मनुष्य नीचों की संगति से नीच और सज्जनों की संगति से सज्जन बनता है। मूर्खों की संगति से बुद्धि मलीन होती है ; किन्तु सज्जनों की संगति से बुद्धि की मलिनता नाश हो कर, बुद्धि निर्मल और तीव्र होती है। कुसंगति में पड़ कर मनुष्य को मिथ्या भाषण से अनुराग होता है ; सत्संगति से वह सत्यभाषण का अनुरागी होता है ; कुसंसर्ग में पड़कर मनुष्य निन्दा और दूषित कर्म करता है; इस लिये उससे भले आदमी घृणा करते हैं और उसे अपने पास भी नहीं आने देते, कोई उस का आदर नहीं करता। सत्संगति के प्रभाव से मनुष्य सुशील होता है, उत्तमोत्तम कर्मों पर उस की अभि-रुचि होती है, गुणों की वृद्धि होती है; इसलिये सर्वत्र उस का सम्मान होता है। दुष्ट संगति में पड़ कर मनुष्य विविध प्रकार के पाप-कर्म करता है, किन्तु सत्संगति से पापों से अरुचि या घृणा हो जाती है ; इस लिये मनुष्य इस लोक में सुख पाता और मरने पर स्वर्ग या मोक्ष का अधिकारी होता है। कुसंगति में पड़ कर मनुष्य बुरे-बुरे काम करता है, इसलिये उसकी अपकीर्त्ति फैलती है। सत्संगति में रह कर वह दान, दया, परोपकार प्रभृति उत्तम गुण ग्रहण करता और सदा सत्कर्म करता है; इस लिये उस की सुकीर्त्ति देश-देशान्तरों में फैल जाती है; इसलिये मनुष्य को, कुसंग को

दूर ही से नमस्कार करके, सदा सत्संग करना चाहिये। महात्मा विदुर ने मनुष्य के लिये छः सुख बताये हैं:—(१) निरोग रहना, (२) क़र्ज़दार न होना, (३) देश भ्रमण करना, (४) स्वाधीनता-पूर्व्वक धन कमाना, (५) सदा निर्भय रहना, और (६) सज्जनों का संग करना।

कबीरदास ने कहा है—

एक घरी आधी घरी, आधी सों भी आध।
कबिरा संगति साधु की, कटे कोटि अपराध॥
कबिरा संगति साधु की, नित प्रति कीजै जाय।
दुर्मति दूर बहावसी, देसी सुमति बताय॥

सारांश—सत्संग सर्व्वोपरि है। यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों का दाता है। यह दुःख या पापों का समूह नाश करने वाला और नित्य सुख बढ़ाने वाला है; इसलिये "सत्संग" करो।

दोहा-जड़ताई मतिकी हरत, पाप निवारत अंग।
कीरति सत्य प्रसन्नता, देत सदा सतसंग॥२३॥

23. Society of good men removes the dullness of a man's reason, makes his tongue truthful, enhances his respectability, overcomes his sins, gives pleasantness to his heart and spreads his fame in all directions. Tell me what it does not do for men.

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ॥ २४ ॥

जो पुण्यात्मा कविश्रेष्ठ शृङ्गार आदि नव रसोंमें सिद्धहस्त हैं वे धन्य हैं ! उन की जय हो ! उन की कीर्त्तिरूप देह को बुढ़ापे और मृत्यु का भय नहीं ।

जो कवीन्द्र नव रसों के पूर्ण पण्डित हैं, जो सरस कविता करने में सिद्धहस्त हैं, जो नाना प्रकार के काव्य प्रकाशित करते हैं, उन की पञ्चतत्त्व से बनी मिट्टी की देह को ही जरा और मरण का भय है; पर उन की सुयशमय देह को न जरा का भय न मरण का भय। उन की कीर्त्तिरूप देह सदा-सर्वदा—कल्पान्त तक अजर और अमर रहेगी।

वाल्मीकि, कालिदास, माघ, भवभूति, सूरदास, तुलसीदास और बिहारीलाल प्रभृति इस देश के कवीन्द्र और शेक्सपियर मिल्टन, बेरन, वर्ड्स्वर्थ प्रभृति पाश्चात्य देशों के कवियों के पाञ्चभौतिक शरीर वृद्ध भी हुए और नष्ट भी हो गये; परन्तु उनके सुयश के शरीर आज तक भी विद्यमान हैं; न उन्हें जरा का भय है न मरणका—सदा-सर्व्वदा प्रलयकाल तक इसी तरह रहेंगे। इस ग्रन्थ के रचयिता महात्मा भर्तृहरि को ही लीजिये; आज उनके पञ्चतत्वों से बने शरीर को नष्ट हुए प्रायः दो हज़ार साल हो गये, पर उनकी अपूर्व्व रचना के कारण उनका सुयशमय शरीर आज तक मौजूद

है और सदा इसी तरह रहेगा। जरा और मृत्यु उस का कुछ भी बिगाड़ न सकेंगे।

इस विषय में उस्ताद ज़ौक़ ने भी ख़ूब ही कहा है—

रहता है सखुनसे नाम क़यामत तलक है ज़ौक़।
औलाद से तो है यही दो पुश्त चार पुश्त॥

सख़ुन से मनुष्य का नाम प्रलय काल तक रहता है; पर औलाद से तो दो पीढ़ी और बहुत हुआ तो चार पीढ़ी तक रहता है।

सारांश—उत्तम कवि या ग्रन्थकारों की मिट्टी की देह को बुढ़ापे और मृत्यु का भय भले ही हो; पर उन की कीर्त्तिरूप देह को न जरा का भय न मौत का भय; अर्थात् उनकी सुकीर्त्ति सदा अजर और अमर रहती है।

दोहा-सबसे ऊँचे सुकविजन, जानत रसको सोत।
जिनके यशकी देहको, जरा मरण नहिं होत॥२४॥

24. Triumphant are the poets, the doers of glorious deeds and perfect in the expression of various natural emotions, whose fame is never in fear of decay or death.

सूनुः सच्चरितः सती प्रियतमा स्वामी प्रसादोन्मुखः,
स्निग्धं मित्रमवञ्चकः परिजनो निःक्लेशलेशं मनः।
आकारो रुचिरः स्थिरश्च विभवो विद्यावदातं मुखं
तुष्टे विष्टपहारिणीष्टदहरौ संप्राप्यते देहिना॥२५॥

सदाचारपरायण पुत्र, पतिव्रता सती स्त्री, प्रसन्नमुखी स्वा
स्नेही मित्र, निष्कपट नातेदार, क्लेशरहित मन, सुन्दर आकृ
स्थिर सम्पति और विद्या से शोभायमान मुख—ये सब
मिलते हैं, जिसपर सर्व्व मनोरथों के पूर्ण करने वाले स्वर्गप
कृष्ण भगवान् प्रसन्न होते हैं; अर्थात् विश्वेश लक्ष्मीप
नारायणकी कृपा बिना ये उत्तमोत्तम पदार्थ नहीं मिल

संसार में प्रायः सभी के पुत्र भी होते हैं, स्त्री भी हो
हैं, स्वामी भी होते हैं, मित्र भी होते हैं, नातेदार भी होते
एवं मन, आकृति और मुख भी होते हैं; पर वे ऐसे ही
जैसे कि ऊपर लिखे हैं, तब तो मनुष्य के सुख का क्या ठिकान।
ऐसे भाग्यवान को पृथ्वी पर ही स्वर्ग है। स्वर्ग में औ
क्या सुख-आनन्द है? और यही सब हों, पर ऐसे न हो
यानी लड़का बदचलन हो, स्त्री व्यभिचारिणी हो, स्वाम
क्रोधमुखी हो, मित्र स्नेहहीन हों, रिश्तेदार कपटी हों, म
क्लेशपूर्ण हो, सूरत-शकल ख़राब हो, सम्पत्ति अस्थिर हो औ
मुख विद्यारहित हो, तो मनुष्यके दुःखोंकी सीमा नहीं; उ
यहीं नरक है। नरकमें इनसे बढ़कर और क्या दुःख हैं?

सदाचारी पुत्र।

यद्यपि दुनियवी लोग पुत्रके नाम से ही अपने
को धन्य समझते हैं; पुत्र से पितरों के पिण्ड की और स्वर्गकी
आशा करके बड़े खुश होते हैं; पर दुष्टात्मा और दुराचारी

पुत्र से कोई लाभ नहीं ; क्योंकि दुराचारी पुत्र से पिता-माता को कोई सुख नहीं, उलटा दुःख होता है ; क्षण-क्षण में जी जलता है। वह कानी आँखकी तरह वृथा होता है, जो काम तो कुछ नहीं देती, पर दुखनी आकर तकलीफ़ ज़रूर देती है। पुत्र वही उत्तम है, जिससे वंशकी उन्नति हो, जिससे संसारका भला हो, जिससे जनक जननी को हर तरह सुख मिले। जिसका पुत्र न दानी है, न तपस्वी है, न वीर है, न विद्वान् है और न धनवान् है, वह पुत्रवान् है तो निपुत्री कौन ? ऐसे पुत्रवान् होनेसे निपुत्री होना कहीं भला। जिनका पुत्र आज्ञा पालन करता है, सेवामें आलस्य नहीं करता, छायाकी तरह साथ रहता है, धन कमानेका उद्योग करता है, अपने और पराये सब पर दया-भाव रखता है, दीनोंके दुःख दूर करता है, सज्जनोंका सङ्ग करता है, सत्यभाषण में अभिरुचि रखता है, पापकर्मों से घृणा करता है, सदा प्रसन्न-मुखी रहता है, शोक और हर्षमें समान रहता है, वही माता-पिता सच्चे पुत्रवान् हैं। कंस जैसे दुरात्मा पुत्रसे सिवा दुःखके सुख नहीं। भगवान् किसीको पुत्र दे, तो राम और श्रवण सा दे।

पतिव्रता स्त्री।

स्त्री होनेसे ही मनुष्य सुखी नहीं हो सकता। यदि स्त्री सती-साध्वी या पतिव्रता न हो, पतिकी आज्ञा न मानने वाली

कुलटा या व्यभिचारिणी हो, दिन-रात कलह करने वाली और क्रोधमुखी तथा अप्रिय बोलने वाली हो, घरके काम-धन्धोंमें अकुशल और फूहड़ एवं कर्कशा हो—तो पुरुषको इस पृथ्वीपर ही नरक है। ऐसी स्त्री, स्त्री नहीं—पुरुषकी साक्षात् मृत्यु है। सच तो यह है, कि ऐसी स्त्रीसे मृत्यु कहीं भली ; क्योंकि मृत्यु क्षण भर में प्राण नाश कर देती है ; पर ऐसी स्त्री जला-जला और घुला-घुला कर मारती है। जो स्त्री सदा अपने पति में अनुराग रखती है, परपुरुष के नाम और छाया से भी दूर रहती है, गृह-कार्य्य में कुशला, पुत्रवती और सुशीला होती है—वही स्त्री, स्त्री है। जिस पुण्यवान्के ऐसी गुणवती नारी है, वह सचमुच ही भाग्यवान् है। जिस के घरमें पतिव्रता स्त्री है, उसके घरमें क्या अभाव है ? उसके घरमें अष्ट सिद्धि नव निद्धि हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। पतिव्रता दरिद्र में भी दरिद्र सा मालूम नहीं होने देती। पतिव्रता रोगी पतिका सच्चा वैद्य है। पतिव्रता विपद्ग्रस्त स्वामीका उद्धार कराने और समय-समय पर अमूल्य मन्त्र प्रदान करनेमें सच्ची मित्र है। पतिव्रता कुराहमें जाते हुए पतिको सुपथमें ले आती है। पतिव्रता मरे हुए स्वामीको ज़िन्दा कर सकती है। पतिव्रता दुष्ट स्वामीका भी उद्धार करके स्वर्गमें ले जाती है। जिसके घरमें पतिव्रता है, वही गृही और सच्चा सुखी है। विद्वानों ने कहा है:—

सा भार्य्या या गृहे दक्षा, सा भार्य्या या प्रजावती ।
सा भार्य्या या पतिप्राणा, सा भार्य्या या पतिव्रता ॥

वही स्त्री है, जो घरके कामोंमें निपुण है ; वही स्त्री है जो सन्तानवाली है, वही स्त्री है जो पतिप्राणा और पतिव्रता है । किन्तु यदि दुर्भाग्य से स्त्री सती न हो, तो सुख कहाँ है ? कहा है:—

यस्य क्षेत्रं नदी तीरे, भार्य्या च परसंगता ।
ससर्पे च गृहे वासः, कथं स्यात्तस्य निर्वृतिः ॥

जिसका खेत नदी-किनारे है, जिसकी स्त्री परपुरुषरता है, जो साँपवाले घर में रहता है,—उसे सुख कहाँ है ?

प्रसन्नमुखी स्वामी ।

प्रथम तो पराई चाकरी ही महा कठिन काम है ! संसार में पराई चाकरी से अधिक दुखदायी और काम ही नहीं है। नौकरी करना और सर्पको खिलाना एक ही बात है। किसी पाश्चात्य विद्वान्ने कहा है—"स्वर्गमें चाकरी करने से नरक में राज करना कहीं भला है ।" पर-सेवकाई में गुण भी औगुण हो जाते हैं और स्वाधीनता तो नाम को भी नहीं रहती। महामूर्ख गधा स्वामी भी अपने चतुर चूड़ामणि सेवकको मूर्ख और पागल कह देता है। उसके अच्छे-से-अच्छे कामों में भी दोष लगा देता है। ज़रा-ज़रा सी बातों में सेवक का अपमान करता

है। पराधीनतासे जीविका उपार्जन न करना ही, जन्म की सफलता है। पराधीन जीविका वाले यदि जीवित हैं, तो मरे कौन हैं ? पर इस पापी पेट और जीभके लिये, विशेषकर स्त्री और बच्चों के लिये, पूर्वकृत पापों के फल स्वरूप, मनुष्य को यह निंद्य कर्म भी करना पड़ता है। यदि दुर्भाग्यसे स्वामी क्रोधमुखी और स्वार्थी मिल गया, तब तो जीते जी ही नरक ही गया। यदि पूर्व्वपुण्योंसे स्वामी हँसमुख, सेवकके कष्ट और दुःख से सहानुभूति रखनेवाला तथा उसका भला चाहनेवाला मिल गया, तब तो किसी प्रकार सुखसे जीवन कट जाता है, उतना दुःख नहीं होता ; पर ऐसा स्वामी भगवान् कृष्ण की पूर्ण कृपा बिना नहीं मिलता।

स्नेही मित्र।

इस जगत्में जिनके निःकपट सच्चे स्नेही मित्र हैं, वे निश्चय ही भाग्यवान हैं। माता-पिता स्त्री और सगे भाईमें जो सुख नहीं है, वह सच्चे स्नेही सुहृदमें है। स्वाभाविक मित्रके ऊपर पुरुषों का जैसा विश्वास होता हैं ; वैसा विश्वास माता, स्त्री और सगे भाई पर भी नहीं होता। सच्चा मित्र मित्रके सुदिन और दुर्दिनमें यकसाँ स्नेह रखता है ; बल्कि दुर्दिनमें अपने स्नेहको मात्राको और भी बढ़ा देता है। मित्रके बालू के दाने बराबर दुःखको पहाड़ के समान समझता है, अपने पहाड़के समान दुःखको भी बालूके दाने जितना समझता है ;

समय पर तन-मन और धनसे साहाय्य करता है; छायाके समान साथ रहता है; विपद्‌से छुटकारा कराता है अथवा अपनी सामर्थ्यभर छुटकारे की चेष्टा करने में कोई कसर नहीं रखता; मित्रके गुणोंको प्रकाशित करता, औगुणोंको छिपाता और प्राणान्त होने पर भी मित्रके गुप्त रहस्य प्रकट नहीं करता,—ऐसा मित्र ही मित्र होता है। जिनपर जगदाधार भगवान् कृष्ण की पूर्ण कृपा होती है, उन्हेंही ऐसा मित्र मिलता है। ऐसे मित्र दुर्लभ हैं। आज-कल तो मतलब के यार रह गये हैं। जबतक आप के पास पैसा है, आप खिलाते-पिलाते और पोला हाथ रखते हैं, तबतक आपके मित्र बने रहते हैं; जहाँ आप के पास पैसा न रहा, कि मित्र राम सटके। जब तक अवस्था भली रहती है, तबतक आज-कलके मित्र छाया की तरह साथ रहते हैं; जहाँ दरिद्रदेव आये, विपद् ने पदार्पण किया, कि मित्रों ने आपको मँझधार में छोड़ा। आज-कल मित्र कहाँ हैं? हमारे जैसे नासमझ लोग खुशामदियोंको मित्र समझ लेते हैं; पर खुशामदी से बढ़कर दुश्मन इस जगत् में नहीं। जबतक खुशामदी की इच्छा पूरी की जाती है, वह खुशामद और लल्लो-चप्पो करता रहता है। जहाँ मतलब में बाधा पड़ी और उसने अपने साथी की घोर-घोर निन्दा आरम्भ की। ऐसे लोग अच्छे समयमें अपने साथी या मित्रके दोषों पर गहरी नज़र रखते हैं और किसी समय के लिये उन्हें धनकी तरह अपने हृदय-बैङ्क में सुरक्षित

रखते जाते हैं। जबतक बनी रहती है, स्वार्थ सधता रहता है, दोषों को दबाये रखते हैं; जहाँ स्वार्थमें बाधा पड़ी, कि मित्रके उन्हीं दोषों से काम निकालने की चेष्टा करते हैं। बेचारे को डराते-धमकाते हैं और अगर उसके पास कुछ होता है, तो उससे येन केन उपायेन ऐंठते हैं, उसको घोर विपद्में देखकर भी उन्हें ज़रा दया नहीं आती। अपने मित्रकी विपद्को शतगुणी बढ़ाते हैं। उसके सर्व्वनाशमें अपनी सारी विद्या-बुद्धि और बल खर्च कर देते हैं। हम यह नहीं कहते, कि सत्यस्नेही मित्र आजकल होते ही नहीं; होते होंगे; किसी पुण्यात्माको मिलते होंगे; पर हमने ऐसे मित्र आजतक नहीं देखे। बुद्धिमान् अपनी भूलों और पराई ग़लतियों से अनुभव प्राप्त करता है। जिसने अपने जीवन में मूर्खता के काम नहीं किये, अनेक ठोकरें नहीं खाईं—वह कदापि बुद्धिमान् नहीं हो सकता। हमें तो देखने और सुनने से जो अनुभव हुआ है, उससे यही कह सकते हैं—कि जिन्हें मित्र कहते हैं, वे इस कलिकाल में पारस पत्थर या हुमा-पक्षी की तरह दुष्प्राप्य हैं; नाममात्र चला जाता है। आशा है, हमारे पाठक हमारे अनुभव से लाभ उठायेंगे—धोखा खानेसे बचेंगे। हमने अपने जीवन में सुमित्र जैसे रत्नके लिये अपनी शक्ति-भर द्रव्य भी नष्ट किया, तन-मन भी लगाया, खोज भी बहुत की; पर हमें वह रत्न न मिला। संसारमें औरोंसे भी पूछा, पर सबको हमारी तरह शिकायत करते ही पाया। जो

कुछ दिनों तक हमारी बातकी दिल्लगी उड़ाते रहे, हमें पागल समझते रहे, शेषमें एक दिन उनको भी कहना ही पड़ा—"आपका अनुभव ठीक है, हम बड़ी ग़लती पर थे।" आप किसी को भी दुश्मन न बनाइये, सबसे अच्छा बर्ताव कीजिये, इससे आपको सुखही मिलेगा; पर झटपट ही, बिना कठिन परीक्षा किये, किसीको अपना मित्र न मान लीजिये, किसीसे भी अपने मनकी बात न कहिये। यदि आपकी अवस्था अच्छी होगी, आपके पास धन-दौलत होगी, तो बहुत लोग आपके अभिन्न मित्र बनेंगे—आपके लिये समय पर जान देने तक की डींग मारेंगे, आपके ऊपर अपना सर्व्वस्व तक स्वाहा कर देनेकी लम्बी-चौड़ी बातें कहेंगे—पर आप इन बातोंमें भूल न जाइयेगा—बिना परीक्षा किये विश्वास न कर लीजियेगा। जहाँतक हमारा अनुभव है, परीक्षाके समय कोई भी मित्र आपकी परीक्षामें उत्तीर्ण न होगा। उस समय आप हमारी बातको सच पाकर खुश होंगे।

मैंने यहाँ जो इतनी पंक्तियाँ लिखी हैं, बहुतसे लोग इन्हें मेरा ख़ब्त समझेंगे। समझा करें; मैंने जो कुछ यहाँ लिखा है, वह निष्कपट भावसे सत्य लिखा है और वह केवल इस उद्देश्यसे लिखा है, कि लोग मेरी तरह धोखा न खायें—तकलीफें न उठायें।

निष्कपट नातेदार।

जिस तरह सच्चे मित्रोंका प्राय: अभाव सा है; उसी तरह

निष्कपट बन्धु-बान्धव और रिश्तेदारोंका भी प्रायः अभाव है। जबतक आपके पास लक्ष्मी रहेगी, तबतक आपके नातेदार, नातेदार बने रहेंगे। संसारमें लोग साला कहलानेमें बहुत संकोच करते हैं, पर धनवानके साले बननेमें भी सौभाग्य समझते हैं; ग़रीबके लोग बहनोई भी नहीं बनते; किन्तु अमीरके साले न होने परभी साले बन जाते हैं। इस ज़मानेमें न कोई किसीका बाप है, न बेटा; न कोई बहिन है न भाई—सब पैसेके संगी हैं। निर्धनको स्त्री तक त्याग देती है; औरोंका तो कहना ही क्या ? आजकल लोग उपकारीके उपकारका बदला भी नहीं देते। बिना उपकार कराये,—किसी रिश्तेदारकी सहायता करना—उसके दुःखमें आड़े आना तो बहुत ही कठिन है। यदि आप धनी से दरिद्र हो जायें, तो आपके सब नातेदार आपको फौरनसे पहले त्याग देंगे और अगर आप प्रारब्धवश फिर दरिद्र से धनी हो जायें, तो सब मक्खियों की तरह आ चिपटेंगे। औरोंकी बात जाने दीजिये, स्वयं पैदा करनेवाला पिता और सहोदर भाई ऐसा करते हैं। आजकलके बन्धु-बान्धव और मित्रोंके सम्बन्धमें गोस्वामि तुलसीदासजीने बहुत ही ठीक कहा है और जो कुछ उन्होंने अपने श्रीमुखसे कहा है, वह हमने अपने नेत्रोंसे देख लिया है—

स्वारथके सब ही सगे, बिन स्वारथ कोई नाहिं ।
सरस वृक्ष पंछी बसें, निरस भये उड़ जाहिं ॥

इस दोहे का यह आशय है, कि संसारमें जितने लोग हैं, सब स्वारथके हैं। अपने-अपने मतलबसे ही सगी-सम्बन्धी और नातेदार बन रहे हैं,बिना स्वारथ कोई किसी का नहीं है। जब तक वृक्षमें फल-फूल रहते हैं, पक्षी उस पर टिके रहते हैं; जहाँ वृक्ष फलहीन हुआ,कि पक्षी उसे छोड़कर नौ दो ग्यारह हुए।

सारांश—किसी ही भाग्यवान को निष्कपट बन्धु-बान्धव मिलते हैं।

क्लेश रहित मन।

अगर मनुष्यका मन क्लेशरहित—निःक्लेश या स्वस्थ हो, तो उसे दुःख ही क्या है? उसके समान सुखी कौन है? उसके समान सौभाग्यवान कौन है? निःसन्देह, जगदीशकी पूर्ण दया होने से ही मन स्वस्थ रहता है। इस जगत्में बहुत ही कम लोग निरोग रहते हैं। यदि किसी को शारीरिक रोग नहीं है, तो मानसिक रोग है। जिसे मानसिक व्याधि नहीं है, ऐसा कोई विरला ही भाग्यवान् है। जिस पर जगदीश की सोलह आने कृपा होती है, उसी का मन क्लेशरहित रहता है। कोई अपने व्यवसाय के घाटे के मारे मन-ही-मन दुखी हो रहा है, तो कोई अपने प्रिय पुत्र या प्यारी स्त्री अथवा और किसी प्यारे की जुदाई या मृत्यु से जल रहा है; कोई दुर्जनोंके वाग्बाणों से जर्ज्जरित हो मन-ही-मन शोक-तापसे भस्म हो रहा है, कोई पराजय या शत्रु की जयसे

पीड़ित हो रहा है, कोई भावी दुःखोंकी कल्पनासे ही चिन्तित हो रहा है। हमने ऐसा कोई नहीं देखा, जिसका मन किसी-न-किसी दुःख से चिन्तित या क्लेशित न हो। गुरु नानकने सारा संसार खोज डाला, पर उन्हें सच्चा सुखिया कोई न मिला। किसी का मन किसी दुःख से और किसी का किसी दुःख से उन्होंने क्लेशित ही पाया; इसलिये उन्होंने कहा—"नानक दुखिया सब संसार।"

ग़रीब और निर्धन लोग राजों महाराजों और अमीर उमराओं को देखकर मन-ही-मन दुःखित हुआ करते हैं और कहा करते हैं, कि वे लोग स्वर्ग का आनन्द भोग रहे हैं; पर वास्तवमें यह बात नहीं है। यह उनलोगोंकी ख़ाम ख़याली है। जो जितने ही धनी हैं, जो जितने ही उच्च पद पर हैं, वे उतने ही चिन्ताग्रस्त और दुखी हैं। प्रकट में वे लोग सुखी दीखते हैं, परन्तु उनकी भीतरी दशा बहुत ही दुःख और कष्टपूर्ण है। उनके ऊपर बड़ी-बड़ी ज़िम्मेदारियाँ और चिन्तायें सवार हैं। बड़े लोगोंको रातके समय भी सुख की नींद नहीं आती। नातजुर्बेकार लोग समझते हैं, कि धन की वृद्धि से मनुष्य सुखी होता है, पर हमारी समझ में धन ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है चिन्तायें भी त्यों-त्यों बढ़ती जाती हैं। मन को सदा सुखी रखने का एक ही उपाय 'आत्म-संयम' है। जिसने अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है, ज़िस की दृष्टि में सुख-

दुःख, मान-अपमान; हानि-लाभ, संयोग-वियोग, सम्पद्-विपद्, निन्दा-स्तुति समान हैं; यानी जो समदर्शी है, वही सुखी है। जो सुख में हर्ष नहीं करता और दुःख में शोक नहीं करता, अपने प्यारे से प्यारे के मर जाने पर दुःखी नहीं होता—वह निस्सन्देह सुखी है। मन का निःक्षोभित रहना ही सच्चा सुख है और मन तभी सुखी रह सकता है, जबकि मनुष्य इन्द्रियों पर अपना पूर्ण अधिकार जमा ले और हर अवस्थामें सन्तुष्ट रहे—त्रिलोकी की सम्पदा मिल जाय, तोभी सुखी और सर्व्वस्व नष्ट हो जाय तोभी सुखी। यह हालत इन्द्रियविजयी समदर्शी महात्माओं की होती है। उनका चित्त सदा प्रसन्न रहता है, क्योंकि वे सुख-दुःख को सदा समान और पूर्वजन्म के भले और बुरे कर्मोंका अवश्यंभावी फल समझते हैं। उनकी दशा दर्पण की सी है, जो पहाड़ का अक्स पड़ने से दब नहीं जाता और समुद्र की प्रतिच्छाया पड़ने से भीगता नहीं। गोस्वामि तुलसीदासजी ने कहा है—

> सुख दुख दोनों एक सम, सन्तनके मन माहिं।
> मेरु उदधि गत मुकुर जिमि, भार भीजिबो नाहिं॥

अगर यह कठिन काम न हो, तो मनको गोस्वामीजी की इस उक्ति से समझा कर ही सुखी और निश्चिन्त रखिये—"हुइ है वही जो राम रचि राखा, को करि तर्क बढ़ावै साखा" गोस्वामीजी के इस उपदेश में बड़ा गूढ़ अर्थ भरा हुआ है।

मन को सुखी रखने को इस से बढ़ कर उत्तम औषधि और नहीं है। सभी जानते हैं, सुगति और दुर्गति हमारे पूर्व्वजन्म के कर्मों का ही फल है। सुकर्मों का फल सुख है और दुष्कर्मों का फल दुःख है। कोई भी मनुष्य क्षण भर भी कर्म-रहित नहीं रह सकता। बुरा और भला जो हमारे सामने आ रहा है, वह सब हमारे ही किये कर्मों का फल है। कर्मफल बिना भोगे कोई भी बच नहीं सकता। जो होनहार है, वह अवश्य होगी; जो नहीं होनी है, वह कभी न होगी। जो हमने बोया है, वही हम काटेंगे। आम का वृक्ष लगाने वालों को आम हैं, बबूल का वृक्ष लगाने वालों को काँटे हैं। जिस तरह बछड़ा अपनी माता को हज़ारों गायों में खोज लेता है, उसी तरह कर्म अपने कर्त्ता को ढूँढ़ लेता है। ईश्वर के नियम में दोष और भूल नहीं; जो कुछ और जैसा जिसने किया है, वह उसे अवश्य लेना होगा। कर्म के फल को विधाता भी मेट नहीं सकता। इन बातोंको विचार कर, मनुष्य को सदा प्रसन्न-चित रहना चाहिये। आगे के दुःखों की कल्पना कर के वृथा अपनी सुख की घड़ियों को भी दुःखमय न करना चाहिये। शोक और चिन्ता से उलटा दुःख बढ़ता है, घटता नहीं। हर हालत में खुश रहने वाले को दुःख भी दुःख सा मालूम नहीं होता।

पाठको! बहुत लिखने से आप का समय नष्ट होगा। इतने में ही समझ लीजिये, कि मैंने इन सब नीति-वाक्यों के पढ़ लेने

पर भी, अपनी मूर्खतासे, इन पर अमल न किया। भावी विपद् की कल्पना ही कल्पनाओं में अपने दुष्प्राप्य शरीर को नष्ट कर दिया, जवानी में ही बुढ़ापे को बुला लिया। मेरी कल्पनायें मिथ्या निकलीं, और मेरे भावी विचार एकदम झूठे हो गये। जिन दुःखों की कल्पनाओं से मुझे २४ साल में कभी सुख की नींद नहीं आई, वे सब योंही मूर्खता की कल्पनायें निकलीं। अन्त में मुझे पछता कर कहना पड़ा—"हाय! मैंने इतने वर्ष योंही गँवाये! सुख के दिन भी अपनी नासमझी से दुःखमय कर दिये! अन्त में वही हुआ, जो होना था।" दूसरों के दुःखों में लोग इसी तरह समझाया करते हैं; पर खुद पर जब आ पड़ती है, तब प्रायः सभी मेरी तरह ग़लतियाँ करते हैं। पर ऐसा करना, है— वृथा मूर्खता करके अपनी ज़िन्दगी ख़राब करना। जो सज्जन दुःख में नहीं घबराते, भावी दुःखों की कल्पनाओं में ज़िन्दगी बर्बाद नहीं करते—वे सचमुच ही महापुरुष हैं, वे इस जगत् के सच्चे भूषण हैं। पर ऐसे पुरुषरत्न इस जगत् में विरले ही हैं। आशा है, पाठक! मेरी ग़लती से नफ़ा उठायेंगे और अपने सुखी जीवन का एक क्षण भी वृथा दुःखमय न करेंगे। जो दूसरों की ग़लतियों से लाभ उठाते हैं, वे ही बुद्धिमान हैं। दूसरों के सुख के लिये ही मैं मौक़े-मौक़े पर अपनी बेवकूफ़ियों को लिख रहा हूँ। आपने अपनी बेवकूफ़ी और ग़लतियों के कहने वाले बहुत ही कम देखे-सुने होंगे, इसलिये आप ऐसा मत समझ लेना, कि ऐसा

आदमी एक ग्रन्थ लिख कर हमें क्यों उपदेश दे रहा है ? मैं उपदेश देने योग्य नहीं; पर मेरी आन्तरिक इच्छा है, कि और लोग मेरी तरह कष्टमय जीवन न बितावें; इसीलिये अपनी ग़लतियों की बात लिख रहा हूँ। भाइयो ! महात्मा हे ने कहा है—"जो अपने जीवन में कभी मूर्ख न था, वह कदापि बुद्धिमान न था।" अरबी में एक कहावत है—"जो स्वयं बीमार नहीं हुआ, वह उत्तम चिकित्सक हो नहीं सकता।" संसारका प्रत्येक मनुष्य अनेकानेक घटनाओंसे भरा हुआ उपन्यास है। अगर सभी मनुष्य अपनी-अपनी नक़ाब उलट दें— अपने बुरे भले काम संसारके सामने रखदें, तो दुनियाँ के बहुतसे आदमी ठोकरें खाने और खड्डोंमें गिरनेसे बचें, पर लोगोंको तो अपनी शानमें बट्टा लगाना बुरा लगता है; अपने गुणोंका कीर्त्तन ही उन्हें अच्छा लगता है। लोग अपने औगुणों, अपनी ग़लतियों और अपनी बेवक़ूफ़ियोंपर पर्दा डालते और अपने अच्छे कामोंको अपने मित्रों—अपने खुशामदियों द्वारा संसारके सामने रखते हैं। इससे भी संसारको किसी न किसी हद तक लाभ ही होता है, पर अपने दोष और ग़लतियोंको संसारके सामने रखनेसे जितना लाभ हो सकता है, उतना नहीं होता।

सुन्दर आकृति ।

सुन्दर आकृति परमात्माकी देन है; पर विद्वान् उसे ही सुन्दर आकृतिवाला समझते हैं, जो विद्वान् है,

पण्डित है; बुद्धिमान है; धर्मात्मा है, परोपकारपरायण है, दीनों पर दया करता है, ग़रीब और मुहताजोंकी ज़रूरियातों को मिटाता है, अनाथोंका पालन करता है, संसारके सभी प्राणियोंके कष्टको अपना कष्ट समझता है, जो सदा प्रसन्न-चित्त रहता है, जिसके माथे पर कभी चिन्ता और क्रोधकी सलवटें नहीं पड़तीं, जो मधुरभाषणसे जगत्के हृदयको मुग्ध कर लेता है। आँख, नाक और आकारकी सुन्दरता—सुन्दरता नहीं। अगर सूरत-शकल आकार-प्रकार सुन्दर और निर्दोष हों और साथ ही मनुष्यमें ये ख़ूबियाँ भी हों; तभी आकृति की सुन्दरता है। अगर ये ख़ूबियाँ न हों, केवल आकृति सुन्दर हो, तो व्यर्थ है। सारांश यह, उत्तम गुणके साथ आकृति भी सुन्दर होनी चाहिये। सुन्दर आकृतिसे लोगोंका चित्त आकर्षित होता है; पर ऐसा मेल कहीं-कहीं ही मिलता है। बहुधा देखनेमें आता है कि, रूप है तो गुण नहीं, गुण है तो रूप नहीं। वृन्द कवि ने कहा है,—

जैसो गुण दीनों दई, तैसो रूप निबन्ध।
ये दोनों कहँ पाइये, सोनो और सुगन्ध॥

स्थिर सम्पति।

बहुत दिन तक स्थायी रूपसे रहनेवाली सम्पत्तिही सुखदायी सम्पत्ति है। आज है और कल नहीं, वह सम्पत्ति किस काम की? वैसी सम्पत्तिसे सम्पत्तिका न होना

हो भला। पर लक्ष्मीका स्वभावही चञ्चल है; वह कभी एक जगह टिककर नहीं रहती। आज इस घरमें है, तो कल उस घरमें। धन पाँवकी धूलके समान है, जो पैरोंमें लगती है और झट झड़ जाती है। बूक्स नामक पाश्चात्य विद्वान्ने कहा है—"धन दुष्ट सेवकों के समान है, जिनके जूते भागनेवाले चमड़ेके बने होते हैं और जो एक स्वामीके पास बहुत दिन नहीं रहते।"* अर्थात् ख़राब चाकर और धन किसीके पास बहुत दिनों तक नहीं टिकते। एक पाश्चात्य विद्वान्ने कहा है—"हमने किसीके पास दौलत समान रूपसे तीन पीढ़ीसे अधिक ठहरती नहीं सुनी है।" किसीने कहा है—"दौलतके पङ्ख होते हैं।" सभीने कहा है कि, धन-वैभव सदा स्थायी नहीं रहते। जिस तरह जन्मके साथ मृत्यु, जवानीके साथ बुढ़ापा, संयोगके साथ वियोग प्रभृति लगे हुए हैं; उसी तरह सम्पद्के साथ विपद् लगी हुई है। जिनपर जगदीशकी पूर्ण कृपा होती है, उन्हींके यहाँ उनकी उम्रभर धन-ऐश्वर्य्य रहते हैं।

छप्पय—पुत्र मिलै सचरित, नारीहू सता सुहावन।
स्वामी हँसमुख मिलै, मित्रहू प्रीति-निबाहन॥
परिजन छलसों हीन, कलह बिन मन सुखकारी॥
आनन सुन्दर मिलै, अचल लक्ष्मीहू भारी॥

---

* Riches are like bad servants, whose shoes are made of running leather, and will never tarry long with one master.

इमि सब शोभाकी खानि, तो विद्या मुखही मंडनी।
जब होहिं प्रसन्न रमेशजू, कल्मष सकल विखंडनौ ॥२५॥

25. A well-behaved son, a chaste wife, a pleased master, a fond friend, an undeceitful relative, an unafflicted mind, a graceful figure, a stable prosperity and an oratorical vocal organ are only obtainable by those with whom Vishnu, the Lord of Heaven and the giver of all good, is pleased.

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं-
कालेशक्त्याप्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम्।
तृष्णास्रोतोविभंगो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकंपा,
सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिःश्रेयसामेषपंथाः॥२६॥

जीव-हिंसा न करना, पराया धन हरण करनेसे मनको रोकना, सत्य बोलना, समयपर सामर्थ्यानुसार दान करना, परस्त्रियोंकी चर्चा न करना और न सुनना, तृष्णाके प्रवाहको तोड़ना, गुरुजनोंके आगे नम्र रहना और सब प्राणियोंपर दया करना—सामान्यतया, सब शास्त्रोंके मतसे ये सब मनुष्यके कल्याणके मार्ग हैं।

जीव हिंसा न करना।

धर्मशास्त्रोंमें अनेक विषयोंमें परस्पर मतभेद है; पर "अहिंसा परम धर्म है"—इस वाक्यको सभी धर्म एक मतसे

मानते हैं। संसारमें जीवहिंसासे निवृत्त रहनेके समान और धर्म नहीं है। फिर भी; न जाने क्यों अज्ञानी लोग अपने पेटके लिये परायी जान लेते हैं? धर्मपदमें लिखा है,—"सब मनुष्य दण्डसे डरते हैं, सभी मौतसे भीत होते हैं; ध्यान रखो, तुम भी उन्हींके समान हो, इसलिये किसी की हिंसा न करो और न किसीका संहार होने दो। जो मनुष्य अपनी तरह सुखकी इच्छा रखनेवाले प्राणियोंको अपने सुखके लिये हिंसा करता है, उसे मृत्युके पश्चात सुख नहीं मिलेगा। जो किसी की भी हिंसा नहीं करते, जो सत्पुरुष इन्द्रियोंका संयम करते हैं, वे अटल निर्वाणको प्राप्त होंगे—वहाँ उन्हें लेशमात्र भी दुःख न होगा।" हमारेही शास्त्रोंमें कहा है—"जो सब तरहकी हिंसाओंसे निवृत्त हैं, जो कष्टसहिष्णु हैं, जो सब जीवोंको आश्रय देनेवाले हैं—वेही स्वर्गको जाते हैं। जो मांस खाता है और जिसका मांस खाता है, उन दोनोंका अन्तर देखो! एकको क्षणभरके लिये सुख होता है और दूसरा अपने प्राणसेही जाता है।"शेख़ सादीने भी कहा है—

> ज़ेरे पायत गर, बिदानी हाले मोर।
> हम चो हाले तस्त, ज़ेरे पाये पील॥

तुम्हारे पाँवके नीचे दबी चींटीका वही हाल होता है, जो यदि तुम हाथीके पाँवके नीचे दब जाओ तो तुम्हारा हो।" दूसरेके दुःखको अपने दुःखसे तुलना किये बिना, हमें पराये

दुःखका हाल मालूम नहीं हो सकता। मतलब यह है कि, हमें सभी जीवोंको अपने समान समझना चाहिये—पराये प्राण भी अपने प्राणोंके समान समझने चाहियें—दूसरोंको कष्ट पहुँचाते समय इस बातका ख़याल रखना चाहिये कि, यदि हमें कोई ऐसाही कष्ट दे, हमें भी ज़िबह करे, तो हमारा क्या हाल हो? अगर मनुष्य यह विचार अपने हृदयमें रक्खे, तो उससे कभी किसीकी हत्या न हो और किसी तरहका औरभी ज़ुल्म न हो। कबीरदासने कहा है:—

बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो बकरीको खात हैं, तिनको कौन हवाल?॥
मुरग़ी मुल्ला सों कहै, ज़िबह करत है मोहि।
साहब लेखा माँगसी, संकट परिहै तोहि॥
गला काटि कलमा भरै, किया कहै हलाल।
साहब लेखा माँगसी, तब होसी कौन हवाल?॥

पर धन पर मन न चलाना।

धन-जैसी ख़राब चीज़ और नहीं। इसके प्राप्त करनेमें दुःख, रखनेमें दुःख और नाशमें दुःख है। धन चिन्ताका आगार और आफ़तोंका भाण्डार है। जिनके पास यह होता है, उनकी चिन्तायें बेतहाशा बढ़ जाती हैं। दिवा-रात वे इसीके फेर में पड़े रहते हैं और उनकी ज़िन्दगी सदा ख़तरेमें रहती है। और तो क्या—सगे नातेदार और स्वयं पुत्र तक धनीकी मरण-

कामना किया करते हैं। अ गरी नामक विद्वान्‌ने भी कहा है "धनकी प्राप्तिसे हमें उतनी खुशी नहीं होती, जितना कि उसके नाशसे हमें दुःख होता है।" प्लूटार्चने कहा है—"जिन के पास धन होता है, उन्हें उससे कष्टही अधिक होता है।" ऐसे अनर्थोंके मूल धनको सिवा मूर्ख और अज्ञानियोंके और कौन पसन्द करे? और यदि इसे किसी तरह संसारके काम चलानेके लिये अच्छा भी समझ लें, तोभी पराया धन चोरी-जारी या बेईमानीसे हड़प जाना तो महा अनर्थ और पापका मूल है। पराया धन हरण करना तो बड़ी बात है, उसके हरणका विचार भी मनमें लाना महाअनर्थकारी है। जो ऐसा विचार भी करते हैं, उनके दोनों लोक बिगड़ जाते हैं; यहाँ लोक-निन्दा होती और दण्ड मिलता है। यदि यहाँ किसी तरह बच गये, तो वहाँ तो किसी तरह बचही नहीं सकते। आपकी बुरी इच्छाओंको भी नोट करनेवाला आपके भीतरही मौजूद है। वह आपके गुप्त-से-गुप्त कामों पर नज़र रखता है। महात्मा विदुरने कहा है—"पराया धन हरण करने, परस्त्रियोंसे व्यभिचार करने और विश्वासी मित्रोंके साथ विश्वासघात करनेसे मनुष्य नष्ट हो जाता है।" धर्मपद में लिखा है—"जो हिंसा करता है, मिथ्या भाषण करता है, जो दूसरोंकी चीज़को उनके दिये बिना अपहरण करता है, वह इस लोकमेंही अपने हाथसे अपनी जड़ खोदता है।"

अगर धनकी लालसाही हो, तो स्वयं उद्योग करना

चाहिये। उद्योगी और मिहनतीके पास लक्ष्मी निश्चयही दौड़कर आती है। उद्योगी कभी भी दरिद्री नहीं रहता। अगर बहुत धन भाग्यमें न भी लिखा हो, तोभी उद्योगी दरिद्री नहीं रह सकता ; इसलिये भूलकर भी पराये धनपर मन न चलाना चाहिये।

सच बोलना।



सत्य स्वयँ परमात्मा है ; सत्यके समान और कोई धर्म है न तीर्थ। सत्य सब धर्मों से ऊँचा है। वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्डमें लिखा है,—"प्राचीन समयमें स्वयं विधाता ने सत्य और अश्वमेध यज्ञको तराज़ूके पलड़ोंमें रखकर तोला, तो उन्हें अश्वमेध यज्ञसे सत्य भारी मालूम हुआ।"

सच्चेका सब कोई विश्वास और सम्मान करते हैं। सत्यकी सदा जय होती है, सत्यकी नाव पर्वतपर चलती है, सत्यसेही पृथ्वी ठहरी हुई है, सत्यसेही सूर्य्य तपता है, सत्यसे ही हवा चलती है, जो कुछ है वह सत्यपर ही ठहरा हुआ है। यही बात एक पाश्चात्य विद्वान्ने भी कही है—"सत्य और विश्वास संसार-मन्दिरके स्तम्भ—खम्भे हैं। जब ये स्तम्भ टूट जायेंगे, तब भवन गिर पड़ेगा और सब चूरचूर हो जायगा।" टिल्टसन महोदय कहते हैं—"हमें अपने लक्ष्य-स्थान या मंज़िल मकसूद तक पहुँचनेके लिये सत्यही की राह-पर चलना चाहिये। यह राह सीधी और नज़दीकी है; अर्थात्

सत्यकी राहपर चलनेसे, हम अपने लक्ष्यपर बहुत जल्दी पहुँचते हैं।" बॉसट नामक एक विद्वान् कहते हैं—"सत्य एक रानी है, जिसका नित्य सिंहासन स्वर्गमें है और उसका निवास परमात्माके हृदयमें है।" कहाँ तक कहें, सत्यकी महिमा संसारके सभी विद्वानोंने खूब लिखी है। सत्य ऐसा है, तभी तो धर्मराज युधिष्ठिरने अनेक असहनीय कष्ट भोग किये। पाञ्चालीके बारम्बार रोने-गानेपर भी, भीमार्जुनके उत्तेजित करनेपर भी, उन्होंने सत्यको नहीं त्यागा और सत्य के बलसे ही, अन्तमें, उन्हीं की विजय हुई। सत्यके लियेही, हरिश्चन्द्रने राज्य, धन और स्त्री पुत्र तकको त्यागकर, श्मशान-घाटपर चाण्डालकी सेवा स्वीकार की।

सच्चा मनुष्य ही पूर्ण है। सच्चे स्वामीपरही नौकरकी श्रद्धा होती है। मनुष्यमात्रको सच्चाईकी ज़रूरत है। प्रकृति स्वयं सच्ची है, प्रकृतिका अर्थ सच्चा है और जिसमें सच्चाई है, उसमें प्रकृतिका हाथ अवश्य है। सत्यको कितना ही छिपाइये, वह छिपेगा नहीं। अगर दब भी जायगा, तो फिर ऊपर आवेगा और आवेगा।

अँगरेज़ोंमें एक कहावत है—"सत्य और तेल सदा ऊपर रहते हैं।" सर विलियम हेम्प महोदय कहते हैं—"सत्य खुतलके कागके समान है। आप कागको पानीमें दबा दीजिये, पर वह ऊपर आये बिना न रहेगा।" सत्यका भी यही हाल है, वह दबा देने पर भी कभी-न-कभी ऊपर आता ही है।

मनुष्यको सदा-सर्वदा सत्य बोलना चाहिये। सच्चा अगर कभी भूलसे या जानकर झूठ भी बोल देता है; तो उसका वह मिथ्या भी सत्य ही समझा जाता हैं। जो मिथ्या बोलता है, वह यदि कभो सच भी बोले तो लोग उसे मिथ्या ही समझते हैं। सच्चा अपनी घोर विपद्के भी निश्चयही पार हो जाता है। कहा है:—

कृत्यर्थं भोजनं येषां, सन्तानार्थं च मैथुनम्।
वाक् सत्य वचनार्थाय दुर्गाण्यपि तरन्ति ते॥

जो मनुष्य प्राणरक्षाके लिये खाते हैं, सन्तानके लिये स्त्री-संसर्ग करते हैं और सत्यके लिये बोलते हैं—वे विपद्के पार हो जाते है। कबीर साहबने कहा है:—

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय साँच है, ताके हृदय आप॥
साँचे शाप न लागई, साँचे काल न खाय।
साँचेको साँचा मिले, साँचे माँहि समाय॥
झूठ बात नाहिं बोलिये, जब लागि पार बसाय।
अहो कबीरा! साँच गहु, आवागमन नसाय॥

सारांश—सदा सच बोलो। सच बोलने वालेका दर्जा सबसे ऊँचा है। सत्यवादी परमात्माका सबसे ज़ियादा प्यारा है। सत्यका परिणाम सदा सुखदाई है।

सामर्थ्यानुसार दान करना।

मनुष्यको अपनी सामर्थ्य—श्रद्धानुसार, समय पर, ज़रूरतके समय, अवश्य दान करना चाहिये। सामर्थ्यसे अधिक देना अथवा समय चूक कर, बिना समय देना अच्छा नहीं। समय की एक कौड़ी, बिना समयके रुपयेसे अच्छी है। यौवन, जीवन, वित्त, छाया, लक्ष्मी और प्रभुता ये चञ्चल हैं—आज हैं, कलका भरोसा नहीं। मरने पर केवल धर्म ही मनुष्यके साथ जाता है और सब तो शरीरके साथ ही नाश हो जाते हैं; इसलिये मनुष्यको हर दिन कुछ-न-कुछ दान करना चाहिये। कौन जाने किस समय घड़ीके पैण्डूलमका हिलना बन्द हो जाय? दानीकी इस लोकमें सत्कीर्ति होती और मृत्युके बाद उसे स्वर्ग मिलता है। हरिश्चन्द्र, कर्ण, विक्रम, नौशेरवाँ और हातमताई आज इस नापायेदार दुनियामें नहीं हैं, उनकी हड्डियोंका भी पता नहीं है; पर उनका विमल सुयश आज तक वर्तमान है और प्रलयान्त तक इसी तरह अजर और अमर रहेगा। हितोपदेशमें लिखा है—

> अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
> गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥

मैं कभी बूढ़ा न हूँगा और न कभी मरूँगा—यह समझ कर बुद्धिमान विद्या और धनकी चिन्ता करे और मेरे बाल

मौतने पकड़ रक्खे हैं—यह समझ कर धर्म का अनुष्ठान करे। इसी टक्कर की बात हरडर नामक एक यूरोपियन विद्वान्ने भी कही है।

"Seek knowledge, as if thou wert to be here for ever; virtue as if death already held thee by the bristling hair"

यह समझ कर, कि गोया तू सदा ही इस जगत्में रहेगा, विद्यार्जन कर; मौतने तेरे बाल पकड़ रक्खे हैं, यह समझ कर धर्म का अनुष्ठान कर।

भाइयो! इस बातको हरदम याद रक्खो कि, शरीर सदा रहने वाला नहीं, धन और सम्पत्ति भी सदा रहने वाले नहीं, मौत सिर पर खड़ी घात देख रही है; इसलिये भला चाहते हो, तो धर्म करो, धर्म करो, दूसरोंका दुःख दूर करो। मरने पर यही मित्र साथ जायगा और सब मित्र जीते जी के हैं। कहा है, परदेशमें विद्या मित्र है, घरमें स्त्री मित्र है, रोगीको औषधि मित्र है और मरे हुए का एकमात्र धर्म मित्र है।

अज्ञानी लोग समझते हैं—दान-धर्म और भजन-उपासनाका समय बुढ़ापा है। यह उनकी कैसी भयङ्कर नादानी है! रोज़ ही देखते हैं कि, काल न बूढ़ेको देखता है, न जवानको और न बालकको। वह जिसे पाता है, उसे ही उठा ले जाता है। इसलिये बचपनसे ही दान-धर्म और

भजन-उपासना करनी चाहिये। ध्रुव और प्रह्लादने बचपन में ही भगवद् भजन किया था। जो अबतक नहीं चेते हैं, वह अब चेत जायँ। कहा है—

पहली अवस्थामें विद्या, दूसरीमें धन और तीसरीमें धर्मका सञ्चय नहीं किया, तो चौथीमें क्या करोगे?

जब तक शरीर निरोग है, मृत्यु दूर है, तब तक अपनी भलाईके लिये परोपकार-पुण्य सञ्चय कर, प्राणनाश होने पर क्या करेगा?

हाथ दान-रहित हैं, कान वेदशास्त्रके विरोधी हैं, नेत्रोंने साधु-महात्माओंके दर्शन नहीं किये, अन्यायसे कमाये हुए धनसे पेट भरा है और उससे सिर ऊँचा हो रहा है—रे रे स्यार! ऐसे निन्द्य—घृणित शरीरको शीघ्र त्याग।

क्या ग़रीबों को भी दान करना चाहिये?

दान-धर्ममें ग़रीब-अमीरकी कुछ क़ैद नहीं है। जिसके पास कौड़ी हो, वह कौड़ी ही दान करे; जिसके पास पैसा हो वह पैसा ही दे; जिसके पास रुपये और अशरफियाँ हों, वह रुपये और अशरफियाँ ही दान करे। निर्धनकी एक कौड़ी करोड़पतिकी अशरफियोंसे अधिक फलदायी होती है। राजा भोजने, पूर्व जन्ममें, एक अतिथिको एक रोज़ अपना भोजन खिला देनेसे ही राज्य और अटूट सम्पत्ति पाई थी। सोचिये तो सही; एक-एक पाई रोज़ दान करनेसे एक बरसमें ३६०

पाई, दस वर्षमें ३६०० और पचास वर्षमें सहजमें १८००० पाई जमा हो जाती हैं। विद्या, धन और धर्मके मामले में इस बातका खूब ख़याल रखना चाहिये।

भाइयो! एक-एक ईंटसे महल खड़ा हो जाता है। एक-एक बूँदसे घड़ा भर जाता है। घड़ा ही क्या—एक-एक बूँदसे महासागर और एक-एक छोटे कणसे आपकी यह पृथ्वी बनी है। एक-एक मिनटसे अनन्त युग बन गये हैं। दयापूर्ण छोटे-छोटे काम और प्रेमपूर्ण छोटे-छोटे शब्द हमारी इस पृथ्वी को स्वर्गीय नन्दन कानन बना देते हैं। महात्मा विदुरने कहा है—"जो समर्थ और बलवान होने पर क्षमा करता है और निर्धन होने पर दान करता है, वह स्वर्गके भी सिर पर रहता है। जो धनी होकर दान न करे और निर्धन होकर तप न करे, उसे गलेमें पत्थर बाँध कर डुबा देना चाहिये।"

सज्जनोंका स्वभाव होता है, कि वे आप तो दुःख पाते हैं, पर दूसरोंका दुःख दूर करते हैं; उनसे दूसरोंका दुःख देखा नहीं जाता। उन्हें एक रोटी मिलती है, तो उसमेंसे आधी अपने भूखे-पड़ोसीको दे देते हैं और ऐसे भी लोग इस संसार में हैं, जो अपने पास लाखों-करोड़ों होते हुए भी दूसरोंका दुःख देखा करते हैं; पर उन्हें अपने भाइयोंपर दया नहीं आती—उनका पत्थर-समान हृदय ज़रा भी नहीं पसीजता। वे रात-दिन निन्यानवेके फेरमें पड़े रहते हैं। उन्हें रात-दिन धन बढ़ानेकी ही चिन्ता रहती है। दानके

नामसे उनका कलेजा काँप उठता है। याचक उन्हें शत्रुसे दीखते हैं; पर यह उनकी नासमझी है। वे धनका स्वभाव नहीं जानते। वे समझते हैं, कि हम और हमारी औलाद सदा-सर्वदा धनीही बने रहेंगे। दान करनेसे—दूसरोंको देनेसे धन घट जायगा। शेख़ सादीने कहा है;—

ज़काते माल बदर कुन, के फ़ज़्लेए रज़रा।
चो बाग़बाँ बबुर्द, बेशतर दिहद अंगूर॥

दान करनेसे धन घटता नहीं—बढ़ता है। अङ्गूरोंकी शाखें काटने से और ज़ियादा अङ्गूर आते हैं।

यद्यपि हमारा भारत अब दरिद्र हो गया है—अब इस देशमें धनकी नदियाँ नहीं बहतीं। फिर भी; इस देशमें थोड़े-बहुत धनी हैं ही; पर आज-कलके धनी प्रायः अशिक्षित और मूर्खराज रहते हैं। यदि वे दान भी करते हैं, तो उनसे जितना उपकार होना चाहिये, उतना उपकार नहीं होता। वे शिक्षित न होनेसे, दान करनेके नियम-क़ायदोंको नहीं जानते—कुपात्र और सुपात्रका विचार नहीं करते। लूथरने कहा है—"हमारा मालिक खुदा मूर्खोंकोधन देता है, जिन्हें धनके सिवा और कुछ नहीं देता; अर्थात् जिन्हें धन देता है, उन्हें विद्या, बुद्धि, सज्जनता, उदारता प्रभृति सद्गुणोंसे कोरा रखता है।" इसी वजहसे आजकलके धनी या तो दान करते ही नहीं; यदि करते हैं, तो ऐसोंको दान करते हैं, जो सच्चे

मुसण्डे और नीच कुकर्मियोंके सरदार हैं, जिनके यहाँ लक्ष्मी का अभाव नहीं है, जो दानियोंके धनसे गो-हत्या कराते हैं, वेश्याओंको भोगते और नचाते हैं अथवा और विविध प्रकारके कुकर्म करते हैं। बहुतसे दानी उनको दान देते है, जो रात-दिन उनको ख़िदमत और खुशामद करते हैं, उनके पीछे-पीछे फिरा करते हैं, और जो या तो कुछ न कुछ धन रखते हैं अथवा कमा सकते हैं। कुछ धनी केवल अख़बारोंमें प्रशंसा करानेके लिये ही अपना रुपया बर्बाद करते हैं। इस तरह जो धन नष्ट किया जाता है, उसका फल कुछ नहीं मिलता और बाज़-बाज़ समय उलटे पापका भागी बनना पड़ता है। हमारे पास स्थानका अभाव है, इसलिये हम इन बातों को और भी बढ़ा-बढ़ा कर लिखनेमें असमर्थ हैं। "अक्लमन्दाँरा इशारा काफ़ी अस्त।" बुद्धिमान् इशारेमेंही समझ जाते हैं। धन उन्हें देना चाहिये, जो वास्तवमें ग़रीब या मुहताज हैं ; चाहे वे राहके भिखारी हों, चाहे सफेदपोश और महलोंके रहनेवाले हों। हज़ारों परिवार अभावसे प्राण-त्याग कर देते हैं, पर लज्जाके मारे किसीके दरवाज़े नहीं जाते। अमेरिकन धनकुबेर कारनेगी और रॉकफेलर प्रभृति सदा ऐसे लोगोंका ख़ूब ध्यान रखते थे—ऐसोंको खोज-खोज कर धन-दान करते थे और उनको हर तरह सुखी बनानेकी फ़िक्र रखते थे। वजह यह थी, कि वे लोग शिक्षित भी थे और धनी भी थे। बहुत लिखनेसे क्या—धन उन्हें देना

चाहिये, जिनको उसकी सच्ची जरूरत हो । जिनके पास है, उन्हें देनेसे कोई लाभ नहीं । कहा है :—

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु, वृथा तृप्तेषु भोजनम् ।
वृथा दानं धनाढ्येषु, वृथा दीपो दिवापि च ॥
मरुस्थल्यां यथा वृष्टिः, क्षुधार्ते भोजनं तथा ।
दरिद्रे दीयते दानं, सफलं पाण्डुनन्दन ! ॥
दरिद्रान् भर कौन्तेय ! मा प्रयच्छेश्वरे धनं ।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं, नीरुजस्यकिमौषधैः ॥

समुद्रमें वर्षाका होना वृथा है, अघाये हुएको भोजन कराना वृथा है, धनवान्को धन देना वृथा है और दिनमें दीपक जलाना वृथा है ।

मरुभूमिमें वर्षा होनेसे लाभ है ; भूखेको भोजन कराना सफल है ; उसी तरह, हे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ! दरिद्रको दिया दान सार्थक है ।

हे कुन्तीपुत्र ! दरिद्रोंका भरण-पोषण कर । धनियोंको धन मत दे । रोगीको दवा हितकारी है ; निरोगको दवासे क्या लाभ ?

वृन्दने भी कहा है:—

दान दीनको दीजिये, मिटै दरिदकी पीर ।
औषधि ताको दीजिये, जाके रोग शरीर ॥

आजकलके दानियोंमें एक और दोष है। वे लोग अपने गाँववालों, अपनी जान-पहचान वालों या अपनी लल्लोचपो करने वालोंको ही ज़ियादातर देते हैं; लेकिन यह संकीर्ण-हृदयता है। उदारोंके लिये कोई पराया नहीं; सारा जगत् उनका कुटुम्ब है। कहा है:—

> अयं निजः परः वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।
> उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यह अपना है, यह पराया है, ऐसा विचार छोटी समझ वालेही करते हैं; उदारचरितोंके लिये तो सारी पृथ्वी ही उनका कुटुम्ब है।

जब सुकरातसे पूछा गया, कि तुम किस देशके निवासी और नागरिक हो, तब उसने जवाब दिया—"सारे संसारका।" सचमुचही महात्मा पुरुष सारे जगत्‌को अपना देश, हर नगर को अपना नगर, हर आदमीको अपना नातेदार समझते हैं। जो निर्बुद्धि हैं, जो अज्ञानी हैं, वेही किसीको अपना और किसीको पराया समझते हैं। महापुरुष सबकाही भला करते हैं और उसमें भी खूबी यह, कि बिना कहे, बिना जाँचे ही परोपकार करते हैं; यानी सत्पुरुष किसी के कहने-सुनने, अनुनय-विनय करने या खुशामद करने से किसी का भला नहीं करते। उनका तो ध्यान ही हर किसी की भलाई पर रहता है। वृन्द कविने कहा है:—

साधुरीकी बातों पर कान देता, न उसका पतन होता। पहिले; मनुष्य परस्त्रीके रूप-लावण्यकी बात सुनता है; पीछे उसका मन उसी ओर खिँच जाता है; उसके बाद वह, न्याय नीति और धर्मको तिलाञ्जलि देकर, उसके प्राप्त करनेकी धुनमें लगकर विविध प्रकारके उपाय करता है। बस, इसतरह उसके सर्व्व-नाशकी राह साफ हो जाती है। धर्मपदमें लिखा है—"जो अविचारी परस्त्रीकी अभिलाषा करता है, उसे चार फल मिलते हैं— (१) अपयश, (२) निद्रानाशक चिन्ता, (३) दण्ड, और (४) नरक।"

संसारी जीव अपना सर्व्वनाश न करें, अपने सुखमय जीवनको दुःखमय न करें, इसी ग़रज़से राजर्षि भर्तृहरि बुद्धि-मानोंको परस्त्रीकी चर्चासे ही अलग रहनेकी शिक्षा देते हैं; क्योंकि आफ़तकी जड़ इनकी चर्चा ही है। हम भी पाठकों को इस उपदेश पर आँख बन्द करके चलने की सलाह देते हैं।

तृष्णाका प्रवाह तोड़ना।



तृष्णा सब दुःख और आफ़तोंकी मूल है। जिसे तृष्णा नहीं हैं, वह निर्धन होने पर भी राजाओंका राजा और सम्राटोंका सम्राट् है। तृष्णाहीनकी जगत्में कौन बराबरी कर सकता है? तृष्णा ही मनुष्यको नीचे-से-नीचा बनाती है, तृष्णाही मनुष्यसे पराई चाकरी कराती है, तृष्णाही मनुष्यसे नीच-से-नीच धनियोंकी खुशामदें कराती है, तृष्णाही मानका

नाश करती है, तृष्णाका दासही अभिमानियोंकी खोटी-खरी सुनता है; क्षुद्र लोगोंको हाथ जोड़ता है और उनके पैर पड़ता है। तृष्णार्त्त क्या कर्म नहीं करता ? तृष्णाका सेवक, तृष्णाके वशमें हो, दुर्गम पर्वत और अगम्य वनोंमें फिरता है; समुद्रमें ग़ोते लगाता है और रात-रात-भर श्मशानमें जाप करता है; पर तृष्णा कभी शान्त नहीं होती। तृष्णाका स्वभाव है, कि वह दिन-दिन बढ़ती है। कुछ भी पास न होने पर, सौ रुपये की इच्छा होती है; सौ हो जाने पर हज़ारकी, हज़ार हो जाने पर लाखकी और लाख हो जाने पर करोड़की, करोड़ हो जाने पर राज्यकी, राज्य मिल जाने पर साम्राज्यकी और साम्राज्य मिल जाने पर त्रिलोकीके आधिपत्यकी इच्छा होती है। इन्द्रको स्वर्गराज्य भोगते करोड़ों—क्या अरबों—खरबों वर्ष हो गये; पर अब भी उसकी इच्छा स्वर्गराज्य त्यागनेकी नहीं होती; तब मनुष्य बेचारा किस बाग़की मूली है ?

तृष्णाके फेरमें पड़कर मनुष्य इस लोकमें क्षण भर भी सुख नहीं पाता; इस दुष्प्राप्य मानव-शरीरको वृथा नष्ट करता और बारम्बार जन्म-मरणके बन्धनमें पड़कर सदा दुःख भोगता है। फिर भी; न जाने मनुष्य क्यों तृष्णाको नहीं त्यागता ? अज्ञानी इतना नहीं समझता कि, जितना मैंने पहले जमा कराया है, उतना मुझे अवश्य मिलेगा। यदि मैं न लूँ, तोभी मुझे ज़बरदस्ती लेनाही पड़ेगा और जो मैंने जमा नहीं कराया है, वह मुझे किसी तरह—हज़ार भटकने-भ्रमने और नीच-से-

नीच कर्म करने पर भी न मिलेगा। सादी साहबने कहा है—
"जो तेरे भाग्यमें नहीं है, वह तुझे हरगिज़ न मिलेगा;
और जो तेरे भाग्यमें है, वह तुझे जहाँ तू होगा वहीं मिल
जायगा। सिकन्दर अमृतकी तृष्णासे अँधेरी दुनियामें गया,
किन्तु वहाँ पहुँच जाने परभी, वह अमृतको न चख सका।"
मतलब यही है कि, प्रारब्धका लिखा हर जगह बिना प्रयास—
बिना उद्योगकेही मिल जाता है और जो प्रारब्धमें नहीं है, वह
हज़ार-हज़ार चेष्टायें करनेसे भी नहीं मिलता; इसलिये
मनुष्यको तृष्णा—इच्छा—त्यागकर सन्तोष करना चाहिये।
सन्तोषमेंही सच्चा सुख है। सन्तोषीके बराबर इस जगत्में
कोई सुखी नहीं। सन्तोषही सबसे बड़ी दौलत है। जिसे
सन्तोष नहीं, तृष्णा है, वह अरब-खरब और सारे संसारका
स्वामी होनेपर भी सुखी नहीं।

मनुष्य-जीवन कोई लम्बा-चौड़ा नहीं। यह बदलीकी
छाया और बिजलीकी चमकके समान क्षणस्थायी है। मनुष्य-
जीवन खान खोदनेवालेके चकमक पत्थरके पहियेकी चिनगारी
है, जबतक पहिया घूमता है, रोशनी है; जहाँ पहिया ठहरा
कि अन्धकार है। ऐसे क्षणिक जीवनको तृष्णाके भुलावेमें
आकर नष्ट करना और ईश्वरने जो कुछ दिया है, उसको
सुखपूर्व्वक न भोगना, महा अज्ञानता है। तृष्णाका ओर-
छोर नहीं; एक इच्छा पूरी नहीं होती और दूसरी सामने
आ जाती है। इस तरह इच्छायें पूरी नहीं होतीं और मृत्यु

झट मनुष्य को अपने पंजोंमें दबाकर ले भागती है। इस-लिये बुद्धिमान वही है, जो तृष्णाको सन्तोषसे शान्त करके, परमात्माकी भक्ति और परोपकारमें अपना अमूल्य और क्षणिक जीवन अतिवाहित करे। कहा है:—

क्रोधो वैवस्वतो राजा, तृष्णा वैतरणी नदी।
विद्या काम दुधा धेनुः, सन्तोषो नन्दनं वनम् ॥

क्रोध यमराज है, तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु गाय है और सन्तोष इन्द्रका बग़ीचा है।

तृष्णाकी शान्तिका उपाय मोटामोटी सन्तोष है। सन्तोष तभी होता है, जब मनुष्यको ज्ञान होता है; अतः ज्ञानही तृष्णाको शान्त करनेवाला है। विषयोंके भोगनेसे तृष्णा बढ़ती है और विषयोंके त्यागनेसे तृष्णा शान्त होती है। अगर आप तृष्णाके दोषोंको जानकर तृष्णासे दूर रहना चाहते हैं, तो आप मनको वशमें कीजिये। मनके वशमें हो जानेसे इन्द्रियाँ आपही क़ाबूमें हो जायँगी। इन्द्रियोंके वशमें होनेसे इन्द्रियोंके विषय—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्दकी चाह न रहेगी। जब इन विषयोंकी चाह न रहेगी, तब किसकी चाह रहेगी? अर्थात किसीभी पदार्थकी चाह न रहेगी। जब चाहही न रहेगी, तब तृष्णा कैसी? विषयोंके भोगके लियेही तो मनुष्य धनकी तृष्णा करता है। जब विषयोंके भोगनेकी इच्छा नहीं, तब धनकी क्या ज़रूरत? इसलिये तृष्णाके नाश करनेके

नीच कर्म करने पर भी न मिलेगा । सादी साहबने कहा है—
"जो तेरे भाग्यमें नहीं है, वह तुझे हरगिज़ न मिलेगा;
और जो तेरे भाग्यमें है, वह तुझे जहाँ तू होगा वहीं मिल
जायगा । सिकन्दर अमृतकी तृष्णासे अँधेरी दुनियामें गया,
किन्तु वहाँ पहुँच जाने परभी, वह अमृतको न चख सका ।"
मतलब यही है कि, प्रारब्धका लिखा हर जगह बिना प्रयास—
बिना उद्योगकेही मिल जाता है और जो प्रारब्धमें नहीं है, वह
हज़ार-हज़ार चेष्टायें करनेसे भी नहीं मिलता; इसलिये
मनुष्यको तृष्णा—इच्छा—त्यागकर सन्तोष करना चाहिये ।
सन्तोषमेंही सच्चा सुख है । सन्तोषीके बराबर इस जगत्में
कोई सुखी नहीं । सन्तोषही सबसे बड़ी दौलत है । जिसे
सन्तोष नहीं, तृष्णा है, वह अरब-खरब और सारे संसारका
स्वामी होनेपर भी सुखी नहीं ।

मनुष्य-जीवन कोई लम्बा-चौड़ा नहीं । यह बदलीकी
छाया और बिजलीकी चमकके समान क्षणस्थायी है । मनुष्य-
जीवन खान खोदनेवालेके चकमक पत्थरके पहियेकी चिनगारी
है, जबतक पहिया घूमता है, रोशनी है; जहाँ पहिया ठहरा
कि अन्धकार है । ऐसे क्षणिक जीवनको तृष्णाके भुलावेमें
आकर नष्ट करना और ईश्वरने जो कुछ दिया है, उसको
सुखपूर्व्वक न भोगना, महा अज्ञानता है । तृष्णाका ओर-
छोर नहीं; एक इच्छा पूरी नहीं होती और दूसरी सामने
आ जाती है । इस तरह इच्छायें पूरी नहीं होतीं और मृत्यु

झट मनुष्य को अपने पंजोमें दबाकर ले भागती है। इसलिये बुद्धिमान वही है, जो तृष्णाको सन्तोषसे शान्त करके, परमात्माकी भक्ति और परोपकारमें अपना अमूल्य और क्षणिक जीवन अतिवाहित करे। कहा है:—

> क्रोधो वैवस्वतो राजा, तृष्णा वैतरणी नदी।
> विद्या काम दुधा धेनुः, सन्तोषो नन्दनं वनम् ॥

क्रोध यमराज है, तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु गाय है और सन्तोष इन्द्रका बग़ीचा है।

तृष्णाकी शान्तिका उपाय मोटामोटी सन्तोष है। सन्तोष तभी होता है, जब मनुष्यको ज्ञान होता है; अतः ज्ञानही तृष्णाको शान्त करनेवाला है। विषयोंके भोगनेसे तृष्णा बढ़ती है और विषयोंके त्यागनेसे तृष्णा शान्त होती है। अगर आप तृष्णाके दोषोंको जानकर तृष्णासे दूर रहना चाहते हैं, तो आप मनको वशमें कीजिये। मनके वशमें हो जानेसे इन्द्रियाँ आपही क़ाबूमें हो जायँगी। इन्द्रियोंके वशमें होनेसे इन्द्रियोंके विषय—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्दकी चाह न रहेगी। जब इन विषयोंकी चाह न रहेगी, तब किसकी चाह रहेगी? अर्थात किसीभी पदार्थकी चाह न रहेगी। जब चाहही न रहेगी, तब तृष्णा कैसी? विषयोंके भोगके लियेही तो मनुष्य धनकी तृष्णा करता है। जब विषयोंके भोगनेकी इच्छा नहीं, तब धनकी क्या ज़रूरत? इसलिये तृष्णाके नाश करनेके

लिये, आप अपनी इन्द्रियोंको वशमें कीजिये। फिर देखिये, आपको इस पृथ्वीपर ही स्वर्गसे अधिक सुख मिलता है कि नहीं। जिसने इन्द्रियोंको जीत लिया, उसने जगत्‌को जीत लिया। जिसने इन्द्रियोंको स्वाधीन करलिया है, वही सच्चा स्वाधीन है। जो स्वाधीन है, वह तृष्णा क्या—किसीके भी अधीन नहीं है।

महात्मा बुद्धने कहा है—घाससे खेतका नाश होता है, तृष्णासे मनुष्यका नाश होता है; जिसकी तृष्णा नष्ट होगई है, उसे दान देनेसे अधिक फल मिलता है।

कबीर साहबने कहा है:—

> कबिरा तृष्णा पापिनी, तासों प्रीति न जोरि।
> पैंड-पैंड पाछे परे, लागै मोटी खोरि॥

सारांश—तृष्णाको मुँह न लगाइये। मुँह लगानेसेही वह पीछे पड़ती है। इसके नाशके लिये, आप ज्ञानका सञ्चय कीजिये और ज्ञान-बलसे मन और इन्द्रियोंको वशमें करके सदा सन्तोषसे प्रीति कीजिये।

गुरुजनोंके प्रति नम्रता।

सुखाभिलाषी मनुष्यको अपने माता-पिता गुरु आदि बड़ोंके आगे नम्र रहना चाहिये और सहनशीलता से काम लेना चाहिये। रॉसो नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने कहा है—"सहनशीलता सीखना ही बालक का सर्व्व-प्रथम और परमावश्यक पाठ है।" हमारे शास्त्रोंमें ऐसे नर-

श्लोंके बहुत उदाहरण हैं, जिन्होंने गुरुजनोंको सहने और उनकी आज्ञा पालन करनेमें हद ही करदी। उन सबमें श्रीरामचन्द्रजी सबसे आगे हैं। उनके समान नम्र और सहनशील पुरुष बहुत कम हुए हैं। किसीमें दो उत्तम गुण थे, तो किसीमें चार या छे; पर रामचन्द्रजी तो सभी उत्तम गुणोंके आधार थे; इसीसे आप मर्य्यादापुरुषोत्तम कहलाते हैं। चाणक्य में लिखा है:…

> धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता।
> मित्रेऽवंचकता गुरौ विनयिता चित्ते अति गम्भीरता॥
>
> आचारे शुचिता गुणेरसिकता शास्त्रेषु विज्ञातृता!
> रूपे सुन्दरता शिवे भजनता त्वय्यस्ति भो राघव!॥

धर्ममें अभिरुचि, मुखमें मधुरता, दानमें उत्साह, मित्रके साथ निश्छल व्यवहार, गुरुजनोंके साथ नम्रता, चित्तमें गंभीरता, आचारमें पवित्रता, गुणमें रसिकता, शास्त्रज्ञान, रूपकी सुन्दरता और शिवजीकी भक्ति—ये सब गुण राघव! आप हीमें हैं।

नीच लोग अपने माँ-बाप और उस्ताद या गुरु अथवा बड़े भाई आदि से सदा रूखा और कड़ा बर्ताव करते हैं; पर महापुरुष गुरुजनों के आगे सदा नम्र रहते हैं और उनकी बुरी-भली सभी बातोंको बर्दाश्त करते हैं। रामचन्द्रही थे, जिन्होंने पिताकी आज्ञासे राज्य छोड़ चौदह साल तक वनवास के कठोर कष्ट सहन किये। अपने बड़े भाई युधिष्ठिरके

लिये भीम, अर्जुन और नकुल सहदेवने भी कम कष्ट नहीं सहे । ऐसे आदर्श संसारके इतिहासमें और कहाँ हैं ?

वृन्द कविने कहा :—

> भले बुरे गुरुजन वचन, लोपत कबहुँ न धीर ।
> राज-काजको छाँड़िके, चले विपिन रघुवीर ॥
> गुरु वच जोग अजोगहु, करिये भ्रम विसराय ।
> राम हते जमदग्नि कै, वचन सहोदर माय ॥

धैर्य्यवान पुरुष गुरुजनोंकी भली और बुरी बातोंको लोप नहीं करते । पिताकी इच्छासे रामचन्द्रजी राज्य छोड़कर वनको चले गये ।

माता-पिता आदि बड़ोंकी उचित और अनुचित आज्ञाका भ्रम छोड़कर पालन करना चाहिये । परशुरामजीने पिता जमदग्निकी आज्ञासे सहोदर भाइयों और माताके प्राण नष्ट कर दिये ।

प्राणिमात्र पर दया ।

संसारमें दयाके समान और गुण नहीं है । जो दयालु-स्वभाव है, वह देवता है । जिसमें दया नहीं, वह मनुष्य कहलानेका अधिकारी नहीं—राक्षस है । दयालु पुरुष समझते हैं कि, जैसे हमें अपने प्राण प्यारे हैं वैसेही दूसरोंके भी हैं । चींटी अगर हमारे पैरके तले दब जाय, तो उसे

उतनाही कष्ट होगा, जितना हमें हाथीके पैर तले दबनेसे होगा। दया दो तरहसे की जा सकती है—(१) दूसरोंके दिलको अपने समान समझकर, उनका दिल न दुखानेसे; और (२) जो दुःखी हैं; उनका दुख दूर करनेसे। अगर मनुष्य दूसरोंके कष्ट और अभावोंको दूर न कर सके, दूसरोंकी मदद न कर सके, तो कम-से-कम दूसरोंका दिल तो न दुखावे; किसीको अपनी ज़बान और अपने शरीरसे तकलीफ तो न दे। यह भी दया ही है।

आप बालकोंको असमर्थ समझकर उन पर दया कीजिये। अपनी सामर्थ्यभर उनकी इच्छा पूरी कीजिये; उनसे कठोर बात न कहिये। उनको प्यार कीजिये—यह भी दयाही है।

आप मातृहीन पितृहीन अनाथ बालकोंपर यह समझकर दया कीजिये, कि उन बेचारोंने अपने माता-पिताको देखाही नहीं। उनको अपने ही बालक समझकर, उनके भरण-पोषण और शिक्षा प्रभृतिका प्रबन्ध कर दीजिये।

आप स्त्रियोंपर यह समझकर दया कीजिये, कि वे अबला हैं। उनमें स्वयं कमाने और पैसा लानेकी शक्ति नहीं। वे बेचारी जन्मसेही पराधीन और परमुखापेक्षी हैं। उनको यथासामर्थ्य गहने, कपड़े और अन्य आवश्यक पदार्थ दीजिये। उनकी इच्छापूर्त्तिके लिये कुछ नक़द भी दीजिये। मनमें समझ लीजिये, जैसा जी हमारा है वैसाही उनका भी है। घरकी बहुओंपर यह समझकर दया कीजिये, कि ये

हमारे भरोसेही अपने माँ-बापोंको छोड़कर चली आई हैं । यदि हमही इनसे कड़वी बातें कहेंगे; इनका दिल दुखायेंगे, इनकी इच्छायें पूरी न करेंगे तो ये बेचारी क्या करेंगी? अगर आज हम इन्हीं की तरह होते, तो हमारी क्या हालत होती? घरकी बेवाओंपर सबसे अधिक दया कीजिये; क्योंकि वे पतिहीना हैं। संसारमें पतिही स्त्रीको सबतरह के सुख देनेवाला है। आप उनको घरकी और औरतों की अपेक्षा उत्तम वस्त्र दीजिये; उनकी उचित इच्छाको सबसे पहले पूरी कीजिये; रोग होनेपर सबसे पहले उनका इलाज कराइये; भूलकर भी उनसे कठोर वचन न कहिये। यदि उनसे कोई ग़लती भी हो जाय, तो उनकी नादानी समझकर क्षमा कर दीजिये; मीठी-मीठी बातोंसे उन्हें समझा दीजिये, कि वे फिर वैसी ग़लती न करें । घरकी और स्त्रियोंसे भी कह दीजिये, कि उनको सबसे पहले खिलावें और सबसे उत्तम वस्त्र दें; भूलकर भी उनका दिल न दुखावें; ऐसा कीजिये, जिससे उन्हें पतिका अभाव बहुत ही कम अखरे। ये सब काम दयालुताके ही हैं। घरकी औरतोंके बाद बाहरकी औरतोंका हक़ है। यथासामर्थ्य मन-वच और कर्मसे उनके भी दुःख दूर कीजिये।

देशके शासकों पर भी दया कीजिये। उन बेचारोंके कन्धोंपर बड़ा बोझा है—उन्हें बहुत काम करना पड़ता है। उनको ज़रूरतके समय सहायता दीजिये, ताकि उनकी कठि-

माइयाँ दूर हों। अगर उनसे भूल हो जाये, तो आपही उन की बदनामी पर कमर न कस लीजिये! मनमें सोचिये— यदि हम स्वयं इस जगह होते, तो हमसे भी ऐसी भूल होती या न होती।

आप पुस्तक-लेखकोंपर भी दया कीजिये। उनकी भूल नज़र आतेही, उनकी निन्दा पर कमर न कस लीजिये। उनकी ग़लतियों या त्रुटियोंपरही नज़र गड़ा कर, उनकी गर्दनोंपर क़लम-कुल्हाड़ी चलानेको तैयार न हो जाइये। मनमें ज़रा इन्साफ़ कीजिये, कि अगर आपकी कृतिपर कोई दूसरा क़लम-कुल्हाड़ी चलावे या वाग्बाण छोड़े—तो आपकी क्या दशा होगी? आपका दिल दुखेगा या नहीं? साथही इस बातका भी विचार कीजिये, कि हमसे भी भूल और ग़लतियाँ होती हैं या नहीं, हमारे कामोंमें भी त्रुटियाँ रहती हैं या नहीं। अगर आपका आत्मा कहे, कि बेशक हमसे भी भूलें होती हैं, हमारे काम भी सर्व्वथा दोषहीन नहीं होते; तब आपही सोचिये, कि आपको दूसरोंकी निन्दा करने या धूल उड़ानेका क्या अधिकार है? अगर आप यह कहें कि, हमसे भूलें तो होती हैं, पर औरोंसे कम; तब मनमें समझिये कि ऐसे भी हैं, जिनसे आपसे भी कम भूलें होती हैं। अगर वे आपकी धूल उड़ायें, आपकी गर्दनपर क़लम- कुल्हाड़ी चलायें तो आपको कष्ट होगा कि नहीं। अगर आपका आत्मा कहे, कि दुःख तो हमें भी ज़रूर ही होगा; तब इस

हिसाबसे भी आपको दूसरोंके दोषोंपर हँसी न उड़ानी चाहिये। गोल्डस्मिथ महोदय कहते हैं,—"जो परले सिरेके मूर्ख हैं, वेही सदा दूसरोंकी मूर्खताकी बातों पर ठट्ठे उड़ाया करते हैं।" लेंगविन महाशय कहते हैं,—"मूर्ख दूसरोंके दोष पकड़ सकते हैं, पर वे स्वयं उनसे अच्छा काम नहीं कर सकते।" निसन्देह जो दुष्टस्वभाव हैं, जो निष्ठुरहृदय हैं, वेही दूसरोंके ऐब ढूँढ़ा करते हैं और उनको बदनामी उड़ाने में अपना सारा ज़ोर लगा देते हैं। जो सज्जन हैं, सचमुचही विद्वान् हैं, वे अव्वल तो गुणोंको देखते हैं, दोषों पर उनकी दृष्टि जातीही नहीं; यदि दोष नज़र तले आ भी जाते हैं, तो वे उनको क्षमा कर देते हैं; क्योंकि महापुरुषोंका तो स्वभावही ऐसा होता है, कि वे पराये औगुणोंको दबाते और गुणोंको प्रकाशित करते हैं। जिनके दिलों में ईर्षा, द्वेष, मत्सर, क्रोध प्रभृति दुर्गुण होते हैं, वेही बेचारे लेखकोंका दिल दुखाया करते हैं। वे अपने मनमें ज़रा इस बातका भी विचार करें, कि आरम्भमें क्या वे आज-जैसेही थे। हमने अपनी आँखोंसे देखा है, कि जो लोग आज-दिन अपने तईं साहित्यके बादशाह समझते हैं, उनकी आरम्भ-कालकी लिखी पुस्तकें किसी भी कामकी नहीं। जिस तरह लिखते-लिखते वे आज साहित्यके बादशाह बन गये हैं—दूसरे भी कोशिश करनेसे वैसेही हो जायँगे। हमने देखा, कि एक शख़्स प्रत्येक लेखककी पुस्तकोंकी धूल उड़ाया करता था।

एक दफ़ा उसे भी धूल उड़ानेवाला मिल गया; फिर तो मियाँजी को दिनमें तारे दीख गये। आपको अपनी इज़्ज़त बचानी कठिन हो गई। मेरे इतना काग़ज़ काला करनेका यही मतलब है, कि आप दुष्टोंकीसी चाल न सीखें—आप सब पर दया करें, क्योंकि ये काम निन्द्य और सज्जनोंके स्वभावके विरुद्ध हैं—ऐसे काम शराफ़तके बर्ड्द हैं। जो अपने से नीचे वालों पर दया करता है, वही सच्चा महात्मा है।

पाश्चात्य विद्वानोंने ऐसे लोगोंके सम्बन्धमें बहुत कुछ लिखा है। उसमेंसे दो एक विद्वानोंके कथन हम अपनी अनुभव की हुई बातोंके प्रमाणमें लिख देना अनुचित नहीं समझते; नहीं तो बहुत से महापुरुष यह कहने लगेंगे, कि ये लेखक महाशय अपनी रक्षाके लिये ऐसा कहते हैं। कोलरिज महाशय कहते हैं,—"ग्रन्थोंके गुण-दोष-निरीक्षक अक्सर वे लोग हैं, जो कवि, इतिहास-लेखक या जीवनी लिखने वाले होना चाहते थे; पर जब उन्होंने सब तरहसे अपनी क्षमताकी परीक्षा कर ली, उन्हें सफलता न हुई; तब वे परछिद्रान्वेषी बन गये।" उन्होंने सोचा,—अगर यों नाम न हुआ, तो इस तरहही नाम कमायें। शेली महाशय लिखते हैं—"चन्द लोगोंको छोड़कर, अधिकांश समालोचक आलसी और दुष्ट लोग हैं। जिस तरह चोर जब चोरी करनेमें सफल नहीं होता, तब वह चोर पकड़नेवाला हो जाता है;

उसी तरह जिसे ग्रन्थ लिखनेमें सफलता नहीं होती, वह पर-छिद्रान्वेषी—पराये दोष ढूँढ़नेवाला बन जाता है।"

आपको ग्रन्थ-प्रकाशकोंपर भी दया करनी चाहिये। आप नहीं समझते, प्रकाशक कितनी हिम्मत करके, अपने रुपयोंको काग़ज़ प्रभृतिमें लगा देते हैं। बहुतसे प्रकाशक ऐसे भी होते हैं, जो पैसा पास न होनेपर, जहाँ-तहाँसे माँग-ताँगकर अथवा स्त्रीका ज़ेवर गिरवी रखकर किसी पुस्तकको प्रकाशित करनेका साहस कर बैठते हैं। यदि वैसे प्रकाशक पर आप हाथ साफ़ करने लगें, दुर्भाग्यसे लोग आपकी बात मान कर बेचारेकी पुस्तक न ख़रीदें; तो उसकी कैसी दुर्गति हो? आपकी लिखी पुस्तक उसने नहीं ली, यही अपराध किया है न? पर भाई! यह तो कोई अपराध नहीं। शायद आपके देने लायक़ रुपये उसके पास न हों—अथवा औरही कोई वजह हो। पर क्या इसे आप अपने प्रति अपराध समझते हैं? आप बाज़ारमें कोई चीज़ ख़रीदने जायँ; दूकान्दारके दिखाने और कहने-सुनने पर भी आप उसे न लें, और वह आपको गालियाँ दे; तो क्या आप उसकी गालियोंका बुरा न मानेंगे? आप उस दूका-न्दारको अन्यायी नीच प्रभृति न कहेंगे? वास्तवमें दूकान-दारको वैसा करनेका कोई अधिकार नहीं है। मनमें आई चीज़ ली, मनमें आई न ली। बस, यही बात अपने और प्रकाशकके दर्म्यान समझिये। आप उस बेचारेपर दया कीजिये, उसकी हानि न कराइये। ख़ुदा न ख़्वास्ता!

उसकी किताब रुक गई, उसकी रक़म ऐंड हो गई, तो बेचारेकी कैसी बुरी दशा होगी। अगर आप उस प्रकाशक की जगह प्रकाशक होते, और वह अपनी नीचतासे आपके साथ वैसाही सलूक करता, जैसाकि आप कर रहे हैं, तब आपको दुःख होता कि नहीं; ज़रा अपनी छातीपर हाथ धरकर अपने अन्तरात्मासे पूछिये तो सही। अगर उसने बुरी पुस्तक प्रकाशित की है, उससे साहित्य गन्दा होता है अथवा पाठक बिगड़ते हैं; तो कम-से-कम एक-दो बार आप उसे पत्र द्वारा गुप्त रूपसे सावधान तो कर दीजिये। जब भी वह न माने, तभी आप उसपर खड्गहस्त होना। आपकी ऐसी कार्रवाईका उसके चित्तपर बड़ा प्रभाव पड़ेगा। वह भविष्यमें भूलकर भी वैसा काम न करेगा और साथही वह आपकी दयाका—आपकी उच्चाशयताका कृतज्ञ होगा। यह भी दयाही है।

आप अपने नौकरसे मनुष्यताका बर्त्ताव कीजिये। उसके प्राणोंको भी अपनेही प्राणों-जैसा समझिये। उसके और अपने शरीर में भेद न समझिये। उसके भी ठीक आपकेसे ही प्राण और शरीर हैं। भेद इतनाही है, कि आपके पास दो पैसे हैं और उसके पास नहीं। आपसे एक पैसा पानेके लिये, उसने आपकी गुलामी की है। अगर उससे कोई काम बिगड़ जाय या कुछ नुक़सान हो जाय, तो आप उसे तङ्ग न कीजिये। आप उससे काम लीजिये,

पर गालियाँ देकर उसका दिल न दुखाइये; उसपर प्रहार मत कीजिये ; उसके शरीरमें भी दर्द होता है। अगर वह बीमार हो जाय, तो उसका इलाज कराइये। अगर आपसे इतना न हो सके,तो उसे ज़रूरतके माफ़िक़ रुख़सतही दीजिये। उसको आपकी तरह शिक्षा लाभ करने और अपनी उन्नति करनेके अवसर नहीं मिले—इसीलिये वह आपका गुलाम है और आपकी दयाका हक़दार है। सज्जन पुरुष अपने नौकरोंपर अत्याचार नहीं करते—उनको अधिक कष्ट नहीं देते—उनको किसी तरह दुःखित नहीं करते—उनके दुःख-सुखको अपने दुःख-सुखके समान समझते हैं—उनकी हितचिन्तना करते हैं। सज्जनोंको सबपर दया आती है।

गुलिस्ताँमें लिखा है ;—

वर बन्द मगीर ख़श्म बिसियार।
जौरश मकुन व दिलश मयाज़ार॥

ओरा तो बदह दिरम ख़रीदी।
आख़िर न ब क़ुदरत आफ़रीदी॥

अपने ख़रीदे गुलामपर ज़ुल्म मत करो—उसका दिल मत दुखाओ। तुमने उसे दस दीनारोंमें ख़रीदा ज़रूर है, पर उसे बनाया नहीं है।" और भी कहा है :—"तेरा यह घमण्ड, गुस्ताख़ी और गुस्सा कहाँतक चलेगा ? तेरे ऊपर तुझसे भी बड़ा मालिक है। विचारके दिन बड़ा भारी दुःख

होगा, जबकि नेक गुलाम स्वर्गमें पहुँचाया जायगा और दुष्ट स्वामी नरकमें जलाया जायगा ।"

दुर्जनोंपर भी दया कीजिये, क्योंकि उनका भविष्य अन्धकारमय है। वह दूसरोंपर जल-जलकर आपही ख़ाक हुए जाते हैं। दाहरूप शत्रु उनके पीछे लग रहा है; अतः आप उनपर भी दया कीजिये।

जब आप स्वयं बे-ऐब या निर्दोष नहीं हैं, तब आप दूसरोंके दोष ढूँढ़नेकी चेष्टा क्यों करते हैं? दूसरोंके अपराधों, व्यभिचारोंपर आपका क्रोध करना वृथा है। इससे आपको क्या फायदा? बुरा तो इस तरह सुधरेगा नहीं; आपकी ही क्षति होगी। अच्छा हो; अगर आप ऐसोंपर दया करें। सम्भव है, आपके मधुर वचनों और दयासे उनमें कुछ सुधार हो जाय। बच्चा मारने पीटनेसे सुधरनेके बजाय बिगड़ताही है; मगर प्रेमसे—दयापूर्ण व्यवहारसे बड़े-बड़े दुष्ट सुधरते देखे गये हैं। वाक्यबाण बड़े बुरे होते हैं। प्यार किया जाना, प्यार करनेसे उत्तम है। कठोरताकी अपेक्षा, दयाके द्वारा बालकोंपर अधिक प्रभाव डाला जा सकता है।

एक राजाने मरणशय्यापर अपने पुत्रको उपदेश दिया—"बेटा! दीनोंको सुखी करना; कमज़ोरोंकी ज़बरदस्तोंसे रक्षा करना; अपनी प्रभुतापर भटके हुए को राहपर लाना; अगर तुम ऐसा करोगे, तो परमेश्वर तुमसे सन्तुष्ट होगा।"

लार्ड एव्हरीने कहा है,—"प्रेम, दया और चित्तकी शान्ति के बिना भी मनुष्य धनवान और बलवान हो सकता है; परन्तु इन तीनोंके बिना मनुष्य सुखी कदापि नहीं हो सकता। इनके बिना स्वर्ग भी नरक है······लोग कहते हैं, कि मित्रोंको प्यार करो और शत्रुओंसे घृणा करो; परन्तु मैं कहता हूँ,—"शत्रुओंपर भी दया करो। जो तुम्हें गाली दे, उसे तुम आशीर्वाद दो। जो तुमसे घृणा करे, उसका उपकार करो। जो तुमको दुःख दे, उसके लिये ईश्वरसे क्षमा माँगो। फिर देखो, कैसा आनन्द आता है।" कहा है :—

जो तोकूँ काँटा बुवे, ताहि बोउ तू फूल।
तोकूँ फूलके फूल हैं, वाकूँ हैं तिरशूल॥

अपराधी या निरपराधी, धर्मात्मा या पापात्मा सब पर दया करो। दयामें सबहीका समान हक़ है। हमारे देशके लोग बहुधा पापियों और अपराधियोंसे घृणा करते हैं। यह बड़ी भारी भूल है। सच्चा दयावान् तो वही है, जो सबपर दया करता है। देखिये, परमात्मा सब पर दया करता है। चन्द्रमा राजा, तपस्वी, अपराधी, निरपराधी, चोर, बदमाश, चमार और भङ्गी सबके घरमें समान रूपसे अपनी चाँदनी छिटकाता है। सूर्य्य अमीर-ग़रीब, छोटे-बड़े, बुरे-भले, सबके घरमें रोशनी करता है।

संसारमें ऐसे लोग बहुत कम हैं, जो पापियोंके पाप-कर्मोंपर पर्दा डालें, उनपर दया प्रकाशित करें, उनके सुधारने की चेष्टा करें। पापियोंको देखकर हँसनेवाले और घर-घर उनकी निन्दा करके अपना मुँह काला करनेवाले बहुत हैं। गुलिस्ताँमें लिखा है,—"हे भक्त ! पापीसे तुझे घृणा न करनी चाहिये—चाहिये उसपर दया करनी ।"

रोगियोंकी बक़वादसे आप नाराज़ न हों, बल्कि उनकी अवस्थापर तरस खायँ। आपसे हो सके जितनी उनकी सेवा-शुश्रूषा करें। इस दयाका बड़ा पुण्य होता है। महात्मा हावर्डने अपना जीवन रोगियों और क़ैदियोंकी भलाईमेंही बिता दिया। उसने क़ैदियोंके सुखके लिये जेलकी भयानक यन्त्रणायें भोगीं और बहुतहे रोगियोंकी सेवा करते हुए अपने प्राण त्यागे। ऐसेही दयालु महापुरुषोंका जीवन धन्य है। महात्मा बुद्ध जबकि राजकुमार थे—एक कोढ़ीको दुःखित देखकर गोदमें लेकर बैठ गये। सारथीने कहा—"राजकुमार! ऐसे रोगियोंको कोई भी नहीं छूता—ऐसे रोगियोंके संसर्गसे दूसरोंको भी रोग हो जाता है। आप राजकुमार हैं, आपको ऐसा हरगिज़ न करना चाहिये।" आपने कहा,—"क्या राजकुमार और राजघरानेवालोंको रोग नहीं होता ?" बहुत क्या कहें—आपने संसारके दुःखों से पानी-पानी होकरही—दयावश, अपना राज्य, अपनी स्त्री और अपने शिशु पुत्रको त्यागकर वनको राह ली !

कबीरदासने कहा है ;—

भावैं जाओ बादरी, भावैं जावहु गया ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो,सब तें बड़ी दया ॥

सारांश—किसीका भी दिल न दुखाओ ; हो सके तो उपकार करो । इससे बढ़कर और धर्म नहीं है ।

छप्पय-तजै प्राण की घात, और परधन नहिं राखै ।
पर युवती को त्याग, वचन झूंठे नहिं भाषै ॥
निज हाथन जुति दान देत, तृष्णा को रोकत ।
दया सबन में राख, गुरुन के चरणन ढोकत ॥
यह सम्मत है श्रुति स्मृतिकी, सबको सुखदायक सुभग ।
सब विधि दायक कल्यानकी,अति उत्तम यह सुगम मग ॥२६

26. Abstinence from murder and robbery, truthfulness, giving alms at the proper time, silence in the matter of a talk about other people's wives, checking the springs of avarice, respect for elders, sympathy with all, a general knowledge of all the sacred books, an unbroken compliance with religious duties, all these are the ways leading to a man's welfare.

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ॥
विघ्नैः पुनःपुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति ॥ २७ ॥

संसारमें तीन तरहके मनुष्य होते हैं:—(१) नीच, (२) मध्यम, और (३) उत्तम । नीच मनुष्य, विघ्न होने के भय से, काम को आरम्भ ही नहीं करते । मध्यम मनुष्य काम को आरम्भ तो कर देते हैं, किन्तु विघ्न होते ही उसे बीचमें ही छोड़ देते हैं; परन्तु उत्तम मनुष्य जिस काम को आरम्भ कर देते हैं, उसे, विघ्न पर विघ्न होने पर भी, पूरा करकेही छोड़ते हैं ।

उत्तम मनुष्य विचारवान् और धैर्य्यवान् होते हैं । वे जिस कामको करना चाहते हैं, पहले उसे सब पहलुओंसे विचार लेते हैं । जब खूब अच्छी तरहसे समझ लेते हैं, तभी उसमें हाथ डालते हैं और जब हाथ डाल देते हैं—आरम्भ कर देते हैं, तब बारम्बार विघ्न होने, बारम्बार सफलता न होनेपर भी, उसे किये ही जाते हैं और शेषमें उसे पूरा करकेही दम लेते हैं । देवताओं ने अमृत के लिये समुद्र मथना आरम्भ किया। मथते-मथते उसमें से ऐसा हालाहल विष निकला, जिससे सब जलने लगे ; पर देवताओंने धैर्य्य न त्यागा, विषसे घबराये नहीं,मथन-कार्य्य किये ही गये ; उनके दृढ़ अध्यवसाय से उन्हें सिद्धि होही गई—अमृत निकल आया और वे उसे पीकर अमर हो गये ।

महाराजा भगीरथने गङ्गाको स्वर्गसे पृथ्वीपर लानेके लिये कठोर तपश्चर्य्या आरम्भ की । उनकी तपस्या भङ्ग करनेके लिये इन्द्रने वर्षा की, अग्नि प्रज्वलित की, वज्र छोड़ा ; उससे पृथ्वी

काँप उठी, दशों दिशायें थर्राने लगीं ; पर वे आसनसे न उठे, ज़रा भी विचलित न हुए। उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली, कि चाहे मरण ही क्यों न हो, कार्य्य सिद्ध करके ही उठेंगे। सुरपति जब डरा कर हार गये, तब उन्होंने विश्वामित्रका तप भङ्ग करनेके लिये जिस तरह अप्सरा भेजी थी; इनका तप भङ्ग करनेके लिये भी अप्सरा भेजी, पर महाराज भगीरथको अप्सरा भी क़ाबूमें न कर सकी ; तब शङ्कर भगवान् उनकी कठोर तपस्या और दृढ़ अध्यवसाय से परम सन्तुष्ट हुए। आपने महाराजको दर्शन देकर गङ्गाको अपने सिरपर धारण करनेका वचन दिया। ब्रह्मा पहले सन्तुष्ट होही चुके थे ; इसलिये गङ्गाजी स्वर्गसे आईं। महाराजको सिद्ध हुई। असम्भव सम्भव हुआ। अगर महाराज घबराकर बीच में ही तप करना छोड़ देते, तो क्या गङ्गा स्वर्गसे आतीं ? रघुवंशी राजाओंमें कामको आरम्भ करके, बिना पूरा किये, अधूरा छोड़ने का स्वभाव नहीं था ; इसी से वे ससागरा पृथ्वी के अधीश्वर हो सके थे। रघुवंशमें लिखा है:—

सोऽहमाजन्म शुद्धानामाफलोदय कर्मणाम्।
आसमुद्र क्षितीशानामानाक रथवर्त्मनाम् ॥

सूर्य्यवंशी राजा अपने जन्मसे ही शुद्ध थे। जब तक उन्हें सफलता नहीं हो जाती थी, तब तक दृढ़ता से काम किये जाते थे। सफलता प्राप्त किये बिना, कामको अधूरा न

छोड़ते थे; इसीसे ससागरा पृथ्वीके स्वामी थे । और तो क्या, स्वर्ग तकमें उनका रथ बेरोक-टोक चलता था ।

हमारे राजा अङ्गरेज़ोंमें भी यह गुण है। यह भी जिस कामको आरम्भ कर देते हैं, उसे हज़ार विक्षेप होनेपर भी सफल किये बिना विश्राम नहीं लेते। इसी उत्तम गुण की वजहसे, बारम्बार हारनेपर भी, विश्वव्यापी महासमर में, अन्त में इनकीही जीत हुई। इनके इस गुणपर मुग्ध हो करही, विजय-लक्ष्मीने, इनकेही गलेमें विजयमाल डाली। इस गुणके कारणही ये भी रघुवंशियोंकी तरह ससागरा पृथ्वी के अधीश्वर हैं।

महात्मा विदुरने कहा है,—"जो मनुष्य खूब सोच-विचार कर कामको आरम्भ करता है, आरम्भ किये कामको समाप्त किये बिना नहीं छोड़ता; किसी समय भी काम करनेसे मुँह नहीं मोड़ता और इन्द्रियोंको अपने वशमें रखता है, वही "पण्डित" कहलाता है।

वीलेण्ड नामक एक पाश्चात्य विद्वान्ने कहा है,—"उत्तम पुरुषोंकी यह रीति है, कि वे किसी कामको अधूरा नहीं छोड़ते।"

एनन नामक एक यूरोपीय विद्वान् कहते हैं,—"काम में सफलता न होने से चेष्टाको परित्याग कर देना, महामूर्खता है। चरित्र-विकाशमें असफलतायें अद्भुत उपादान-सामग्री हैं।"

अल्काट महाशय लिखते हैं,—"सफलता मीठी है ; पर यदि सफलता बड़ी-बड़ी तकलीफ़ों और पराजयोंके बाद बड़ी देरसे प्राप्त की जाय, तो वह और भी मीठी है ।"

सारांश यही है, कि मनुष्य जिस कामको आरम्भ करे उसे बिना पूरा किये न छोड़े । हार पर हार, असफलता पर असफलता, विघ्नपर विघ्न होनेपर भी जो हतोत्साह होकर कामको न छोड़े, वही उत्तम पुरुष है । उसे दृढ़ अध्यवसायके बलसे सफलता होहीगी । संसारमें जिन्होंने रेल, तार, हवाई जहाज़ प्रभृति ईजाद किये हैं अथवा बड़े-बड़े मत फैलाये हैं, उन्हें बड़ी-बड़ी तकलीफें उठानी पड़ी हैं—बड़े-बड़े विघ्नों का सामना करना पड़ा है । लोगोंने उनकी खूब दिल्लगियाँ कीं—पर वे तो अपने आरम्भ किये कामको पूरा करके ही उठे । यह उत्तम गुण प्रत्येक सिद्धि-अभिलाषी मनुष्यको ग्रहण करना चाहिये । मध्यम पुरुषोंकी तरह घबरा कर कामको अधपर छोड़ देना अथवा नीचोंकी तरह असफलता या विघ्नोंके भयसे आरम्भही न करना अच्छा नहीं । ऐसे पुरुषोंके कोई काम सिद्ध नहीं होते और वे दूसरोंका भी कुछ भला नहीं कर सकते ।

यूरोपविजयी वीरशिरोमणि फ्रान्स-सम्राट् नेपोलियन "असम्भव" शब्दको नहीं मानते थे । उनका कहना था, कि संसारमें कोई काम असम्भव नहीं । उनका कहना यथार्थ है । स्वर्गसे गङ्गाको लाने से अधिक क्या असम्भव

होगा ? एक दृढ़ अध्यवसायीने वह असम्भव भी सम्भव कर डाला। मनुष्य परमात्मापर भरोसा करके डटा रहे ; कोई भी काम हुए बिना न रहेगा। डाक्टर नारमैन मेकलियडने कहा है:—

Let the road be rough and dreary,
And its end far out of sight,
Foot it bravely ; Strong or weary,
"Trust in God, and do the right."

"राह चाहे जैसीही ख़तरनाक और अन्धकारपूर्ण हो, उस का अन्त दूर और दृष्टिसे बाहर क्यों न हो, आपमें बल हो और चाहे आप थके हुए हों, आप साहसपूर्व्वक चले जाइये, परमात्माका भरोसा रखिये और न्यायसे काम करते रहिये।" आपको सफलता होगी और होगी, आप लक्ष्य-स्थान या मंज़िल मकसूद पर पहुँच ही जायेंगे ; आपकी अभीष्ट-सिद्धि हो जायगी।

शेख़ सादीने कहा है:—

मुशकिले नेस्त कि आसाँ न शवद।
मर्द बायद कि, परेशाँ न शवद॥

ऐसी कोई मुशकिल नहीं, जो आसान न हो जाय ; पर यह ज़रूरी है कि मर्द घबरावे नहीं। और भी कहा है,—"हिम्मते मर्दां मददे खुदा"। साहसीको मदद खुदा करता है। मतलब यह जो भगवान् पर भरोसा रखकर, बिना घबराये काम किये जाता है, उसको कामयाबी होती ही है।

छप्पय–करहिं न कार्य्यारम्भ, विघ्नभय अधम अनारी ।
मध्यम काजहिं छेड, विघ्नभय देहिं बिसारी ॥
उत्तम त्यागहिं नाहिं, करें जो काज अरम्भा ।
परें अनेकन विघ्न, तदपि रहें अडिग अथम्भा ॥
धन जन वैभव में पाप बिन रहें, ऐसे जनसूर हैं ।
ते दै मूछनपै तावको, फिर जगत सुख पूर हैं ॥२७॥

27. The weak-minded do not begin (a work) for fear of obstacles. Ordinary men, having begun a work, give it up finding obstacles (in the way). But the best men, once they have begun, never give up their work even if they are hindered by obstacles again and again.

असंतो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरम् ॥
विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥ २८ ॥

सत्पुरुष दुष्टोंसे याचना नहीं करते ; थोड़े धनवाले मित्रोंसे भी कुछ नहीं माँगते ; न्यायकी जीविकासे सन्तुष्ट रहते हैं, प्राणोंपर बन आनेपर भी पाप-कर्म नहीं करते, विपद्-कालमें वे ऊँचे बने रहते हैं; यानी घबराते नहीं और महत् पुरुषोंके पदचिह्नोंका अनुसरण करते हैं; अर्थात बड़े लोगोंकी चालपर चलते हैं । इस तलवारकी धारके समान कठिन व्रतका उपदेश उन्हें किसने दिया ? किसीने नहीं ।

वे स्वभावसेही ऐसे होते हैं। मतलब यह है कि, सत्पुरुषों में उपरोक्त गुण किसी के सिखाने से नहीं आते। उनमें ये सब गुण स्वभाव से या पैदायशी होते हैं।

प्रथम तो "याचना" शब्दही बुरा है। याचकके मान तो होता ही नहीं। याचनासे भगवान्‌को भी नीचा होना पड़ा; मनुष्य बेचारा तो कौन चीज़ है? याचनाके बराबर बुरा और नीचा कर्म नहीं। तिनका सबसे हलका है, तिनके से रूई हलकी है, पर माँगनेवाला रूईसे भी हलका है। हवा रूईको उड़ा ले जाती है, पर याचकके पास नहीं आती; हवा डरती है, कि कहीं यह मुझसे भी कुछ न माँग बैठे। शुक्र नीतिमें लिखा है—धनी, गुणी, वैद्य, राजा और जल-रहित स्थानमें सदा रहना, एक भी कन्याका होना और माता-पितासे भी माँगना---ये सब दुःखदायी हैं। माँगनेमें अनेक दोष हैं। माँगना माता-पितासे भी बुरा है। माता-पिता से माँगनेमें भी मनुष्यको दुःख होता है, तब दुष्ट और नीचोंसे माँगना तो कैसा न दुःखदायी होगा? ग़ैर तो ग़ैर, दुष्ट-स्वभाव बन्धु-बान्धवोंसे भी याचना करना, मरण से भी अधिक कष्टदायक है। यही वजह है, कि सत्पुरुष चाहे भूखे मर जायें, छोटे-छोटे बालक भी तड़फ-तड़फ कर क्यों न प्राण देदें, पर वे नीचों से कभी कुछ नहीं माँगते। सत्पुरुषोंकी नज़र में मानका मूल्य सब से अधिक है। वे मान के आगे स्वर्गराज्यको भी तुच्छ समझते हैं। जिसने मान-रक्षा नहीं की,

उसने किसी की भी रक्षा नहीं की। याचना करने या माँगने से मर जाना कहीं अच्छा है।

वृन्द कविने कहा है:—

मानधनी नर नीच पै, जाचै नाहीं जाय।
कबहुँ न माँगै स्यार पै, बरु भूखो मृगराय ॥

मान-धनी पुरुष नीचसे जाकर नहीं माँगते। भूखा सिंह स्यारसे जाकर कभी खानेको नहीं माँगता।

यदि मनुष्य अपनी मानरक्षा चाहे तो भूखा मर जाय, पर किसीसे न माँगे और जिसमें दुष्ट भाई-बन्धुओंसे तो किसी हालत में भी न माँगे---भाई-बन्धुओंसे ग़ैर भला। भाई-बन्धु कुछ देते भी नहीं, उल्टी हँसी उड़ाते और दिलमें खुश होते हैं। घरवालों को दया नहीं आती, पर ग़ैरों को रहम आ जाता है। तुलसीदासजीने कहा है:—

तुलसी कर पर कर करो, कर तर कर न करो।
जा दिन कर तर कर करो, ता दिन मरण करो ॥
घरमें भूखा पड़ रहे, दस फ़ाके हो जायँ।
तुलसी भैया बन्धुके कबहुँ न माँगन जाय ॥

शेख़ सादीने कहा है:—

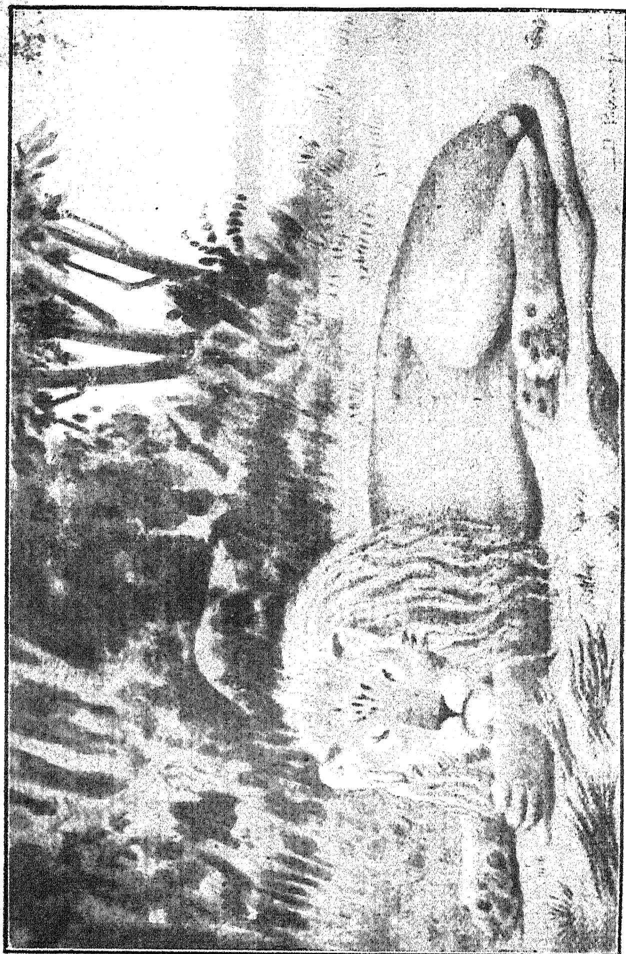
अगर हिनज़ल खुरी अज़ दस्त खुशरुए।
वह अज़ शीरीनी दस्ते तुर्शरुए ॥

दुष्टके हाथसे मिठाई खानेकी अपेक्षा सज्जनके हाथसे इन्द्रायणका कड़वा फल खाना अच्छा।

जो बन्धुबान्धव या मित्र ग़रीब हैं, जिनके पास नाममात्रको धन है, उनसे कुछ माँगना उन्हें वृथा कष्ट देना और अपने समान दुःखी बनाना है; सो बुद्धिमान कैसे कर सकते हैं ?

सत्पुरुष न्यायसे कमाये धनको पसन्द करते हैं—न्याय्य जीविकाही उन्हें अच्छी लगती है, यह उचितही है। जो अन्यायसे कमाये धनसे सुख भोगना चाहते हैं, उन्हें सत्पुरुष कौन कहेगा ? सभी शास्त्रोंमें न्याययुक्त जीविका ही उत्तम जीविका लिखी है। शुक्र नीतिमें लिखा है :—

"वही जीविका श्रेष्ठ है, जिससे अपने धर्मको हानि न हो और वही देश उत्तम है, जिससे कुटुम्बका पालन हो।" चाणक्यने भी कहा है,—"अत्यन्त क्लेशसे, धर्मके त्यागसे और दुश्मनोंके पैरोंमें पड़नेसे जो धन मिले, वह धन मुझे नहीं चाहिये।" महाभारत में लिखा है,—"जो मनुष्य पढ़ा-लिखा न होनेपर भी घमण्डी हो, दरिद्र होकर भी ऊँची-ऊँची वासनाओंके भोगनेकी इच्छा करे और बुरे कामोंसे धन पैदा करना चाहे,— वह मूर्ख है। अन्याय-कर्मसे कमाया धन वंशका नाश कर देता है; किन्तु न्यायसे कमाया धन बेटे पोतों तक स्थिर रहता है; अतः मनुष्यको सुमार्गसे ही धन संग्रह करना चाहिये।" और भी कहा है,—अन्याय का धन दस वर्ष तक ठहता है—ग्यारहवाँ वर्ष लगनेपर समूल नष्ट हो जाता है।"



मानशौर्य प्रशंसा ।

क्षुत्क्षामोपि जराकृशोऽपि शिथिलप्रायोपि कष्टां दशा-
मापन्नोपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषुनश्यत्स्वपि ।
मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भकवलग्रासैकबद्धस्पृहः
किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी ॥ २६ ॥

जो सिंह माननीयोंमें अगुआ है और जो सदा मतवाले हाथियोंके विदारे हुए मस्तकके ग्रासका चाहनेवाला है, वह चाहे कितनाही भूखा, बुढ़ापेके मारे शिथिल, शक्तिहीन, अत्यन्त दुःखी और तेजहीन क्यों न हो जाय,—पर वह, प्राण-नाशका समय आनेपर भी, सूखी हुई सड़ी घास खानेको हरगिज़ तैयार न होगा ।

सिंह और आत्मभिमानी पुरुष एकसे होते हैं । सिंह भूखा भलेही मर जाय; पर वह सड़ी घास कदापि न खायगा । इसी तरह मानी पुरुष मर भलेही जाय, पर वह मान और प्रतिष्ठानाशक नीच कर्म हरगिज़ न करेगा । शेख़ सादीने कहा है—

नख़ुरद शेर नीम ख़ुरदये सग ।
गर बसख़्ती बमीरद अन्दर ग़ार ॥

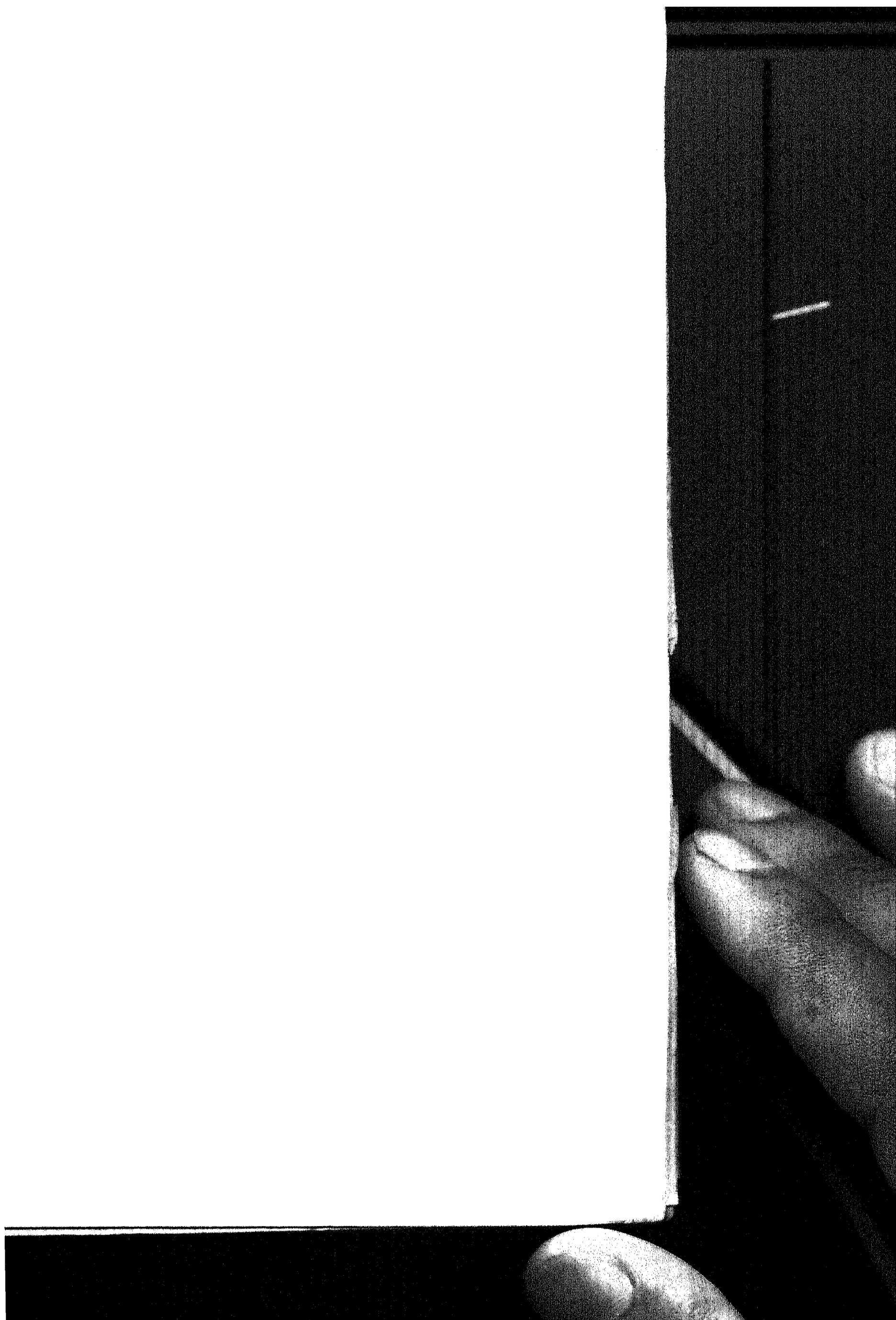
शेर भूखके मारे माँदमेंही भलेही मर जाये, पर वह कुत्ते का जूठा हरगिज़ न खायगा ।

गिरिधर कविरायने भी कहा है :—

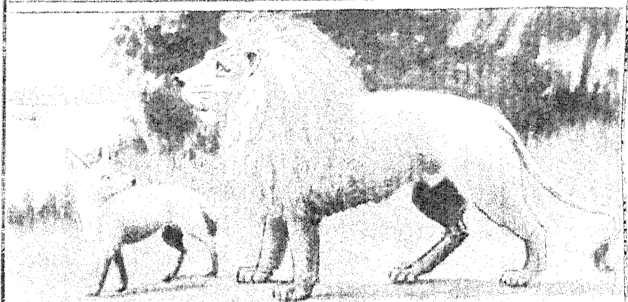
पीवे नीर न सरवरो, बूँद स्वातिकी आश।
केहरि तृण नहिं चर सके, जो व्रत करे पचाश॥
जो व्रत करै पचाश, विपुल गज-युत्थ बिदारे।
सत्पुरुष तजै न धीर, जीव बरु कोऊ मारे॥
कह गिरिधर कविराय जोव जोधक मरि जीवै।
चातक बरु मरजाय, नीर सरवर नहिं पीवै॥

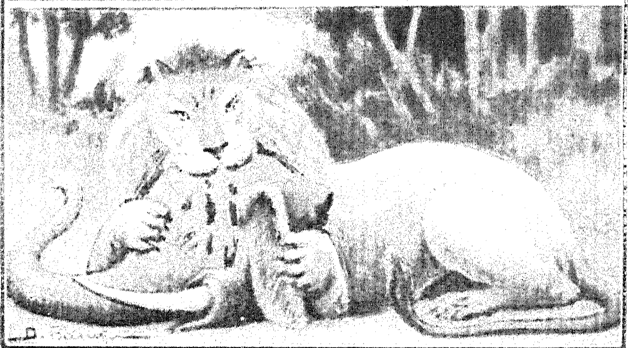
स्वाति बूँदकी आशा रखनेवाला चातक—पपीहा प्यासाही क्यों न मर जाय, पर वह तालाबका जल नहीं पीता। सिंह जो हाथियोंके झुण्डोंका फाड़नेवाला है, पचास फ़ाक़े करनेपर भी घास नहीं चर सकता। सत्पुरुष अपना धैर्य्य नहीं त्यागते, चाहे कोई उनके प्राणनाशही क्यों न करे।

सारांश यही है, कि मनुष्यपर कैसी भी विपद् पड़े, वह कितनाही दुःखित क्यों न हो, पर वह धैर्य्यच्युत न हो, सब्रको हाथसे न जाने दे, घबराकर मान और प्रतिष्ठाको नष्ट करने वाले नीच कर्मों पर उद्यत न हो जाय। सिंह भूखा मर जाता है, पर घास नहीं खाता। पपहिया प्यासा मर जाता है, पर स्वाति-बूँदके सिवा और जलोंको नहीं पीता। उत्तम पुरुषको, सिंह और चातककी तरह, अपनी मानरक्षा प्राणोंसे भी अधिक समझनी चाहिये।









कुण्डलिया-नाहर भूखो उदर कृश, वृद्ध वयस तनक्षीण।
शिथिल प्राण अति कष्टसों, चालिवेही में लीन॥
चलवे ही में लीन, तऊ साहस नाहि छाँडे।
मदगज-कुम्भविदार, मांसभक्षण मन आँडे॥
मृगपति भूखो, घास पुरानी खात न जाहर।
अभिमानिनमें मुख्य शिरोमणि, सोहत नाहर॥२९॥

29. Will the lion, first in the list of honourable creatures and desirous of eating mouthfuls of flesh off the broken trunk of a mad elephant, be contented with the eating of rotten grass, even if he is weak with hunger, old age and loss of vigour and confronted by distress, acute agony and even death itself?

स्वल्पं स्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसमप्यस्थि गोः
श्वा लब्ध्वा परितोषमेति न तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये।
सिंहो जंबुकमङ्कमागतमपि त्यक्त्वा निहंति द्विपम्
सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वांछति जनः सत्त्वानुरूपं फलम्॥३०॥

कुत्ता, गाय प्रभृति पशुका ज़रासा पित्त और चरबी लगा हुआ मलिन और मांसहीन छोटासा हाड़का टुकड़ा पाकर—जिससे उसकी क्षुधा शान्त नहीं हो सकती—अत्यन्त प्रसन्न होता है; लेकिन सिंह गोदमें आये हुए स्यारको भी त्यागकर हाथीके मारनेको दौड़ता है। इससे सिद्ध

कुत्ता शेरदिल हड्डी का टुकड़ा पाकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट करता है; किन्तु सिंह पीछे से आकर उसके हाथों से छीनता है।

(पृष्ठ १६६)

कुण्डलिया-नाहर भूखो उदर कृश, वृद्ध वयस तनक्षीण ।
शिथिल प्राण अति कष्टसों, चालिवेही में लीन ॥
चलवे ही में लीन, तऊ साहस नाहि छाँडे ।
मदगज-कुम्भविदार, मांसभक्षण मन आँडे ॥
मृगपति भूखो, घास पुरानी खात न जाहर ।
अभिमानिनमें मुख्य शिरोमणि, सोहत नाहर ॥२९॥

29. Will the lion, first in the list of honourable creatures and desirous of eating mouthfuls of flesh off the broken trunk of a mad elephant, be contented with the eating of rotten grass, even if he is weak with hunger, old age and loss of vigour and confronted by distress, acute agony and even death itself ?

स्वल्पं स्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसमप्यस्थि गोः
श्वा लब्ध्वा परितोषमेति न तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये ।
सिंहो जंबुकमङ्कमागतमपि त्यक्त्वा निहंति द्विपम्
सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वांछति जनः सत्त्वानुरूपं फलम् ॥३०॥

कुत्ता, गाय प्रभृति पशुका ज़रासा पित्त और चरबी लगा हुआ मलिन और मांसहीन छोटासा हाड़का टुकड़ा पाकर—जिससे उसकी क्षुधा शान्त नहीं हो सकती—अत्यन्त प्रसन्न होता है; लेकिन सिंह गोदमें आये हुए स्यारको भी त्यागकर हाथीके मारनेको दौड़ता है। इससे सिद्ध

होता है, कि लोग कैसे भी दुःखित क्यों न हों, पर वे अपने पुरुषार्थके अनुसार ही फलकी आकांक्षा करते हैं।

वृन्द कविने कहा है—

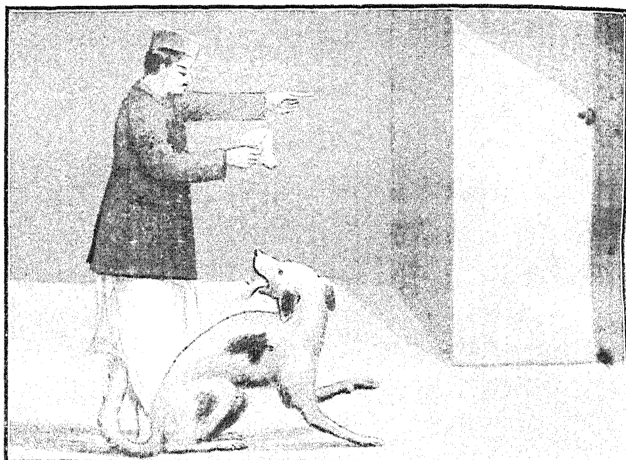
बड़े कष्ट हू जे बड़े, करें उचित ही काज।
स्यार निकट तजि खोज के, सिंह हने गजराज ॥

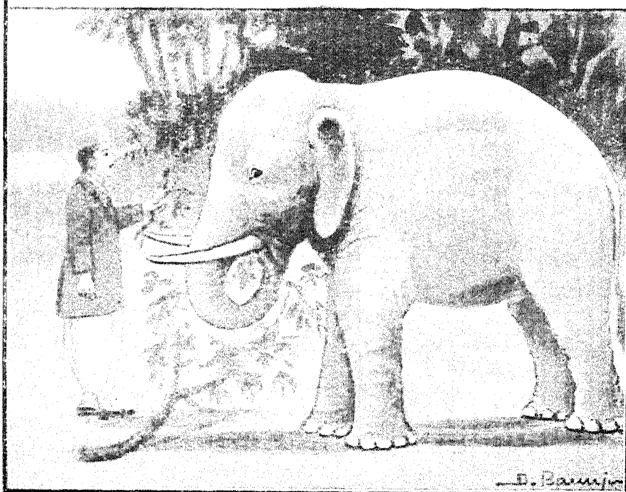
नीच मनुष्य कुत्ते के समान और बड़े लोग सिंह के समान होते हैं। नीच लोग बुरी-से-बुरी चीज़ पर नीयत डिगा देते हैं, पर बड़े लोग घोर विपद्ग्रस्त होने पर भी अपने पुरुषार्थ के अनुसार जीविका करते हैं। वे मर भले ही जायँ, पर वे नीच काम नहीं करते। हंस या तो मोती ही चुगते हैं, नहीं तो लंघन करके मर जाते हैं। सिंह या तो गजराजों को मार कर ही खाते हैं, नहीं तो भूखोंही मर जाते हैं।

कुण्डलिया-कूकर सूखे हाड़सों, मानत है मन मोद।
सिंह चलावत हाथ नहिं, गीदड़ आये गोद ॥
गीदड़ आये गोद, आँखहू नाहिं उघारे।
महामत्त गज देख, दौरके कुम्भ विदारै ॥
ऐसेही नर खरे, वढीकृत करत दुहूंकर।
करैं नीचता नीच, कूर कुत्सित ज्यों कूकर ॥३०॥

30. A dog is delighted if he finds a small, dirty bone of beef consisting only of a little fatty matter inside and







कुत्ता अपनी टेढ़ी दुम चाल के खाविन्द को मुँह और पेट दिखाता है किन्तु गजराज सैंकड़ों खुशामदें कराकर खाता है। (पृष्ठ १६५)

without any flesh, although it can in no way satisfy his hunger, while a lion unheeding a jackal fallen into his arms, goes to kill an elephant. (This proves that) every one desires for a fruit in accordance with his spirit, no matter if it be hard to attain.

लांगूलचालनमधश्चरणावपातम्
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनञ्च ॥
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुंगवस्तु
धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुंक्ते ॥ ॥ ३१ ॥

कुत्ते को देखिये, कि वह अपने रोटी देने वाले के सामने पूँछ हिलाता है, उसके चरणोंमें गिरता है, ज़मीन पर लेटकर उसे अपना मुँह और पेट दिखाता है; उधर श्रेष्ठ गज को देखिये, कि वह अपने खिलाने वाले की तरफ धीरता से देखता है और सैकड़ों तरह की खुशामद कराके ही खाता है।

राजर्षि भर्तृहरि नीच की नीचता और महाजनकी उच्चता कुत्ते और हाथी के दृष्टान्त से दिखाते हैं। कुत्ता इतना नीच है, कि एक टुकड़ेके लिये रोटी देनेवाले की सौ-सौ खुशामदें करता है और हाथी इतना उच्च है, कि अपने रोटी देने वाले के सामने ज़रा भी दीनता नहीं करता; उलटी सैकड़ों खुशामदें कराता है, तब खाता है।

मनुष्यों में भी कुत्ते और हाथी के समान मनुष्य हैं।

भी लोग हैं, जो अपना पेट भरने के लिये अथवा कुछ द्रव्य प्राप्त करके विषय-विष भोगने के लिये, महाभिमानी नीच धनियों को अपना पेट दिखाते हैं, उनके पैर पकड़ते हैं, सैकड़ों तरह की झूठी खुशामदें करते हैं, किसी दशामें भी न करने योग्य निन्द्य कर्म करते हैं, उनकी खोटी-खरी सुनते हैं, उच्च जाति होकर उनके बच्चों का मलमूत्र तक साफ कर देते हैं, समय पर उनकी धोतियाँ तक धो डालते हैं—और तो क्या—उनकी स्त्री तक की बुरी-से-बुरी लल्लोचप्पो करते हैं; भगवान् को भूलकर, हरदम बाईजी-बाईजी की रटना लगाये रहते हैं। ऐसे भी लोग हैं, जो अपने घरों से नहीं निकलते, लोग स्वयं उनके घर जाकर उनकी पूजा और खुशामद करते हैं; पर वे लोग भूखे मरने पर भी किसी की खुशामद नहीं करते; क्योंकि वे पराई खुशामद करके स्वर्ग-सुख भोगने को नरकके दुःखों से भी बुरा समझते हैं। अगर घरमें खाने को भी नहीं होता, तो पेटको बाँध कर या दबा कर सो जाते हैं; किसीकी खुशामद से खाना और कपड़ा पाने की अपेक्षा, निराहार रहना और राहके चीथड़े लपेट कर लज्जा निवारण करना कहीं बेहतर समझते हैं; क्योंकि किसीकी खुशामद-बरामद करके जो चीज़ ली जाती है, उससे काया को तो लाभ होता है, पर आत्माकी हानि होती है। बड़े लोगों ने कहा है,—"मान-सहित मरना,—अपमान सहित जीने से भला है।"

गुलिस्ताँ में लिखा है :—

नानम अफ़ज़ूदो आ बरूयम कास्त।
बेनवाई वह अज़ माज़िल्लते ख़्वास्त॥

जिस रोज़ी से इज्जत घटे, उस 'रोज़ी' से ग़रीबी भली।

दोहा-स्वान लेत लोयो लपक, दीन मान करि दूर।
सौ कों दे भक्षण करत, धीर बीर गजपूर॥३१॥

31. A dog wags his tail before his bread-giver, falls at his feet and lies down on the ground to show his mouth and belly, but the noble elephant looks (on his *mahout*) composedly and only eats his meal when he is flattered a times.

स जातो येन जातेन जाति वंशः समुन्नतिम्॥
परिवर्त्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते॥३२॥

इस परिवर्त्तनशील जगत् में मर कर कौन नहीं जन्म लेता? जन्म लेना उसीका सार्थक है, जिसके जन्म से वंशकी गौरव-वृद्धि या उन्नति हो।

जिस तरह सूर्य, चाँद, शुक्र, शनि प्रभृति घूमने वाले ग्रह हैं; उसी तरह हमारी यह पृथ्वी भी एक ग्रह है। यह भी सदा ग्रहोंकी तरह घूमती रहती है। इस घूमनेवाली पृथ्वी पर सदा परिवर्त्तन होते रहते हैं। संसार एक अवस्था में नहीं रहता। जो आज ज़िन्दा है, कल वही फिर मुर्दा हो

जायगा; जो मर जायगा, वही फिर जन्म लेगा; यानी इस संसारमें जीना और मरना लगा ही रहता है—रोज़ परिवर्त्तन होते ही रहते हैं। इस परिवर्त्तनशील जगत् में मरकर जन्म लेना उसीका सार्थक या सफल है, जिसके जन्म लेने से वंश की उन्नति हो,—वंश का नाम ऊँचा हो। जो जन्म लेकर अपना पेट भरते हैं और उम्र पूरी करके मर जाते हैं, पर उनसे वंशकी गौरव-वृद्धि नहीं होती, उनका जन्म लेना वृथा ही है। वैसे लोग वृथा पृथ्वी-माताको बोझों मारने को पैदा होते हैं। यदि वैसे लोग पैदा ही न होते तो भला था, बेचारी पृथ्वी तो बोझों न मरती।

"पञ्चतन्त्र" में लिखा है—

> किं तेन जातु जातेन, मातुर्यौवनहारिणा
>
> आरोहति न यः स्वस्य वंशस्याग्रे ध्वजो यथा ॥

माताकी जवानी नष्ट करने वाले उस पुरुष के जन्म से क्या, जो अपने वंश में ध्वजा के अगले भाग की तरह स्थित नहीं होता?

और भी कहा है—

> जातस्य नदी तीरे, तस्यापि तृणस्य जन्म साफल्यम् ।
>
> यत् सलिलमज्जनाकुल जन हस्तावलम्बनं भवति ॥

नदीके किनारे पैदा हुए उस तिनके का भी जन्म सफल है, जो जलमें डूबने से घबराये हुए का अवलम्ब होता है।

दानी, परोपकारी, शूरवीर, तपस्वी, विद्वान् और धर्मात्माओं के जन्म लेने से निश्चय ही कुल की गौरव-गरिमा बढ़ती है। महाराजा रघु, दिलीप, राम प्रभृति महापुरुषों से उनके कुल का नाम हुआ। अभी कई सौ साल पहले इटली के एक साधारण गृहस्थ के घर में जन्म लेकर महावीर नेपोलियन ने अपने कुलको उजागर किया। आप अपनी अपूर्व्व शूरता, दृढ़ अध्यवसाय एवं लोकप्रियता प्रभृति गुणों से फ्रान्स के अद्वितीय सम्राट् हुए। महाराज भगीरथ ने श्री गंगाजी को स्वर्ग से लाकर रघुवंशका नाम सदा को अमर कर दिया। ऐसोंकी ही जननी जननी है और ऐसों ही का जन्म लेना जन्म लेना है। जिनके जन्म लेने से संसार का उपकार न हुआ, वंश का नाम न हुआ—उनकी जननी वन्ध्या और उनका जन्म लेना जन्म लेना नहीं।

दोहा—जन्म मरण जगचक्र में, ये दो बात महान।
करै जु उन्नति बंशकी, जन्म्यौ सोही जान ॥३२॥

32. Who is not born after having died in this ever-changing universe? But he really born by whose birth his family gets pro sperity

कुसुमस्तबकस्येव द्वे गतीस्तो मनस्विनाम्।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य विशीर्येत वनेऽथवा॥ ३३ ॥

फूलों के गुच्छे की तरह महापुरुषों की गति दो प्रकार

को होती हैः—या तो वे सब लोगोंके सिर पर ही विराजते हैं अथवा वनमें पैदा होकर वनमें ही मुर्झा जाते हैं ।

आत्मसम्मान चाहने वाले पुरुष फूलों की तरह होते हैं । फूल या तो देवताओंके सिरपर ही चढ़ते हैं अथवा वन-के-वन में ही नष्ट हो जाते हैं । मनस्वी पुरुष भी या तो सब लोगों के ऊपर ही रहते हैं या जहाँ पैदा होते हैं वहीं चुपचाप जीवन बिताकर शेष हो जाते हैं । हिन्दू-कुलसूर्य्य महाराणा प्रताप ने सब राजाओं के अकबर की अधीनता स्वीकार कर लेने पर भी स्वयं अधीनता स्वीकार न की । उनके बच्चे रोटीके टुकड़े के लिये तरसे, उन्होंने क्षण-भर भी चैन न पाया ; पर अकबर के चरण-सेवक होनेकी अपेक्षा उन्होंने ये सब कष्ट अच्छे समझे । महा-पुरुषोंका स्वभाव ही ऐसा होता है । वे जीवनसे मानको बड़ा समझते हैं ।

वृन्द कविने कहा है—

> द्वै ही गति हैं बड़न की, कुसुम मालती भाय ।
> कै सबके सिर पर रहें, कै बन माँहिं बिलायँ ।।

दोहा-पहुपगुच्छ सिरपै रहै, कै सूखै बन माँहि ।
मान ठौर सत्पुरुष रहि, कै सुखदुख घन माँहि ॥ ३३ ॥

33, ike a bunch of flowers there are only two alternatives for a self-respecting man. He will either find a place at the head of all men or will wither in the forest.

सन्त्यन्येऽपि बृहस्पतिप्रभृतयः संभाविताः पंचषा-
स्तान्प्रत्येष विशेषविक्रमरुची राहुर्न वैरायते ॥
द्वावेव ग्रसते दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ भासुरौ
भ्रातः पर्वणि पश्य दानवपतिः शीर्षावशेषीकृतः ॥३४॥

आकाश में वृहस्पति प्रभृति और भी पाँच छै ग्रह श्रेष्ठ हैं; पर असाधारण पराक्रम दिखाने की इच्छा रखने वाला राहु इन ग्रहों से बैर नहीं करता । यद्यपि दानवपति का सिर मात्र अवशेष रह गया है, तोभी वह अमावस्या और पूर्णिमा को दिनेश्वर—सूर्य्य और निशानाथ—चन्द्रमा को ही ग्रसता है।

महापुरुषोंका स्वभाव होता है, कि वे छोटों से वैरभाव नहीं करते, क्योंकि छोटों से जीतने में नेकनामी नहीं मिलती, पर हार जाने में बदनामी होती है—छोटों से जीतने में भी हार और हारने में हार। महापुरुष, इसीलिये, अपने समान या अधिक बलवालों से ही युद्ध करते हैं।

कहा है—

निबल जान कीजै नहीं, कबहुँ बैर विषाद ।
जीते कछु शोभा नहीं, हारे निन्दावाद ॥

कै सम सों कै अधिक सों, लरिये करिये बाद ।
हारे जीते होत है, दोऊ भाँति सवाद ॥

"पञ्चतन्त्र" में लिखा है—

तृणानि नोन्मूलयति प्रभञ्जनो

मृदूनि नीचैः प्रणतानि सर्वतः।

समुच्छ्रितानेव तरून्प्राबाधते

महान्महत्येव करोति विक्रमम्॥

सब तरह से नीचे को झुके हुए कोमल तिनके को पवन नहीं उखाड़ता; खूब ऊँचे वृक्ष को ही उखाड़ता है। इस से प्रत्यक्ष है कि, बड़ा पुरुष बड़े पर ही अपना बल-विक्रम प्रकाशित करता है।

"भामिनी विलास" में लिखा है—

वे तंड गंड कंडति पाण्डित्य परिपन्थिना।

हरिणा हरिणालीषु कथ्यतां कः पराक्रमः॥

हाथियों के मस्तकों की खुजली मिटाने वाला सिंह हिरणों में अपने किस पराक्रम का वर्णन करे?

हाथियों के मस्तकों में जो मद-जल होता है, उसके लिये भौंरे उनके पास जाते हैं और उन पर चरण-प्रहार करते हैं, पर महाबली हाथी उनको तुच्छ समझ कर उन पर क्रोध नहीं करते, इससे भी यही सिद्ध होता है कि बलवान बराबर वाले से ही वैर करते हैं; पर नीच लोग अपने से कमज़ोरों पर ही अपनी बलपरीक्षा किया करते हैं, वे दुर्बलों को ही सताते हैं। नीच इस बातको नहीं समझते, कि दबे को दबाने और मरे

को मारने में कोई वीरता नहीं है। वे उस हवा की तरह हैं, जो बलवान आगको तो जगाती है, पर निर्बल दीपक को बुझाती है। नीचोंका स्वभाव ऐसा ही होता है और महापुरुषोंका स्वभाव वैसा ही होता है।

कुण्डलिया-राजा निशि अरु दिवसको, रविशशि तेज निधान।
पाँचौ ग्रह इन सम नहीं, ताते तजै निदान॥
ताते तजै निदान, आन इनहीं सो अड़कत।
रह्यौ शीशकौ राहु, चाहकर जब तब पकड़त॥
ऐसेही नरधीर, मरत हूँ करत सुकाजा।
गिरत पड़त रणमांहि, सुभट पहुँचत जहँ राजा॥३४॥

34. There are five other well-known planets such as Jupiter etc; but against these this Rahu, the lover of specially heroic deeds professes no enmity. Look, O brother, it is only the two great luminaries, the sun and the moon, that this lordly Rakshasa catches hold of at the time of an eclipse, although head is the only part of its body that is now left.

वहति भुवनश्रेणीं शेषः फणाफलकस्थितां।
कमठपतिना मध्येपृष्ठं सदा स विधार्यते॥
तमपि कुरुते क्रोडाधीनं पयोधिरनादरा-
दहह महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः॥ ३५॥

शेषनाग चौदह भुवनों की श्रेणी को अपने फण पर धारण करता है, उस शेषनाग को कच्छपराज ने अपनी पीठ के मध्य भाग पर धारण कर रक्खा है; किन्तु समुद्रने इन कच्छपराज को भी हलकीसी चीज़ समझ कर अपनी गोद में रख छोड़ा है। इस से प्रत्यक्ष है, कि बड़ों के चरित्र की विभूति की कोई सीमा नहीं है।

चौदह लोकों को अपने फण पर धारण करने में शेष जी को बोझा नहीं लगता, यह बड़े ही आश्चर्य की बात है! इससे भी अधिक विस्मय की यह बात है, कि कच्छप-राजने चौदहों लोक समेत शेषनाग * को भी अपनी पीठ पर धारण कर रक्खा है और उन्हें भार नहीं लगता! जब यह देखते हैं, कि समुद्र ने चोदहों लोक, शेषनाग और कच्छप इन सब को मामूली सी— अत्यन्त हलकीसी—चीज़ समझकर, अनादर से, अपनी गोद में रख रक्खा है, तब तो आश्चर्य की सीमा ही नहीं रहती!! तात्पर्य्य यह कि बड़ोंको सामर्थ्य की हद नहीं, वे जो करें वही थोड़ा है।

---

* हमारे पुराणों में लिखा हुआ है, कि यह पृथ्वी शेषनाग के फणों पर ठहरी हुई है। शेषनाग कच्छपराज की पीठ पर स्थित हैं। कच्छपराज बैल के सींग पर हैं इत्यादि। पर असल में यह बात नहीं है; पृथ्वी सूर्य की आकर्षण-शक्ति से ठहरी हुई है। ऊपर की बात बड़ों की महिमा दिखाने के लिये कही गई है।

वृन्द ने बड़ों की महिमाके सम्बन्ध में खूब कहा है—

बड़े जो चाहें सो करैं, करन मतो उर धारि ।
बड़े भार ले निरवहें, तजत न खेद विचारि ।।
बड़े भार ले निरवहें, तजत न खेद विचार।
शेष धरा धरि धर धरै, अब लों देत न डार ॥

छप्पय-धर्‌यो धराकों शीश, शेष अति कर्‌यो पराक्रम ।
शेष सहित सब भूमि, कमठ धर रह्यौ विनाश्रम ॥
कमठ शेष अरु भूमिभार, वाराह रह्यौ धर ।
इन सबहिन कौ भार, एक जलके आश्रितकर ॥
इक इकसों विक्रम अधिक ही, करत बड़े अद्भुत सुकृति ।
तिनके चरित्र सीमा रहित, अति विचित्र राखत सुवृति ॥३५॥

3b The Shesha (serpent) lifts the fourteen worlds on its hood. It is (in its turn) borne by the great tortoise on th m d[?] art of back. The tortoise again is subjected to . dependent position to the Great Boar by the Ocean through malice. Oh, how endless are the forms of behaviour displayed by the great !

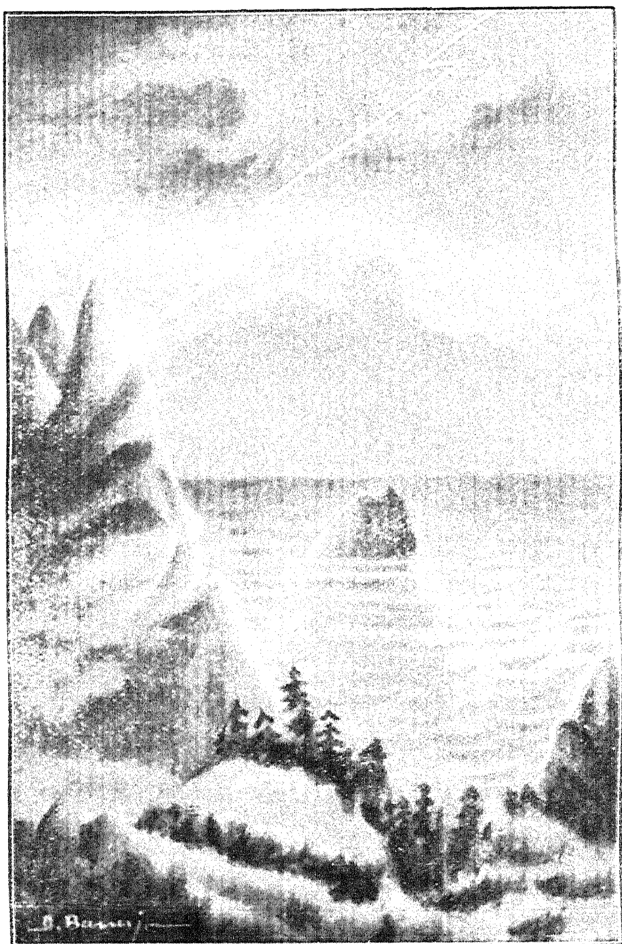
वरं पक्षच्छेदः समदमघवन्मुक्तकुलिश-
प्रहारैरुद्गच्छद्बहलदहनोद्गारगुरुभि ॥
तुषाराद्रे सूनोरहह पितरि क्लेशविवशे
न चासौ संपातः पयसि पयसां पत्युरुचितः ॥३६॥

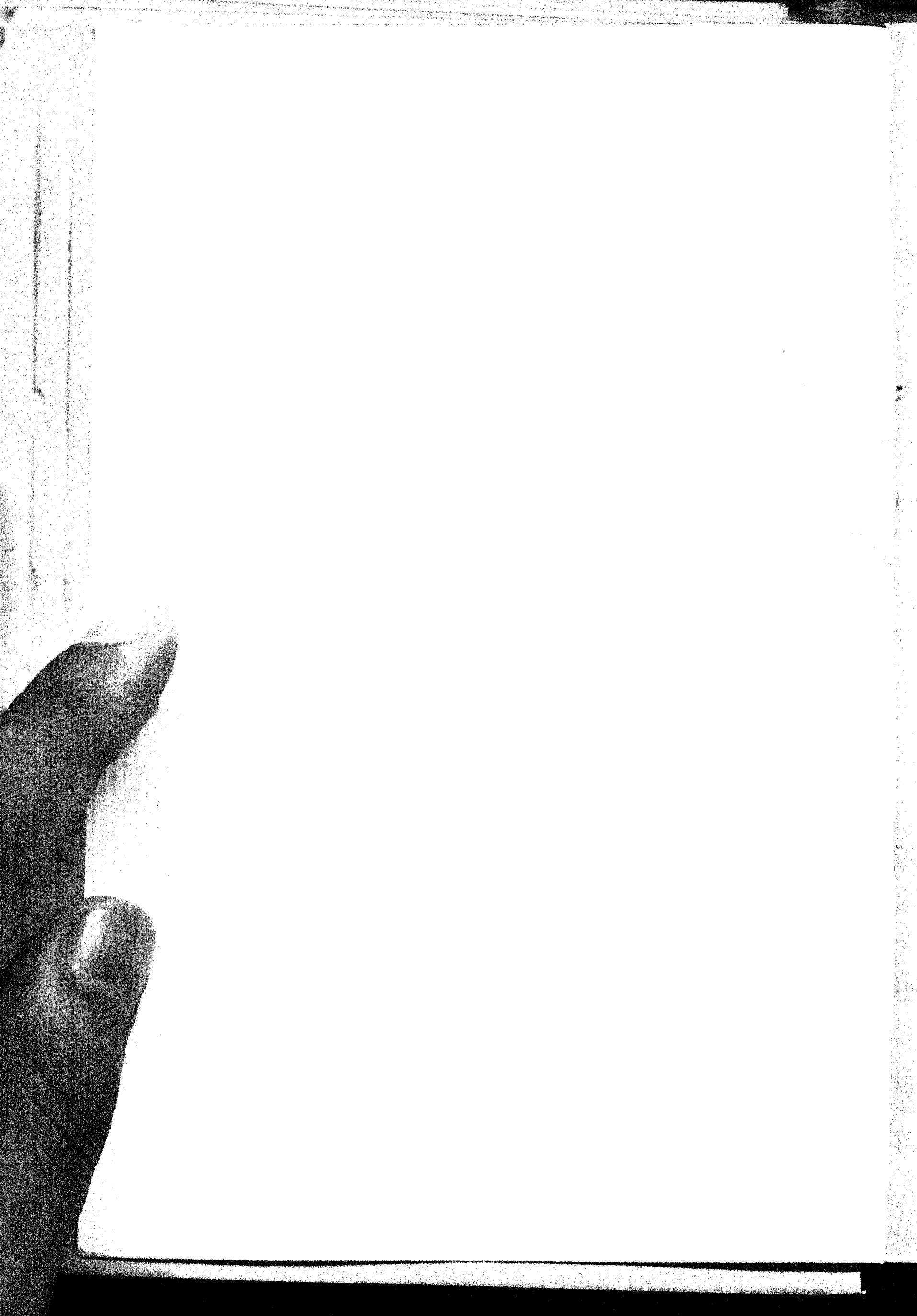
हिमालय-पुत्र मैनाक ने पिता को सङ्कट में छोड़ कर, अपनी रक्षा के लिये, समुद्र की शरण ली—यह काम उसने अच्छा नहीं किया। इस से तो यही अच्छा होता, कि मैनाक स्वयँ भी मदोन्मत्त इन्द्र के अग्निज्वाला उगलने वाले वज्र से अपने भी पंख कटवा लेता।

हिमालय की स्त्री का नाम मेनका था। उससे एक पुत्र हुआ; उसका नाम मैनाक रखा गया। उस ज़माने में पहाड़ों के पंख होते थे। उन पंखों से पहाड़ उड़ते फिरते थे और बिना किसी विचार के चाहे जहाँ पड़कर मनुष्योंका संहार करते थे। इससे पृथ्वी-निवासी अतीव भयभीत हुए; तब इन्द्र ने मनुष्यों की रक्षा के लिये पर्वतों के पंख काटनेको अपना वज्र छोड़ा। उस समय मैनाक अपने पिता हिमालय को सङ्कट में छोड़ कर समुद्र से मैत्री करके उसमें जा छिपा और इस तरह अपने तईं इन्द्रवज्रके कष्ट से बचा लिया। वहाँ जाकर उसने नागकन्याओं से शादी करली।

असूत सा नागवधूपभोग्यं
मैनाकम्भोनिधिबद्ध सख्यम्।
क्रुद्धेपि पक्षच्छिदि वृत्रशत्रा—
ववेदनाज्ञं कुलिशक्षतानाम्॥ कुमार सम्भव प्र० सर्ग।

मेनकाने नागवधुओं को व्याहने वाले, समुद्र के साथ सख्य सूत्र में आवद्ध एवं पंख काटने वाले इन्द्र के क्रुद्ध होनेपर भी वज्रप्रहारजनित वेदना से अनुभव विहीन—मैनाक को जना।





पिता को कष्ट में छोड़ कर, अपनी प्राणरक्षा के लिये, मैनाक का समुद्र में जा छिपना और वहाँ आनन्द करना अच्छा काम नहीं हुआ। जो माता-पिता जन्म दें, जो पुत्र के पालन-पोषण में असीम कष्ट सहन करें, उन्हें विपद् के मुख में छोड़ कर अन्यत्र भाग जाना बड़ी बुरी बात है। ऐसे लोगों को संसार निन्दा करता है। यह काम मानियों के योग्य नहीं।

सुख और दुःख दोनों में मनुष्य को अपनों के साथ रहना चाहिये, जो सम्पदमें साथ रहते हैं और विपद् में किनारा कस जाते हैं, वे नीच हैं।

कुण्डलिया–हिमगिरि सिर धुनके कहै, कहा कियो मैनाक।
सहिवौ हो निज शीसपै, इन्द्रवज्र परिपाक॥
इन्द्रवज्र परिपाक, अग्निज्वाला में जरिवौ।
नीकौ हो सब भांति, उहाँ सन्मुख ह्वै मरिवौ॥
दुरयो सिन्धु के माँहि, कहौ कौलों ह्वै है थिर।
निलज लजायो मोहि, पिता नहिं जान्यो हिमगिरि॥३६॥

It would have been better for the Main aka mountain if its wings had been chopped off by the hard blows given by the excited god Indra with his thunderbolt like so many hideous sparks of blazing fire. But its action of falling

into the water of the Ocean (saving itself from danger), taking no heed of its father, the Himalaya, while the latter was in the grip of distress, was rather disgraceful.

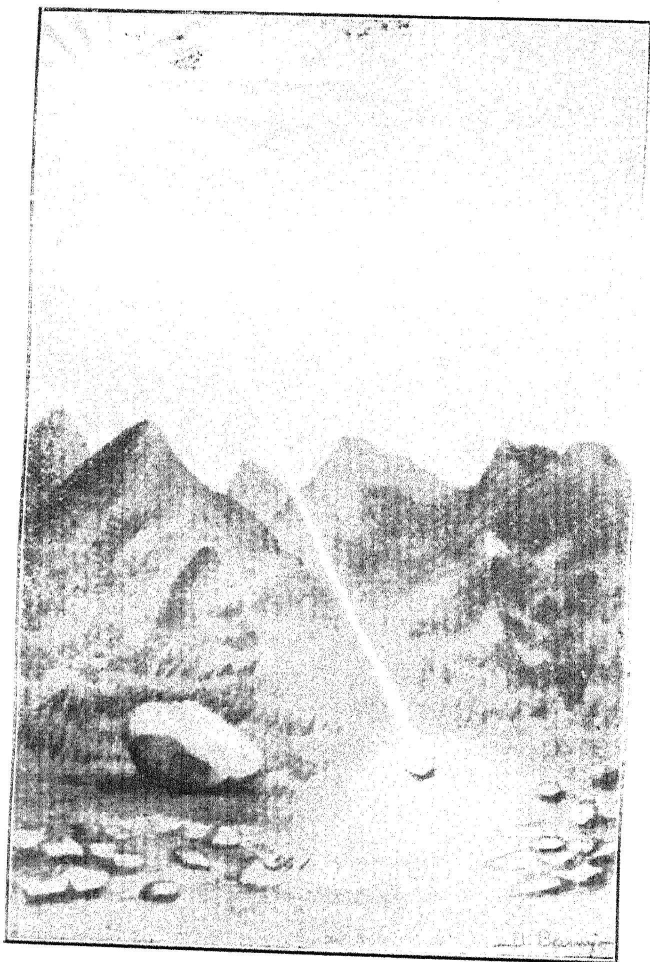
यदचेतनोऽपि पादैःस्पृष्टः प्रज्वलति सवितुरिनकांतः ॥
तत्तेजस्वी पुरुषः परकृतविकृतिं कथं सहते ॥ ३७ ॥

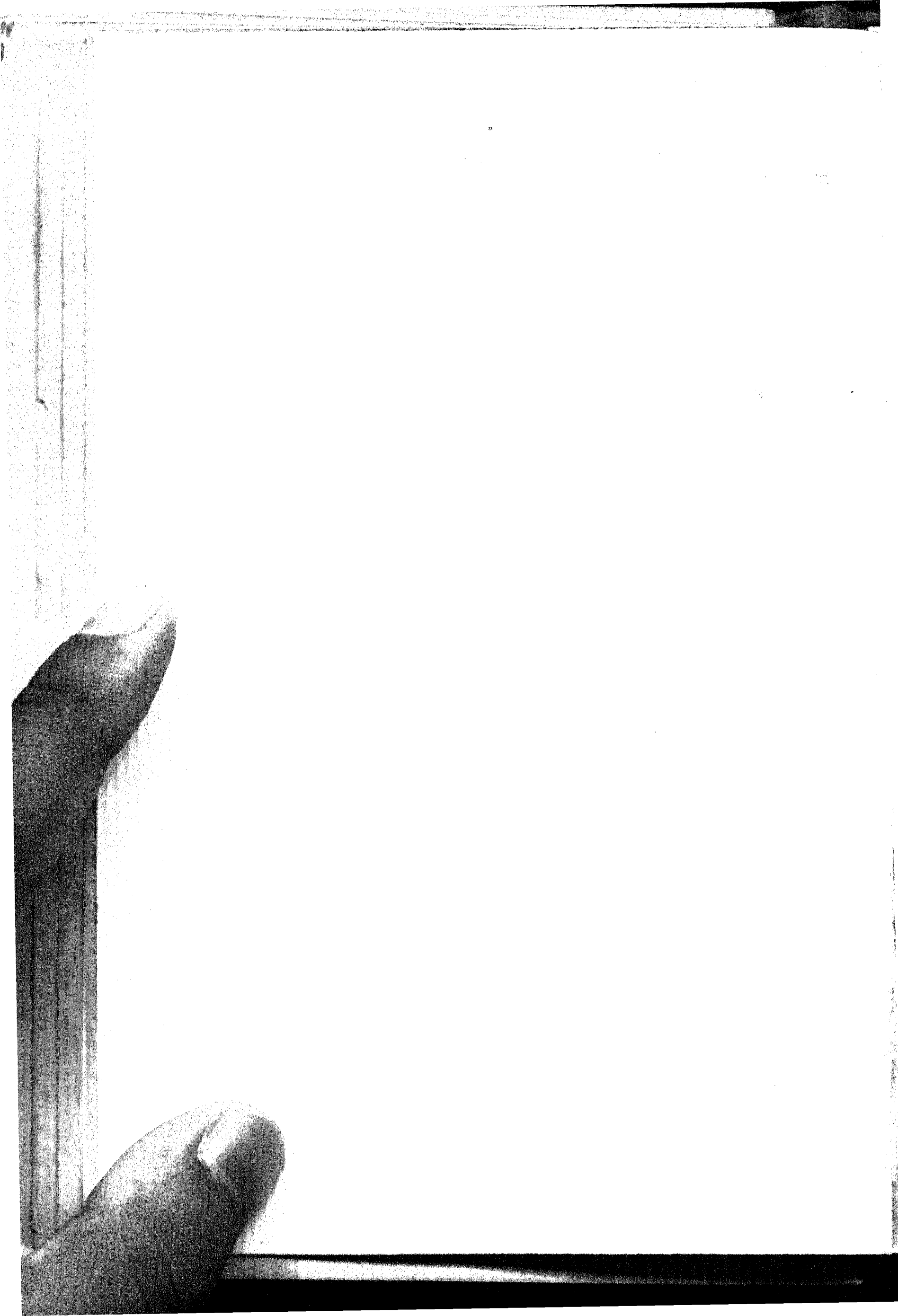
जब चेतना-रहित सूर्यकान्त-मणि भी सूर्य-किरण-रूप पैरों के लगने से जल उठती है, तब चेतना-सहित तेजस्वी पुरुष परका किया अपमान कैसे सह सकते हैं ?

सूर्यकान्त मणि बेजान चीज़ है, पर वह भी सूर्य के किरण-रूपी पैरों के लगने से अपने तईं अपमानित समझ कर मारे क्रोध के जल उठती है, तब जानदार तेजस्वी पुरुष दूसरों के किये अपमान को कैसे सह सकते हैं ? अर्थात नहीं सह सकते। मानियों को अपमान से क्रोध आये बिना नहीं रह सकता। उन्हें अपमान मृत्यु-यन्त्रणा से भी अधिक भयङ्कर यन्त्रणादायक बोध होता है। चन्दनका स्वभाव शीतल है, पर घिसने से उसमें भी आग निकल आती है।

दोहा-बचन बाणसम श्रवण सुनु, सहत कौन रिस त्याग ?
सूरजपद परिहार तें, पाहन उगलत आग ॥३७॥

37 The Suryakanta stone, although lifeless, spits forth fire, if it is touched by the rays of the Sun as (it were touched) by his feet. Then how can a respectable man bear an indignity inflicted by others ?





सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ॥
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसो हेतुः ॥ ३८ ॥

सिंह चाहे छोटा बालक भी हो, तोभी वह मदसे मलीन कपोलों वाले उत्तम गज के मस्तक पर ही चोट करता है। यह तेजस्वियों का स्वभाव ही है। निस्सन्देह अवस्था तेज का कारण नहीं होती।

सिंह का बच्चा, नितान्त छोटा होने पर भी, मदोन्मत्त हाथी के गंडस्थलों पर ही चोट करता है; यह उसका स्वभाव है। अवस्था से तेज नहीं होता। शकुन्तला-पुत्र महाराज भरत, बाल्यावस्था में ही, हिमालय पर, सिंह के कान पकड़ कर उसके साथ खेला करते थे। स्वयं उनके पिता दुष्यन्त को बालक को देख कर बड़ा विस्मय हुआ था। उन्होंने कहा था—"यह निश्चय ही किसी महातेजस्वी सौभाग्यवान का पुत्र-रत्न है।" जब उन्हें मालूम हुआ कि, यह उनका ही पुत्र है, तब उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही। तेजस्वियों में शूरवीरता स्वभाव से ही होती है। कृष्णचन्द्र ने शिशु अवस्थामें ही पूतना जैसी विकराल राक्षसी के प्राणनाश किये। सात आठ साल की उम्र में तो उन्होंने अनेक महाबली राक्षसोंका निधन किया। कंस जैसे महाबलशाली को भी उन्होंने लड़कपन में ही हँसते-हँसते मार दिया। महात्मा बुद्धने ऐश आराम में पलने और अतीव कोमल होने पर भी

ऐसे नटखट घोड़े को अपने क़ाबू में कर लिया, जो बड़े-बड़े शहसवारों को अपनी पीठसे गेंद की तरह उछाल-उछाल कर नीचे फेंक देता था। सिकन्दर आज़म ने भी बालकपन में ऐसे ही एक घोड़े को अपने वश में कर लिया था, जिसे राज्य के नामी-नामी चाबुकसवार क़ाबू में न कर सके थे। उनके पिता फिलिप को पुत्र के इस अपूर्व कौशल से बड़ी प्रसन्नता हुई। कहाँ तक बतायें, ऐसे बहुत दृष्टान्त हैं। अभिमन्यु कोई बड़ी उम्र के न थे, पर उन्होंने वह पराक्रम दिखाया कि सात-सात महारथियों के दाँतों पसीने आगये। निस्सन्देह तेजस्वियों में शूरवीरता स्वभाव से ही होती है। इसमें अवस्था को हेतु मानना भूल है।

"पञ्चतन्त्र" में लिखा है ;—

> बालस्यापि रवेः पादाः पतन्त्युपरि भूभृताम् ।
> तेजसा सहजातानाँ, वयः कुत्रोपयुज्यते ॥

बालसूर्य की किरणें पर्वतों पर गिरती हैं। तेज के साथ पैदा होने वालों की अवस्था नहीं देखी जाती ।

हाथी इतना बड़ा जानवर है कि पहाड़ सा दिखता है। उसमें बल की भी कमी नहीं, पर वह ज़रा से अङ्कुश के वश में हो जाता है, क्या अङ्कुश हाथी के बराबर होता है? वज्र की चोट से पर्वत गिर पड़ते हैं; क्या वज्र पर्वत के समान है? दीपक के जलने से घोर अन्धकार नष्ट हो जाता

है; पर क्या दीपक अन्धकार के बराबर है ? जिस में तेज वही बलवान है। शरीर की मुटाई और अवस्था से कुछ नहीं होता।

दोहा-टूट सिंहशिशु करि निकर, विचलावै छण माहिं।
तेजवान की प्रकृति यह, तेज हेतु वय नाहिं ॥३८॥

38 Even the cub of a lion falls on the elephants the upper parts of whose trunks are besmeared with *mada* (fluid). It is the nature of the high-spirited and not their age tht is the cause of their boldness and courage.

धन-महिमा।

जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छता-
च्छीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना ॥
शौर्य्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाःसमस्ता इमे ॥ ३९ ॥

यदि जाति पाताल को चली जाय, सारे गुण पाताल से भी नीचे चले जायँ, शील पर्वत से गिरकर नष्ट हो जाय, स्वजन अग्नि में जल कर भस्म हो जायँ और वैरिन शूरता पर शीघ्र ही वज्रपात हो जाय— तो कोई हर्ज नहीं; लेकिन हमारा धन नष्ट न हो; हमें तो केवल धन चाहिये; क्योंकि

धनके बिना मनुष्य के सारे ही गुण तिनके की तरह निकम्मे हैं।

कोई अनुभवी पुरुष कहता है,—मनुष्यकी ज़ात-पाँत, उत्तमोत्तम गुण, सुशीलता और शूरवीरता प्रभृति नष्ट हो जायँ तो ज़रा भी हर्ज नहीं—उन सब के नष्ट होने से कोई भी हानि नहीं। सब नष्ट हों, पर एकमात्र धन नष्ट न हो; क्योंकि धनवान में यदि ये सब गुण न भी हों, तोभी लोग उसकी पूजा करते हैं, और निर्धन में ये सब गुण हों तोभी लोग उसका आदर नहीं करते। धन बिना सभी गुण निकम्मे हैं। संसार में धन सर्व्वोपरि गुण है। धन से ही गुणोंकी शोभा है। जिस तरह पदार्थों में सूर्य्य से प्रकाश आता है, उसी तरह लक्ष्मी से गुण प्रकाशित होते हैं।

जिसके पास धन है, वह नीच-से-नीच कुलोत्पन्न क्यों न हो, उसको सभी पूजते हैं—सभी उसका सन्मान करते हैं। निर्धन ने चाहे जैसे उत्तम कुल में जन्म लिया हो, पर उसकी ओर लोग देखते तक नहीं। धनवान ब्रह्महत्यारे की भी लोग पूजा करते हैं। निर्धन चाहे चन्द्रमाके समान उज्ज्वल वंशमें पैदा हुआ हो, तोभी उसका तिरस्कार ही करते हैं।

मनुष्य चाहे कृपण हो, नीचकुलोत्पन्न हो, सज्जनों ने चाहे उसके पास जाने और उसकी सेवा आदि करनेकी मनाही करदी हो—पर यदि उसके पास धन हो, तो लोग इन सब बातों की

परवा न करके भी उसके पास जाते और उसकी सेवा करते हैं !

लोग उत्तम कुलमें पैदा हुए, चतुर और सज्जन निर्धनको त्याग कर, नीच कुल में पैदा हुए, महामूर्ख दुर्जन से भी कल्पवृक्ष की तरह अनुराग करते हैं ।

इस लोक में धन होने से ग़ैर भी अपने हो जाते हैं और निर्धन होने पर अपने नज़दीकी नाते-रिश्तेदार भी ग़ैर हो जाते हैं ।

निर्धन को जगत् में बड़ी ही दुर्गति है। निर्धन को स्त्री-पुत्र तक त्याग देते हैं; निर्धन का न कोई मित्र है न नातेदार; निर्धन के सारे ही काम बिगड़ जाते हैं—उसे किसी भी काम में सिद्धि नहीं मिलती, उसके उत्तम-से-उत्तम काम करने पर भी उसे यश नहीं मिलता ।

कहा है—

> स्वामीद्वेष्टि सुसेवितोऽपि, सहसा प्रोज्झन्ति सद्बान्धवा ।
> राजन्ते न गुणास्त्यजन्ति तनुजाः, स्फारी भवन्त्यापदः ॥
> भार्य्या साधु सुवंशजापि भजने नो यान्ति मित्राणि च ।
> न्यायारोपित विक्रमाण्यपि नृणां येषां नहि स्याद्धनम् ॥

उत्तम सेवा करने पर भी, धनहीन सेवक का स्वामी आदर नहीं करता; उसके अच्छे-अच्छे बन्धुबान्धव उसे त्याग देते हैं; उसकी आपदायें बढ़ जाती है; अच्छे कुलमें

पैदा हुई भार्य्या भी उसे प्यार नहीं करती और नीति-मार्ग से पुरुषकार द्वारा प्राप्त हुए मित्र भी उसके पास नहीं जाते।

निर्धनता शरीरधारियों को परम दुखदायिनि और उनका क़दम-क़दम पर अपमान कराने वाली है। निर्धनता की वजह से, निर्धन मनुष्य के बन्धुबान्धव निर्धनको जीवितावस्था में ही मृतक समझते हैं। जिस के पास कौड़ी नहीं होती, उससे उसके निकट-सम्बन्धी भी लजाते हैं और उससे अपना सम्बन्ध—रिश्ता छिपाते हैं। बहुत क्या, जिसके पास कौड़ी नहीं होती, उस के गाढ़े मित्र भी उसके शत्रु हो जाते हैं।

शरीरधारियों को निर्धनता दरिद्र की मूर्त्ति और आफ़तों का घर है। सच तो यह है, "मरण" का ही दूसरा नाम "निर्धनता" है।

दरिद्र मनुष्य यदि कुछ देने की इच्छा से भी किसी धनी के घर जाता है, तो धनी और उसके घर वाले मनमें यही समझते हैं कि, यह कुछ माँगने आया है; इसलिये उससे बैठने को भी नहीं कहते; अत: निर्धनता को धिक्कार है!

जिस तरह काक-जौ और वन-तिल निकम्मे समझे जाते हैं; उसी तरह धनहीन भी निकम्मा समझा जाता है।

बिना दाढ़ का साँप और बिना मद का हाथी जिस तरह

निकम्मा होता है ; उसी तरह बिना धनका पुरुष भी निकम्मा होता है ।

जिस के पुत्र और सुमित्र नहीं उसका घर सूना है ; मूर्ख की सब दिशाएँ सूनी हैं और दरिद्र का तो सभी सूना है ।

ऐसा कोई काम नहीं, जो धन से सिद्ध न होता हो; धन से स्वर्ग में भी सीढ़ी लग जाती है । निर्गुण धनी गुणी समझा जाता है ; नीच धनी उत्तमवंशज समझा जाता है ; दुश्च-रित्र धनी सच्चरित्र समझा जाता है ; महाकायर धनी बड़ा भारी शूरवीर समझा जाता है ; इसीसे कहनेवाला कहता है—ज़ातपाँत रसातल को चली जाय; गुण रसातल से भी नीचे चले जायँ ; सुशीलता पर्वत से गिर कर चूरचूर हो जाय; स्वजन अग्नि में भस्म हो जायँ और शूरता पर वज्र गिरे तो हर्ज नहीं ; केवल हमारा धन नाश न हो, उसके आने की राहें खुली रहें ।

सारांश—संसार में धन ही सर्व्वोपरि और दूसरा परमेश्वर है । धनहीन मनुष्य प्राणहीन है ।

छप्पय-जाति रसातल जाहु, जाहु गुण ताहूके तर ।
परो शीलपर शैल, अग्नि में जरौ सुपरिकर ॥
शूरातनके शीश, बज्र वैरिन को बरसहु ।
एक द्रव्य बहु भाँति, रैन दिन घन ज्यों सरसहु ॥

जिहि विन सब गुण हैं तृणहिं सम, कछु कारज नहिं कर सकहिं ।
कञ्चन अधीन सबसौंज सुख, बिन कञ्चन अकबक बकहिं॥३९॥

39 Let (the superiority of) caste go to the devil ; let a host of good qualities find even a worse fate ; let good manners fall down from a mountain (and meet an unnatural death) ; let kinsmen be burnt (down) by fire ; let a thunderbolt soon fall over (the head of) chivalry ; ours are riches alone, without which all these good things are no better than a bit of straw.

तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव कर्म
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ॥
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥ ४० ॥

सारी इन्द्रियाँ वे की वेही हैं ; काम भी सब वैसे ही हैं ; परन्तु एक धन की गरमी बिना वही पुरुष क्षणमात्र में और-का-और हो जाता है ; निस्सन्देह यह एक विचित्र बात है ।

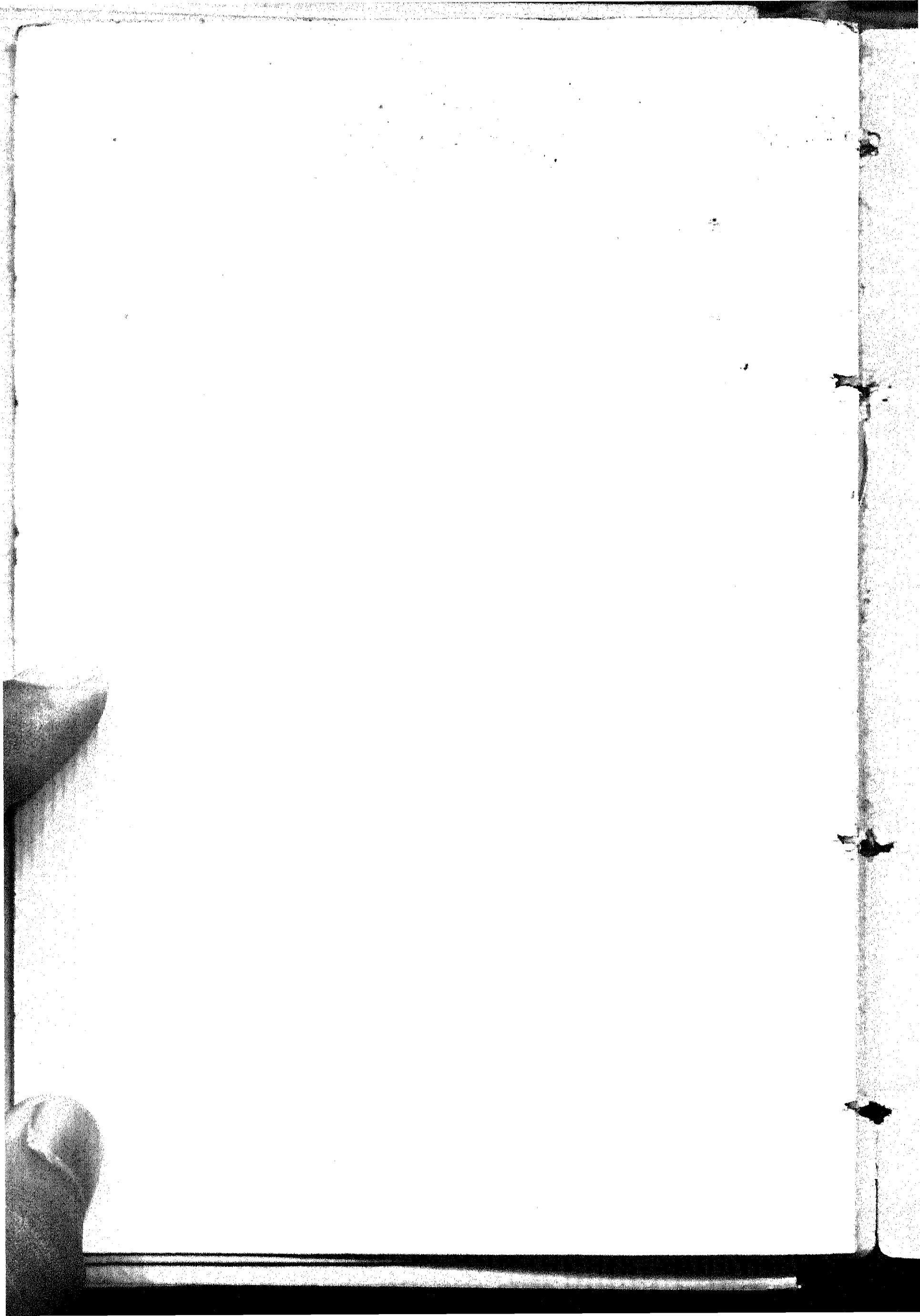
मनुष्य नहीं बदल जाता, केवल अवस्था बदल जाती है ; अवस्था के बदल जाने से ही मनुष्य और-का-और हो जाता है । धनावस्था में जिस मनुष्य के कर्म, बुद्धि और वचन-शक्ति की लोग भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं ; निर्धनावस्था होतेही उसी





[illegible] हो जाता है।

(पृष्ठ १८६)



मनुष्य के उन्हीं कर्म, बुद्धि और वचनशक्ति की लोग घोर निन्दा करने लगते हैं।

धनावस्था में मनुष्य के नाक कान नेत्र प्रभृति जो इन्द्रियाँ होती हैं, निर्धनावस्था में भी वे सब ज्यों-की-त्यों, जहाँ-की-तहाँ और जैसी-की-तैसी बनी रहती हैं। धनावस्था में वह जैसी बातें करता है, वैसी ही निर्धनावस्था में भी करता है; धनावस्था में वह जैसे कर्म करता है, वैसे ही कर्म वह निर्धनावस्था में भी करता है; धनावस्था में वह जैसी अक्ल की तेज़ी दिखाता है, वैसी ही तेज़ी वह निर्धनावस्था में भी दिखाता है; अर्थात् निर्धनावस्था में उसी मनुष्य की वे ही सब शक्तियाँ—विचारशक्ति, वचनचातुरी और काम करने की शक्ति कम नहीं हो जाती हैं—ज्यों की त्यों रहती हैं; पर लोगों को निर्धनावस्था में वही मनुष्य इन सब से हीन मालूम होता हैं; यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है। बात यह है कि, मनुष्यके पाससे धन का निकल जाना वैसा ही है; जैसा कि शरीर से प्राण का निकल जाना। प्राणहीन देह को जिस तरह मनुष्य निकम्मी समझते हैं; उसी तरह धनहीन मनुष्य को भी निकम्मा समझते हैं।

कहा है—

> दौर्गत्यं देहिनां, दुःखमपमानकरं परम्।
> येन स्वैरपि मन्यते, जीवन्तोऽपि मृता इव ॥

निर्धनता मनुष्य का घोर दुःख और अपमान करानेवाली

है। निर्धन के भाई-बन्धु निर्धन को जीवित अवस्था में ही मुर्दे की तरह समझते हैं।

दोहा—वै इन्द्री वै कर्म हैं, वही बुद्धि वही ठौर।
धनविहीन नर छणहि में, होत औरतें और ॥४०॥

40 All his senses remain the same; the same are his actions, his unfaltering reason as well as his speech; even the individual is the same, but it is strange that, destitute of the pride of wealth, in a moment he looks like another man.

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतवान्गुणज्ञः ॥
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥ ४१ ॥

जिसके पास धन है, वही कुलीन, पण्डित, शास्त्रज्ञ, वक्ता और दर्शनीय है। इससे सिद्ध हुआ कि, सारे गुण धनमें ही हैं।

जिसके पास धन है, वह अकुलीन होने पर भी कुलीन, अपण्डित होने पर भी पण्डित, अशास्त्रज्ञ होने पर भी शास्त्रज्ञ, बोलना न जानने पर भी सुवक्ता और कुरूप होने पर भी देखने-योग्य खूबसूरत है।

कहा है—

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि
यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमांल्लोके
यस्यार्थाः स हि पण्डितः ॥

...❋...

शूरः सुरूपः सुभगश्च वाग्मी
शस्त्राणि शास्त्राणि विदां करोति ।
अर्थं विना नैव यशश्च मानं
प्राप्नोति मर्त्योऽत्र मनुष्य लोके ॥

जिसके पास धन है उसके मित्र ; जिसके पास धन है, उसीके बन्धु-बान्धव हैं ; जिसके पास धन है, संसार में वही पुरुष है ; जिसके पास धन है, वही पण्डित है ।

शूरवीर, रूपवान्, सुन्दर, वाचाल, शस्त्रविद्या और शास्त्र-विद्या जानने वाला मनुष्य भी, इस लोकमें, धन-बिना यश और मान नहीं पाता ; अर्थात धनहीन में इन गुणोंका होना न होने के ही समान है ।

और भी कहा है—

पूज्यते यदपूज्योऽपि, यदगम्योऽपि गम्यते ।
वन्द्यते यदवन्द्योपि, स प्रभावो धनस्य च ॥

धनवान यदि पूजा करने योग्य नहीं होता, तोभी लोग

उसकी पूजा करते हैं ; धनवान यदि पास जाने लायक़ भी नहीं होता, तोभी लोग उसके पास जाते हैं और धनवान यदि प्रणाम करने योग्य नहीं होता,, तोभी लोग उसे प्रणाम करते हैं। यह सब धनकी माया है।

भोजनसे जिस तरह इन्द्रियों में सामर्थ्य आती है, उसके बलसे वे सब कामों में समर्थ होती हैं ; उसी तरह धन से संसारके सब काम होते हैं। संसार में पैसाही हर्ता, कर्ता और विधाता है—पैसाही माता, पिता और मित्र हैं; बहुत क्या, पैसाही परमात्मा है। लूथर महाशय कहते हैं—

The God of this world is riches, pleasure, and pride.

इस संसारका खुदा धन, सुख और ग़रूर है।

सचमुच, धन में ही सारे गुण हैं। धन से ही मनुष्य मनुष्य है; धन बिना मनुष्य मृतक है। धनहीन का मर जाना या बनमें रहना भला, क्योंकि धनहीन का कोई भी आदर नहीं करता। और तो क्या, सगी माँ बाप और स्त्री तक धन-हीन को नफ़रत की नज़र से देखते हैं। इसीलिये समझदार लोग जब उद्योग करने पर भी धन को प्राप्त नहीं कर सकते—सब कुछ करके थक जाते हैं, तब अपमान के भय से बनमें चले जाते हैं—

कहा है:—

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्र सेवितम्।

द्रुमालयः पक्व फलाम्बु भोजनम्॥

तृणानि शय्या परिधान वल्कलम्
न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥

सिंह व्याघ्रादि वाले वनमें पेड़ के नीचे बसना, पकी-पकी फल खाना, जल पीना और घास की शय्या पर सोना भला; पर भाई-बन्धुओं के बीच में निर्धन होकर रहना भला नहीं।

और भी कहा है—

यात्र देशेऽथवा स्थाने भोगान्भुक्त्वा स्ववीर्य्यतः।
तस्मिन् विभवहीनो यो वसेत्स पुरुषाधमः ॥

जिस देश या जिस स्थान में अपने पराक्रमसे अनेक भोग भोगे हों, उसी स्थान में जो धनेश्वर्य्यहीन होकर रहता है, वह नीच है।

धन से ही मनुष्य में मान, दर्प, विज्ञान, विलास और बुद्धि प्रभृति होते हैं और धन के साथ ही ये सब नष्ट हो जाते हैं। बुद्धि प्रभृति रहें कहाँ से ? कुटुम्बके भरण-पोषण की चिन्ता इन सब को नष्ट कर देती है। धन के नाश होने पर निश्चय ही मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है। उसे रात-दिन घी, तेल, नमक, चाँवल, कपड़े और ईंधन की चिन्ता लगी रहती है। जब बुद्धि ही नष्ट हो गई, तब मनुष्य में रहा ही क्या ? वह तो बिना पतवार की नाव हो गई। इस लिये जीवन का बेड़ा पार करने के लिये मनुष्य को धन

अवश्य ही संग्रह करना चाहिये। धन बिना धर्म भी नहीं होता। धर्म और अर्थ आपस में एक दूसरे की पुष्टि करते हैं। अर्थ—धन द्वारा धर्म अर्जित होता है। धन प्राप्त होने पर या इन्द्रियों के तृप्त होने पर जो सुख मिलता है, उसे 'काम' कहते हैं। मनुष्य सुखसेव्य द्रव्य के भोगसे जिस प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं, वही कामका फल है। उसके उपयोग से वञ्चित होने पर मानव जन्म निष्फल हो जाता है। अर्थ और कामके त्रिवर्ग में परिगणित होने से—धर्म, अर्थ- और काम—इन त्रिवर्ग के प्रति समान यत्न करना पड़ता है। मनुष्य को दिन के पहले भागमें धर्माचरण, दूसरे भागमें अर्थ सञ्चय और तीसरे भाग में कामानुशीलन करना चाहिये। जो यथासमय त्रिवर्ग साधन करते हैं, वे धर्मतत्वके जानने वाले पण्डित हैं। धन बिना धर्म और काम की प्राप्ति में बाधा पड़ती है; इसलिये धनोपार्ज्जन अवश्य ही करना चाहिये और साथ ही सञ्चित धनकी रक्षा करनी चाहिये* । धन से स्वयं सुख भोगने चाहियें और उसे सत्पात्रों को देकर पुण्य सञ्चय करना चाहिये। धन की गर्मी मनुष्य के तेज को बढ़ाती है और यदि उसका भोग और त्याग हो, तब तो कहना ही क्या?

---

* लक्ष्मी कैसे आती है, किनके पास आती है और लक्ष्मी प्राप्त करने के लिये मनुष्य को क्या करना चाहिये—ये सब बातें हमने विस्तार-पूर्वक इसी पुस्तक के ८६ वें श्लोक के नीचे लिखी हैं।

दोहा—सोइ पंडित वक्ता गुणी, दर्शन योग कुलीन ।
जाके ढिग लक्ष्मी अहै, सब गुण तिहिं आधीन ॥४१॥

41. That man is nobly born and he is wise as well as qualified and he is to be considered a good speaker as well as a personage fit to be seen, who has wealth. All the good qualities rest in the possession of gold.

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः सङ्गात्सुतो लालना-
द्विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात् ॥
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयान्मैत्री
चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्त्यागात्प्रमादाद्धनम् ॥ ४२ ॥

दुष्ट मन्त्री से राजा, संसारियों की सङ्गत से संन्यासी, लाड़ से पुत्र, न पढ़ने से ब्राह्मण, कुपुत्र से कुल, खलकी सेवासे शील, मदिरा पीने से लज्जा, देख-भाल न करने से खेती, विदेश में रहने से स्नेह, प्रीति न करने से मित्रता, अनीति से सम्पत्ति और अन्धाधुन्ध खर्च करने से धन नष्ट हो जाता है ।

जो मन्त्री दिलसे राजा का भला चाहता है, समय पर राजा को उचित सलाह देता है, राजा के धन को स्वयं नहीं हड़पता, रिश्वत नहीं खाता, व्यसन और व्यभिचार से परहेज़ करता है, प्रजा को सन्तुष्ट करके राजा का धन बढ़ाता है, स्वार्थसाधन के लिये राजा को कुपथ पर नहीं चलाता; बल्कि

हो गया है। वह एक रेशमी मसनदके सहारे लेटा हुआ है और एक परीज़ाद सा उसके पीछे खड़ा मोरछल कर रहा है। कुछ बातचीतके बाद बादशाह ने कहा—'मुझे विद्वान् और एकान्तवासी संन्यासी अच्छे लगते हैं।' एक अनुभवी और समझदार मन्त्रीने कहा,—'हुज़ूर ! आप विद्वानोंको धन दें, जिससे और लोग भी विद्वान् बनें और संसारत्यागी संन्यासियोंको कुछ भी न दें, जिससे उनकी विरक्ति बनी रहे।' बादशाह बुद्धिमान मन्त्रीकी बातसे खुश हुआ और अपने किये पर पछताया।"

उन अमीरोंको जो साधुओंको बुलाकर मख़मली गद्दे-तकियोंपर बिठाते हैं, उन्हें उत्तमोत्तम षटरस भोजन कराते हैं, मोटरों और बग्गियोंमें हवा खिलाते हैं; युवतियोंको उनकी सेवामें नियुक्त करते हैं—इस कहानीसे सबक़ सीखना चाहिये और वैरागियोंको तो इससे खूबही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। उन्हें खूब ख़याल करना चाहिये कि, इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं। ये सदा मनुष्यको विषयों की ओर खींचकर ले जाने की चेष्टा किया करती है। विश्वामित्र जैसे तपस्वी मेनकाके रूपजालमें फँसकर तप भङ्ग कर बैठे; शङ्कर जैसे योगीश्वर मोहिनीकी रूपच्छटा पर मुग्ध होकर अपनी अक़्ल खो बैठे और पराशर नावमें ही नाविककी कन्या पर लट्टू हो गये। जब ऐसे-ऐसे जितेन्द्रियोंके दिल मोहिनियों की मोह-पाशमें फँस गये,

तब साधारण साधु-संन्यासी किस बाड़ीके बथुए हैं ? कहा है:—

तीव्र तपसमें लीन, नहिं कर इन्द्रिय विश्वास ।
विश्वामित्र जु मेनका, कण्ठ लगाइ हुलास ॥

गिरिधर कविराय भी कहते हैं:—

रहनो सदा एकान्त को, पुनि भजनो भगवन्त ।
कथन श्रवण अद्वैतको, यही मतो है सन्त ॥
यही मतो है सन्त, तत्वको चितवन करनो ।
प्रत्यक ब्रह्म अभिन्न सदा उर अन्तर धरनो ॥
कह गिरिधर कविराय, वचन दुर्जन को सहनो ।
तजके जन-समुदाय, देश निर्जन में रहनो ॥
बहता पानी निर्मला, पड़ा गन्ध सो होय ।
त्यों साधु रमता भला, दाग न लागे कोय ॥
दाग न लागै कोय, जगतमें रहै अकेला ।
राग द्वेष युत प्रेत, न चित्तको करै विछेदा ॥
कह गिरिधर कविराय, शीत उष्णादिक सहता ।
होइ न कहुँ आसक्त, यथा गंगा जल बहता ॥

लाड़ या दुलारसे पुत्र निस्सन्देह ख़राब हो जाता है । अनेक लोग बचपनमें अपने लड़कों का इतना लाड़ करते हैं, कि उसकी हद नहीं । लड़के नीचों की सङ्गतिमें रहने लगते हैं, तो उन्हें मना नहीं करते । वे जूआ खेलते, सिगरेट-तम्बाकू पीते,

वेश्याओं में जाते हैं, तोभी चुप्पी साध जाते हैं । पीछे वही लड़के जब बड़े हो जाते है, तब माता-पिता का कलेजा जलाते हैं । उस वक्त क्या हो सकता है ? बड़े होनेपर, वे एक नहीं सुनते । बाज़े-बाज़े तो अपने जनक जननी परही हाथ तक उठाने लगते है । विद्वानों ने कहा है—"मिट्टीके कच्चे घड़ेपर जैसे निशान बनाइये बन जायँगे, पर पक्के घड़ेपर निशान नहीं हो सकते । हरी लकड़ी को चाहे जितना मोड़ लीजिये, वह मुड़ जायेगी; सूखनेपर वह नहीं मुड़ सकती ।" जिसका बचपनमें लाड़ किया जाता है—सत् शिक्षा नहीं दी जाती, वह बड़ा होनेपर गुणवान् और शीलवान् नहीं होता । इस-लिये कहा है:—

लालने बहुवो दोषाः, ताड़ने बहुवो गुणाः ।
तस्मात् पुत्रंच शिष्यंच, ताडयेत् न तु लालयेत् ॥

लाड़ करनेमें बहुतसे दोष है; ताड़ना करनेमें बहुतसे गुण हैं; इसलिये पुत्र और शिष्यको ताड़ना देनी चाहिये, लाड़ न करना चाहिये । गुलिस्ताँमें भी कहा है—

वर सरे लौह ओ नविश्तः बजर ।
ज़ोरे उस्ताद बह, जे मेहरे पिदर ।

यह बात सोनेके अक्षरोंमें लिखी जाने योग्य है; कि माँ-बापके लाड़से शिक्षककी ताड़ना अच्छी है; पर ताड़नाका यह मतलब नहीं, कि लड़के डण्डोंसे पीटे जावें । मारने

पीटनेसे लड़के अकसर ख़राब होते देखे जाते हैं। आँखोंसे जो काम होता है, वह डण्डेसे नहीं होता।

ब्राह्मणका सबसे पहला काम ब्रह्मचर्य्य व्रत रखकर विद्या पढ़ना है; जो ब्राह्मण विद्याऽध्ययन नहीं करता, वह निस्सन्देह नष्ट हो जाता है। पर आजकल अधिकांश ब्राह्मणसन्तान रोटियाँ पकाने, पानी भरने, दरवानी करने या अन्यान्य सेवा-वृत्ति करके जीवन-निर्वाह करनेमें ही अपने कर्त्तव्यकी इति-श्री समझते हैं। आजकल बहुतसे ब्राह्मण अपने मनमें इस बातको समझ बैठे हैं, कि हम मन्वादिक स्मृतिकारों की आज्ञा पालन करें चाहे न करें, हम वेदोंका पठन-पाठन और यज्ञ-हवनादि कर्म करें चाहे न करें, हमें हमारे ब्राह्मणत्व-पदसे कोई उतार नहीं सकता। हम चाहे परले सिरे के अज्ञानी, कुकर्मी, जूआचोर और व्यभिचारीही क्यों न हों—हैं हम ब्राह्मणके ब्राह्मण। पहले वेदके न जाननेवाले ब्राह्मणको लोग श्राद्ध तकमें निमन्त्रण न देते थे, अपढ़ ब्राह्मणसे कोई कर्मकाण्ड न कराते थे, क्योंकि शास्त्रकारों ने वेदके न जानने वालेका कराया हुआ श्राद्ध मृतकवत् कहा है; इसलिये ब्राह्मण लोग, कम-से-कम अपनी उपजीविकाके ख़यालसे, अवश्यही वेदपाठी होते थे। आजकल अधिकांश द्विवेदी त्रिवेदियों की सन्तान जमादारी करती, कम्पोज़िटरी करती या बसूला चलाती है। बहुसंख्यक चतुर्वेदियोंने तो माँगना खानाही अपना काम समझ लिया है। हम यह नहीं कहते कि, सभी ब्राह्मण

विद्वान् नहीं; विद्वान् भी होते हैं; पर जिन्हें विद्वान् कहना चाहिये, जिन्हें वेदके पूर्ण ज्ञाता कहना चाहिये, बड़ी कठिनतासे खोजने पर मिलते हैं। गुरुओंका अधःपतन होनेसे शिष्योंका भी अधःपतन हो रहा है। हमने ये पंक्तियाँ अपने गुरुओंकी निन्दा या हँसी करनेकी ग़रज़से नहीं लिखी हैं। हमारे अन्तरात्मामें वेदना होती है, हमें गुरुओंका अधःपतन खटकता है, इसीसे लिखी हैं।

प्राचीन समयमें ब्राह्मण आदि चारों वर्ण समझते थे, कि जाति—गुण और कर्मसे है—जन्मसे नहीं; इसीसे वे गुण सम्पादन करने की फिक्र करते थे और धर्मशास्त्र पर चलते थे। प्रत्येक वर्ण अपने-अपने कर्म करता था। जबसे यह डर मिटा; लोग समझने लगे कि, हम चाहे मिस्त्रीगीरी करें अथवा बावर्चीगीरी करें—रहेंगे वही जो हैं; अर्थात् ब्राह्मणकी सन्तान ब्राह्मण, क्षत्रियकी सन्तान क्षत्रिय और वैश्यकी सन्तान वैश्य ही कहलायेगी। संसारमें भयसेही काम होता है। दण्ड-भयसे ही जगत्में शान्ति है। अगर दण्ड-भय न हो, तो एक मनुष्य दूसरे की चटनी कर खाय।

शुक्राचार्य्य महाराज लिखते हैं—

> न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न।
> न शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिता गुणकर्मभिः॥
>
> ब्रह्मणस्तु समुत्पन्नाः सर्वे ते किं नु ब्राह्मणाः।
> न वर्णतो न जनकाद् ब्राह्म्यं तेजः प्रपद्यते॥

ज्ञान-कर्मोपासनाभिर्देवताराधने रतः ।
शान्तो दान्तो दयालुश्च ब्राह्मणश्च गुणैः कृतः ॥
इज्याध्ययन दानानि कर्माणि तु द्विजन्मनाम् ।
प्रतिग्रहो ध्यापनं च याजनं ब्राह्मणेधिकम् ॥
सर्वाधिको ब्राह्मणस्तु जायतेहि स्वकर्मणा ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और म्लेच्छ—ये सब जन्म से नहीं होते; किन्तु गुण और कर्म से होते हैं ।

यों तो सभी जीव ब्रह्मा से ही पैदा हुए हैं । क्या वे सभी ब्राह्मण हो सकते हैं? कभी नहीं । वर्ण और पिता से ब्रह्म-तेज की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

जो मनुष्य ज्ञान और कर्म से देवताओं की उपासना-आराधना में लगा रहता है एवं शान्त, जितेन्द्रिय और दयालु होता है,—वही ब्राह्मण होता है ।

यज्ञ करना, पढ़ना और दान देना,—ये द्विजातियों यानी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के कर्म हैं । दान लेना, यज्ञ करना और पढ़ाना—ये तीन कर्म ब्राह्मण के लिये अधिक हैं ।

ब्राह्मण अपने कर्म के कारण से ही सब से अधिक माना जाता है ।

अब अगर हम इन सब बातों की विस्तृत आलोचना करें, तो पचासों पृष्ठ इस एक ही विषय से काले हो जायँ । इस ग्रन्थ में इन बातों को इतना भी लिखना उचित नहीं;

और भी विस्तृत रूपसे लिखना तो और भी अनुचित होगा। पाठक स्वयं ऊपर की महात्मा शुक्राचार्य्य की कही हुई बातों पर विचार करें। इशारा हमने कर दिया है। कितने ब्राह्मण शान्त, जितेन्द्रिय और दयालुचित्त आपको नज़र आते हैं? कितने अपने कर्त्तव्य-कर्मों पर आरूढ़ दिखाई देते हैं? विचार करें कि क्रोध, अजितेन्द्रियता और अशान्तता का ठेका आजकल किसने ले रक्खा है? जिन भूदेवों से पहले बड़े-बड़े महीपाल थरथर काँपते थे, उनके स्वागत के लिये नगरद्वार तक जाते थे, उनकी आज की हालत देख कर हमारी काठ की क़लम भी रोती है, इसी से हमने ये पंक्तियाँ लिखी हैं। अगर यही दशा और सौ पचास वर्ष रही, तो क्या ब्राह्मण—वास्तविक ब्राह्मण—अमेरिका के रेड इण्डियनों की तरह दुष्प्राप्य और दुर्लभ न हो जायँगे? और जब गुरु न रहेंगे—उपदेशकों का अभाव हो जायगा, तब हम शिष्यों की और भी अधोगति न हो जायगी? हमारा तो यही कहना है—हमारे गुरु योगिराज भर्तृहरिके "विप्रोऽनध्ययनात् नश्यति" ब्राह्मण विद्या न पढ़ने से नष्ट हो जाते हैं—इस महोपदेश पर ध्यान धरें; तभी भारत का मंगल होगा। ब्राह्मण जाति ही भारत की उन्नति और अवनति की मूल-कारण है।

कपूत से कुल नष्ट हो जाता है,—इस बात को प्रायः सभी जानते हैं; तोभी दस पाँच पंक्तियाँ लिखने में हर्ज नहीं।

कपूत से न माता-पिता को सुख मिलता है, न बन्धु-बान्धवों का भला होता है। कपूत चोरी, अन्यायी, व्यभिचार, परस्त्री-हरण, गुण्डागीरी प्रभृति ऐसे-ऐसे कुकर्म करता है, जिनसे उसे स्वयं पिटना पड़ता और जेलकी हवा खानी पड़ती है; इससे माता-पिता का हृदय जलता और कुल में कालिमा लगती है। सपूत कुल को ऊँचा उठाता है और कपूत कुल को रसातल में पहुँचाता है। कौरवकुल को एक कपूत दुर्योधन ने नष्ट ही कर दिया। कहा है—

एकेन शुष्क वृक्षेण, दह्यमानेन वह्निना ।
दह्यते तद्वनंसर्वं, कुपुत्रेण कुलं यथा ॥

आग से जलता हुआ एक ही सूखा वृक्ष सारे वन को नष्ट कर देता है; उसी तरह एक कपूत से कुल नाश हो जाता है।

शेख़ सादी ने कहा है—

ज़नाने बारदार ऐ मर्द हुशियार ।
अगर वक़्ते विलाहत मार ज़ायेंद ॥
अज़ां बेहतर के नज़दीके ख़िरदमन्द ।
के फ़र्ज़न्दाने ना हमवार ज़ायेन्द ॥

कपूत जनने की अपेक्षा अगर जननी सर्प जने, तो बुद्धिमान उसको अच्छा समझता है।

हमारे यहाँ भी कहा है—

> वरं गर्भस्रावो, वरम् ऋतुषु नैवाभिगमनं।
> वरं जात प्रेतो, वरमपि च कन्यैवजनिता॥
> वरं वन्ध्या भार्य्या, वरमपि च गर्भेषु वसति-
> र्न चाविद्वान् रूपद्रविण गुण युक्तोपि तनयः॥

गर्भ गिर जाना भला, ऋतुस्नान के बाद स्त्री के पास न जाना अच्छा, पैदा होते ही मर जाना भला, कन्या पैदा होना भला, स्त्री का बाँझ रहना भला, गर्भ में रहना ही भला; परन्तु रूप-धन-सम्पन्न मूर्ख—कपूत—का पैदा होना भला नहीं।

दुष्टकी संगति से सुशीलता नाश हो जाती है, इस में सन्देह नहीं। इस विषय में पहले कई बार लिख आये हैं। एकवार लिखी बात को बारम्बार लिखने से कोई लाभ नहीं। दुश्चरित्र कोई भी हो; चाहे स्वामी हो, चाहे सेवक हो, चाहे मित्र हो चाहे पड़ोसी—दुश्चरित्रकी संगति से सच्चरित्र भी नष्ट हो जायगा।

मदिरा पान करने की चाल प्राचीन काल से ही चली आती है। शास्त्रों में लिखा है, मदिरा के परिमित रूप से या मात्रा से पीनेसे बुद्धि फुरती है, श्रेष्ठता, धीरता और चित्तके निश्चय का विस्तार होता है एवं स्वास्थ्य-लाभ और शोक नाश होता है। वैद्यक-ग्रन्थों में लिखा है, कि मदिरा से

बढ़कर शोकनाशक पदार्थ और है ही नहीं ; पर बुद्धिमानों को इससे सर्वथा दूर ही रहना चाहिये । थोड़ी-थोड़ी पीने से यह बढ़ जाती है और अत्यन्त पीने से बुद्धिका लोप और विनाश होता है । इस से सब अनर्थों के मूल काम और क्रोध की उत्पत्ति होती है । विकलता, पृथ्वीपर गिरना, मनमें आवे सो बकना प्रभृत्ति जो लक्षण सन्निपात में होते हैं, वही सब इस मद्य में होते हैं । मनुष्य के हाथ काँपने लगते हैं, कपड़े-लत्तों की सुध नहीं रहती, नंगे हो जाने से भी लाज नहीं आती। पश्चिम दिशा में सूर्य्य के अस्त होते समय तेजहानि और रागता प्रभृति जो दशा सूर्य्य की होती है, वही दशा शराबी की होती है। क्रोध और निर्लज्जता इसके सब से बड़े दुर्गुण हैं। शराबी माता, पिता, बहन और बेटी तक के सामने ऐसी बेशरमी करता है, जिसके लिख-ने में काठकी क़लम भी लजाती है । कहा है—

> एकतश्चतुरो वेदा, ब्रह्मचर्य्य तथैकतः ।
> एकत: सर्व पापानि, मद्यपानं तथैकतः ॥

एक ओर चारों वेद, एक ओर ब्रह्मचर्य, एक तरफ सारे पाप और एक तरफ़ मद्यपान ।

किसी कवि ने कहा है—

> मद्यव्यसन सों मत्त नर, करै न निश्चर काम ।
> मद्य पीय यादव गये, तृथा प्रहरया यमधाम ॥

मद्य पीने से ही यादव-कुल नष्ट हो गया। मद्य पीकर यादवगण इतने निलज्ज हो गये थे, कि उन्होंने श्री कृष्ण भगवान् की भी कान न की।

विदेश में रहने से स्नेह निश्चय ही घट जाता है। प्रीतिसे प्रीति बढ़ती है और अप्रीति से प्रीति घटती है। कठोर वचन से कौन मित्र रह सकता है? कहा है—

तीक्ष्णा वाक्यात् मित्रमपि, तत्कालं याति शत्रुताम्।
वक्रोक्ति शल्यमुद्धर्तुं, न शक्यं मानसंयतः॥

कठोर वचनसे मित्र भी तत्काल शत्रु हो जाता है; क्योंकि कठोर वचन के शल्य को मन से कोई नहीं निकाल सकता। नम्रता और मधुर भाषण से ही संसारी लोग प्रसन्न होते हैं; सभी इन से वश में हो जाते हैं; तब मित्र की तो बात ही क्या! मित्र का गुप्त भेद प्रकाशित करना, माँगना, निष्ठुरता करना, क्रोध करना, झूठ बोलना और चित्त को चंचल रखना ये मित्रता के दूषण हैं। इन के होनेसे मित्रता नहीं रहती। इन दुर्गुणों को त्याग कर, मित्र से निष्कपट प्रीति करो, हर बात में अनुराग दिखाओ, मित्रता हरगिज़ न टूटेगी। मीठा बोलने और नम्र व्यवहार करने से वन में भी श्री रामचन्द्र जी के लाखों करोड़ों बानर और रीछ मित्र हो गये, तब मनुष्य का तो कहना ही क्या?

अनीति से ऐश्वर्य्य का निश्चय ही नाश हो जाता है।

जिन्होंने अनीति की, उनका धन-वैभव नाश ही हुआ। दुर्योधन की अनीतियों से कौरवकुल की श्री नष्ट हो गई। बालिने छोटे भाई की स्त्री को अपनी स्त्री बनाने की अनीति की। रावण ने बल के मद से अन्धे होकर देवताओं और ब्राह्मणों पर अत्याचार किये, जगज्जननी सीता को काम के वश होकर चुरा ले गया, भगवद्भक्तों को अनेक प्रकार के कष्ट दिये और ग़रीबों का धन हरण किया—नतीजा यह हुआ, कि बालि और रावण दोनों का धनैश्वर्य्य नाश हुआ। मुग़ल-सम्राट् औरंगज़ेब ने पूज्यपाद पिता शाहजहाँ को कैद किया, भाइयों को बड़ी दुर्गति से क़तल कराया, हिन्दुओं का धर्म-नाश करके ज़बर्दस्ती मुसल्मान बनाया और जज़िया वगैरः टैक्स लगा कर अनेकानेक अन्याय और अत्याचार किये। परिणाम यह हुआ कि, मुग़लिया सलतनत की नींव हिल गई। उसके बाद जो दो चार बादशाह हुए, वे नाममात्र के ही बादशाह हुए। 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा'—कह-लानेवाले ख़ान्दान की श्री समूल नष्ट हो गई। आज उस ख़ान्दान के अनेक लोग पराधीन होकर अपना जीवन बिता रहे हैं। सुनते हैं, कोई-कोई मज़दूरी तक करके पेट पाल रहे हैं। अनीति से भगवान् को चिढ़ है। गोस्वामी तुल-दासजी ने कहा है—

निडर अनय कर अनकुँशल, बीस बाहु सम होय

निःशंक होकर अनीति करने वाला यदि बीस भुजावाला रावण के समान ही क्यों न हो, उसको कुशल नहीं।

धन को समझ-बूझकर ख़र्च करना चाहिये। जो बिना समझे अँधाधुन्ध ख़र्च करते हैं, वे एक दिन अवश्य ही कंगाल हो जाते हैं। हिमालय के समान धन भी लगातार ख़र्च करने से एक न एक दिन चुक हो जाता है। जिस कूए में पानी का सोता न हो, उससे अगर कोई जल निकाले ही जाय, तो एक दिन वह रीता हो जायगा। जिसके अस्सी की आमदनी और चौरासी का ख़र्च होता है, उसका एक न एक दिन दिवाला अवश्य ही निकल जाता है। कहा है—

> क्षिप्रमायमनालोच्य व्ययमानः स्ववाञ्छया ।
> परिक्षीयते एवासौ धनी वैश्रवणोपमः ॥
> अति दानेन दारिद्र्यं, तिरस्कारोति लोभतः ।
> अत्याग्रहान्नरस्यैव, मौर्ख्यं संजायते खलु ॥

शीघ्रही आमदनी को न देख कर, अपनी इच्छानुसार ख़र्च करने से कुबेर के समान धनवान भी दरिद्र हो जाता है।

अत्यन्त दान से दरिद्रता, अत्यन्त लोभ से तिरस्कार और अत्यन्त आग्रह से मनुष्य को निश्चय ही मूर्खता होती है।

छप्पय कुत्सित-मन्त्री भूप सन्त बिनसत कुसंगतें।
लाड़लड़ाये पूत गोत कन्या कुढंगतें॥
बिन विद्यातें विप्र शील खल संग लिये तें।
होत प्रीति को नाश बास परदेश किये तें॥
बनिता बिनता मदहाससों खेती बिन देखे दृगन।
सुख जात अनय अनुरागते अति प्रमादतैं जात धन॥४२॥

42 A king is ruined by bad counsel, a celibate by (bad) company, a son by (too much) fondling, a Brahman by absence of study, a family by (the birth of) a bad son, (one,s) chararacter by the society of profligate persons, modesty by wine, agriculture by want of care, love by living abroad, friendship by arrogant behaviour, prosperity by unfair dealing and wealth by (too much) expense and lavishness.

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥४३॥

दान, भोग, और नाश—धनकी यही तीन गति हैं। जिसने न दिया और न भोगा, उसके धन को तीसरी गति होती है।

जो अपने कमाये हुए धन को न आप भोगता है और न किसी को देता है, उसका धन नाश हो जाता है; या तो उसे चोर ले जाते हैं या राजा छीन लेता है। गुलिस्ताँ में लिखा है—"धनद्वारा दीन-दुखियोंकी सहायता करने से आफ़त

टलती है । जो दुखियों को धन नहीं देते, उनका धन अत्याचारी ज़बर्दस्ती छीन लेते हैं। मनुष्य को चाहिये, कि अच्छे दिनों में अपने धन-माल को दुःखियों के दुःख दूर करने में लगावे; जिस से इस लोक और परलोक में भला हो। जो न स्वयँ भोगते और न दूसरों को देते हैं, उनका धन नाश हो जाता है और दूसरे लोग उन कंजूसों के धनको बड़ी बेदर्दी से ख़र्च करते हैं । मैंने एक बुद्धिमान से पूछा— "कौन भाग्यवान और कौन अभागा है ?" उसने कहा—जिसने खाया और भोगा वह भाग्यवान है ; किन्तु जिसने भोगा नहीं लेकिन छोड़ कर मर गया, वह भाग्यहीन या अभागा है।"

कहा है,—

न देवाय न विप्राय न बन्धुभ्यो न चात्मने ।
कृपणस्य धनं याति वह्नितस्कर पार्थिवैः ॥

धनेन किं यो न ददाति नाश्नुते
बलेन किं यश्च रिपून्न बाधते ।
श्रुतेन किं यो न च धर्ममाचरेत्
किमात्मना यो न जितेन्द्रियो भवेत् ॥

कंजूस अपने धन को न देवता के काम में ख़र्च करता है, न ब्राह्मण को देता है, न भाईबन्धुओं को देता है और न अपने काम में लाता है । कंजूस का धन या तो आग में जल जाता है या चोर ले जाते हैं अथवा राजा छीन लेता है।

उस धन से क्या जो न दान किया गया न भोगा गया? उस बल से क्या जिस से शत्रु न दबाया गया? शास्त्र सुनने से क्या, यदि उसका आचरण न किया गया? उस आत्मा से क्या, जो जितेन्द्रिय न हुआ?

वृन्द ने भी कहा है—

खाय न खर्चे सूम धन, चोर सबै ले जाय।
पीछे ज्यों मधुमच्छिका, हाथ मले पछताय॥

गिरधर कविराय ने भी कहा है :—

खायो जाय जो खायरे, दियो जाय सो देह।
इन दोनों से जो बचै, सो तुम जानो खेह।
सो तुम जानो खेह, सिके पुनि काम न आवे।
सर्व शोक को बीज, पुनः पुनि तुझे रुलावे॥
कह गिरधर कविराय, चरण त्रै धन के गाये।
दान भोग बिन नाश होत, जो दियो न खायो॥

सोरठा—दान भोग अरु नाश, तीन होत गति द्रव्यकी।
नाहिन द्वैको बास, तहाँ तीसरो बसत है॥४३॥

43. There are three ends to riches, i. e. giving away in charity, enjoyment (of pleasures) and destruction. The wealth of a man who neither spends it on charity nor on his enjoyments has only the third course (i. e., it is destroyed).

मणिः शाणोल्लीढ़ः समरविजयी हेतिनिहतो
मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः
कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता वालललना तनिम्ना
शोभंते गलितविभवाश्चार्थिषु नृपाः ॥४४॥

सान पर खरादी हुई मणि, हथियारों से घायल विजयी योद्धा, मदक्षीण हाथी, शरद ऋतु की सूखे किनारों और अल्प-जल वाली नदी, कलाहीन दूज का चन्द्रमा, सुरत के मर्दन चुम्बन आदि से थकी हुई नवयुवती और अपना सारा ही धन दान करके दरिद्र हुए सज्जन पुरुष—ये सब अपनी हानि या दुर्बलता से ही शोभा पाते हैं।

हीरा प्रभृति रत्न सान पर रख कर घिसे जाते हैं, तो पहले से अधिक सुन्दर हो जाते हैं, उनका कुछ अंश क्षय होने से उनकी खूबसूरती औरभी बढ़ जाती है। हथियारोंसे सजा हुआ विजयी योद्धा अच्छा जान पड़ता है, पर जिस विजयी के शरीर में शस्त्रोंके घाव हो रहे हों, उसकी सुन्दरता औरभी बढ़ जाती है। जाड़े के मौसम में नदी के किनारों से जल हट कर बीच में रह जाता है, वह जल यद्यपि थोड़ा होता है, पर बड़ा ही साफ होता है; उस समय जल के घटने से वह सूखे किनारों वाली और थोड़े जलवाली नदी बड़ी सुन्दर मालूम होती है। चन्द्रमा ऐसे ही मनोहर है, पर जब द्वितीया को वह घटी हुई कलाओं से क्षीणावस्था में उदय होता है, तब

उसका सौन्दर्य्य औरभी बढ़ जाता है। नवयुवती षोडशी बाला स्त्री ऐसे ही सुन्दरी होती है,पर आलिङ्गन चुम्बन आदि से जब उसका बल कुछ क्षीण हो जाता है, तब वह औरभी अधिक सुन्दरी जान पड़ती है। इसी तरह दानी पुरुष जब अपना सारा ही माल-ख़ज़ाना याचकों को लुटाकर दरिद्र हो जाते हैं, तब उनकी शोभा बहुत ही बढ़ जाती है। तात्पर्य्य यह है कि, मणि और योद्धा प्रभृति की शोभा क्षीणता से उल्टी बढ़ जाती है। विशेष करके वह दानी जो अपने दान के कारण दरिद्र हो जाता है, सबसे अधिक शोभायमान लगता है। उसकी जितनी ही प्रशंसा की जाय थोड़ी है। महाराजा हरिश्चन्द्र और राजा बलि ने अपना सर्व्वस्व दान करके जो शोभा और अक्षय कीर्त्ति सम्पादन की है, वह प्रलय काल तक स्थिर रहेगी।

कुण्डलिया—छोटी हू नीकी लगे, मणि खरषाण चढ़ीसु।
बीर अंग कटि शस्त्रसों, शोभा सरस बढ़ीसु॥
शोभा सरस बढ़ीसु, अंग गज मदकर छीनाह।
द्वैज कला शशी सोह, शरदि सरिता जिमि हीनहिं॥
सुरत दलमलीनार, लहत सुन्दरता मोटी;
अर्थिनको धन देत, घटी सो नाहिंन छोटी॥४४॥

44 The following look even more beautiful in their loss:—A precious stone after being polished on a grinding-

stone, a victorious warrior after being wounded in a battle, an elephant after having exhausted its *mada* (restiveness). a stream after its sandbanks have been left dry in winter, a new moon (after she has lost all her brightness). a young woman after she has been exhausted by cohabitation and a king after he has spent all his treasury in charity to mendi cants.

परिक्षीणः कश्चित्स्पृहयति यवानां प्रसृतये
स पश्चात्संपूर्णः कलयति धरित्रीं तृणसमाम् ॥
अतश्चानैकान्त्याद्गुरुलघुतयार्थेषु धनिना-
मवस्था वस्तूनि प्रथयति च संकोचयति च ॥४५॥

जब मनुष्य दरिद्री होता है, तब तो एक पसे जौकी भूसी की इच्छा करता है; पर वही मनुष्य जब धनवान हो जाता है, तब सारी पृथ्वीको तिनके के समान समझने लगता है। इस से स्पष्ट है, कि मनुष्य की विशेष अवस्थायें ही पदार्थमें अपनी लघुता या गुरुता के कारण भिन्नता पैदा करती हैं; कभी उन्हीं वस्तुओं को फैलाती और कभी सुकेड़ती हैं; अर्थात धनावस्था और दरिद्रावस्था ही मनुष्य को बड़ा और छोटा बनाती हैं।

सारांश यह है कि, पदार्थ का कोई मूल्य नहीं; अवस्था ही उसे बड़ा बना देती है और अवस्था ही उसे छोटा बना देती है। जो आज छोटा है, वही धनैश्वर्य्य से कल बड़ा हो जाता है और जो आज बड़ा है वही दरिद्रावस्था होने से कल छोटा हो जाता है।

जब मनुष्य निर्धन होता है—उसकी दीनावस्था होती है, तब वह दो चार पैसे या पेटभर रोटी को ही बहुत समझता है, सब से नम्र व्यवहार करता है, अपने को सब से छोटा समझता है; किन्तु जब वही मनुष्य धनवान हो जाता है, तब वह संसार को अपने सामने तुच्छ समझता है, जगत्‌को अपने से नीचा और अपने तईं सबसे ऊँचा समझता है। मनुष्य से यह सब कौन कराता है? चंचल अवस्थायें—ग़रीबी और अमीरी। ग़रीबी उसे नम्र और सन्तोषी बनाती है और अमीरी उसे अभिमानी और असन्तोषी बना देती हैं। सारांश यह कि, अवस्था ही मनुष्य को छोटा और बड़ा करती है; मनुष्य तो वह का वही रहता है।

छप्पय-होत वहै धनहीन, तबै अंजिल जौ माँगत।
धन पाये वैराग्य ताहि, महि तृणसम लागत॥
दशा यही द्वै चपल, नरहिं लघु दीर्घ बनावैं।
करहिं नीच को ऊँच, ऊँचको नीच जनावैं॥
जग यह विलोकि सज्जन पुरुष, सदा रहैं समता धरै।
ते पूर्ण रहैं अम्भोधि जनु, प्रेम ईश-यशमें करै॥४५॥

45. A man overtaken by poverty wishes for a small quantity of barley, but afterwards when he has got wealth, he reckons the whole world as a straw. Therefore it is the particular conditions of a man that owing to their greatness or smallness create a variety in his objects of life, now expanding and then contracting the same things.

राजन्दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेनां
तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण ॥
तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे
नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ॥४६॥

हे राजा ! यदि तुम इस पृथ्वी रूपी गाय को दुहना चाहते हो, तो प्रजा रूपी बछड़े का पालन-पोषण करो । यदि तुम प्रजा रूपी बछड़े का अच्छी तरह पोषण करोगे, तो पृथ्वी स्वर्गीय कल्पलता की तरह, आप को नाना प्रकार के फल देगी ।

जो राजा प्रजा का पालन खूब अच्छी तरह करता है, उसके सारे मनोरथ पूरे होते हैं । राजा के धन-वैभव की वृद्धि प्रजा से ही होती है । अगर राजा अत्याचारी या अन्यायी होता है—प्रजा के पालन-पोषण की फिक्र नहीं रखता, उस राजा की प्रजा निश्चय ही नाश हो जाती है । प्रजा के नष्ट होने या दरिद्र होने से राजा भी नष्ट हो जाता है । उसके भाण्डार धनधान्य-शून्य पड़े रहते हैं और खज़ानों में चूहे दण्ड पेलते हैं । जो राजा अपनी समृद्धि की वृद्धि करना चाहें, वे प्रजा पालन में दत्तचित्त हों और प्रजा पालन को ही अपना मुख्य कर्त्तव्य समझें । शुक्र नीति में लिखा है ।

सदानुरक्त प्रवृतिः प्रजापालन-तत्परः ।
विनीतात्माहि नृपतिर्भूयसी श्रियमश्नुते ॥

जो राजा प्रजा से अनुराग रखता है, प्रजा-पालन में तत्पर रहता है और विनीत होता है—वह राजा लक्ष्मी को खूब भोगता है।

राजा प्रजा का-स्वामी नहीं—सेवक है। प्रजाने ही अपनी भलाई के लिये उसे राजा बना रक्खा है; पर राज्यकी लगाम हाथ में आते ही राजा लोग इस बात को भूल जाते हैं। वे अपने तईं स्वामी और प्रजा को अपना सेवक समझ कर उनका सर्व्वस्व हरण करने और आनन्द मनाने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं। राजाका काम पिता की तरह प्रजा को पालना और उसकी समृद्धि बढ़ाना है। रघुवंश में महाकवि कालिदास ने रघुवंशी राजाओं के सम्बन्ध में जो लिखा है, उसे पढ़ कर मन में अनेक तरह की तरङ्गे उठती हैं। अहा! वह समय कैसा होगा, जिस समय वैसे राजा इस पृथ्वीकी शोभा बढ़ाते होंगे? लीजिये, दो श्लोक आप भी पढ़िये और अबका और तब का मिलान कीजिये :—

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्र गुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥
प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥

महाराजा दिलीप धन जमा करनेके लिये कर न लेते थे। जो धन लेते थे, वे उसे अपने काममें न लाते थे; पर उसे प्रजा

को भलाई में ख़र्च कर देते थे। इस काम में वे अपने पूर्वपुरुष सूर्य्य का अनुकरण करते थे। सूर्य्य जिस तरह पृथ्वी से रस लेता है, पर उसे वृष्टि के रूप में हज़ार गुणा करके वापिस दे देता है, उसी तरह वे भी करते थे।

वे प्रजाओं के पिता का काम करते थे। जन्म से ही शिक्षा का भार अपने हाथ में रखते थे। विपद् से रक्षा करने का कर्त्तव्य भी उन्हीं का था, और वे ही पालन-पोषण करते थे। असल में वे ही प्रजा के पिता थे। पिता केवल जन्मदाता थे, इतनी ही विशेषता थी।

कहिये पाठक! ऐसे राजा आपकी नज़रों में कहाँ-कहाँ और कितने हैं? कितने राजा आजकल एक गुणा लेकर सहस्र गुणा प्रदान करते हैं? कितने राजा पिता की तरह प्रजा रूपी पुत्रका पालन-पोषण और फ़िक्र करते हैं? सच कहने में भय नहीं; समाचार पत्रों में जो पढ़ते और कानोंसे सुनते हैं; अगर वह सच हो, तो यही कहना पड़ता है, कि हमारे भाइयों से विदेशी अँगरेज़ लाखों दर्जे भले हैं; औरों की अपेक्षा ये अपनी प्रजा का पालन अच्छा ही करते हैं। प्रजा से जो लेते हैं, उसे यदि सम्पूर्ण रूप से लौटा नहीं देते, तोभी बहुत कुछ हमारी ही भलाई में लगा देते हैं। जितनी फ़िक्र प्रजाकी ये रखते हैं, उतनी हमारे भाई-राजे नहीं रखते। जितनी जल्दी दीन-दुखियों की पुकार ये सुनते हैं, उतनी हमारे भाई-राजे नहीं सुनते। देशी राज्यों की प्रजा जब अत्या-

चारियों से पीड़ित होती है, बारम्बार पुकारती है, अर्ज़ियों-पर-अर्ज़ियाँ देती है, पर हमारे भाइयों के कानों पर जूँ नहीं रेंगती ! इस राज्य में आप उन वाइसराय से—जिन के मुक़ाबले में सारे राजा भी कोई चीज़ नहीं—पुकार कीजिये; फ़ौरन् सुनाई होगी—शीघ्रही रक्षा होगी। ये बात हमने सुनकर नहीं लिखी है, वरन् स्वयं देख कर लिखी है। इसको सत्यतामें राईके दाने बराबर भी मिथ्या नहीं; यह झूठी खुशामद नहीं; सच्ची तारीफ़ है। हमने तो इतनी उम्र में जो कुछ देखा, सुना, समझा और विचार किया है; उसका निचोड़ यही है कि, लाख-लाख दोष औ त्रुटियाँ होने पर भी हमारे अँगरेज़ शासक हमसे बहुत अच्छे हैं ; जो सुख स्वाधीनता हम इस राज्य में भोग रहे हैं, वह हमारे अपने राज्यमें भी—जब तक हम लोगों की बुद्धि आजकल की सी ही रहे—हमें नहीं मिल सकती। किसी से असन्तुष्ट होकर उसके औगुणोंका ही बखान करना, गुणों का नाम न लेना—सज्जनता नहीं। सुनते हैं, देखा नहीं, कोई-कोई देशी नरेश अपनी प्रजा के पालन में अच्छा ध्यान देते हैं ; पर वैसे दो चारों से क्या हो सकता है ? जबतक हम लोगों में पहले की सी धर्मपरायणता, न्यायबुद्धि और स्वार्थत्याग प्रभृति उत्तमोत्तम गुणों का समावेश न हो जाय, अँगरेज़ महाराज हमारे सिर पर अपनी सुशीतल शान्तिप्रदायनी छाया बनाये रखें ! लोग हमें गालियाँ देंगे; पर अपना मत प्रकाशित करने का एक

कुली को भी अधिकार है। उसी अधिकार से हम यह कहने को बाध्य हैं। हमारी आत्मा हम से कहलवाती है और यह लिखने को मजबूर करती है कि, अँगरेज़ों का इस देश से अभी विदा होना हरगिज़ भला नहीं—हरगिज़ भला नहीं।

दोहा-धेनु-धरा कौ चहत पय, प्रजा वत्स करि मान ।

याकौ परिपोषण किये, कल्पवृक्ष सम जान ॥४६॥

46. O king, if thou wouldst milk this cow of thy kingdom, then it behoves thee now to nourish thy subjects who are like (that cow's) calf. If thou wilt take proper care of them unceasingly, thy land will bear thee various (kinds of) fruit like the heavenly creeper.

सत्यानृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या ॥
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च
वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा ॥ ४७ ॥

राजनीति वेश्या की नाईं अनेक रूपिणी होती है। कहीं यह सत्यवादिनी और कहीं असत्यवादिनी, कहीं कटुभाषिणी और कहीं प्रियभाषिणी, कहीं हिंसा करने वाली और कहीं दयालु, कहीं लोभी और कहीं उदार, कहीं अपव्यय करने वाली और कहीं धन सञ्चय करने वाली होती है।

राजा सदा एक नीति पर नहीं चलते। उनकी नीति

वेश्या की तरह अनेक रूप धारण करने वाली होती है। कहीं राजा सत्य बोलता है, तो कहीं मिथ्या बोलता है; कहीं कठोर भाषण करता है, तो कहीं मधुर भाषण करता है; कहीं निष्ठुरता करता है तो कहीं दयालुता दिखाता है; कहीं लोभी का सा व्यवहार करता है, तो कहीं उदारता दिखाता है, कहीं बिना विचारे अँधाधुन्ध खर्च करता है, तो कहीं संग्रह करताहै।

राजाओं का काम एक नीति से चल भी नहीं सकता। कूटनीति बिना राज का काम चलना कठिन है और कूटनीति में केवल सत्य, दया, उदारता प्रभृति सद्गुणों से काम नहीं चल सकता। मौक़े-मौक़े पर रङ्ग बदलना ही कूट-नीति है। राजा अगर सदा दयालु-स्वभाव रहे, तो उसे कोई न गिने। जब कोई उसका भय ही न माने, तो वह किस तरह प्रजा की रक्षा करे, किस तरह दुष्टों का दलन करे और किस तरह शत्रुओंको परास्त करे? राजा के अति दयालु होने में भी बड़ी भारी हानि है। नीति में कहा है—"अति दयालु राजा, सर्वभक्षी ब्राह्मण, निर्लज्ज स्त्री, दुष्टमति सहायक, प्रतिकूल सेवक, असावधान अधिकारी और काम न जानने वाला ये सब त्यागने योग्य हैं।" बिना उपद्रव किये कोई बड़े से-बड़े को नहीं मानता। देखिये, मनुष्य सर्पों को पूजते हैं, पर सर्प को खा जाने वाले गरुड़ को नहीं पूजते; क्योंकि सर्प उपद्रवी हैं और गरुड़ उपद्रवी नहीं। गुलिस्ताँ में भी लिखा

कुली को भी अधिकार है। उसी अधिकार से हम यह कहने को वाध्य हैं। हमारी आत्मा हम से कहलवाती है और यह लिखने को मजबूर करती है कि, अँगरेज़ों का इस देश से अभी बिदा होना हरगिज़ भला नहीं—हरगिज़ भला नहीं।

दोहा–धेनु-धरा कौ चहत पय, प्रजा वत्स करि मान।

याकौ परिपोषण किये, कल्पवृक्ष सम जान ॥४६॥

46. O king, if thou wouldst milk this cow of thy kingdom, then it behoves thee now to nourish thy subjects who are like (that cow's) calf. If thou wilt take proper care of them unceasingly, thy land will bear thee various (kinds of) fruit like the heavenly creeper.

सत्यानृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या ॥
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च
वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा ॥ ४७ ॥

राजनीति वेश्या की नाईं अनेक रूपिणी होती है। कहीं यह सत्यवादिनी और कहीं असत्यवादिनी, कहीं कटुभाषिणी और कहीं प्रियभाषिणी, कहीं हिंसा करने वाली और कहीं दयालु, कहीं लोभी और कहीं उदार, कहीं अपव्यय करने वाली और कहीं धन सञ्चय करने वाली होती है।

राजा सदा एक नीति पर नहीं चलते। उनकी नीति

वेश्या की तरह अनेक रूप धारण करने वाली होती है। कहीं राजा सत्य बोलता है, तो कहीं मिथ्या बोलता है; कहीं कठोर भाषण करता है, तो कहीं मधुर भाषण करता है; कहीं निष्ठुरता करता है तो कहीं दयालुता दिखाता है; कहीं लोभी का सा व्यवहार करता है, तो कहीं उदारता दिखाता है, कहीं बिना विचारे अँधाधुन्ध खर्च करता है, तो कहीं संग्रह करताहै।

राजाओं का काम एक नीति से चल भी नहीं सकता। कूटनीति बिना राज का काम चलना कठिन है और कूटनीति में केवल सत्य, दया, उदारता प्रभृति सद्गुणों से काम नहीं चल सकता। मौके-मौके पर रङ्ग बदलना ही कूट-नीति है। राजा अगर सदा दयालु-स्वभाव रहे, तो उसे कोई न गिने। जब कोई उसका भय ही न माने, तो वह किस तरह प्रजा की रक्षा करे, किस तरह दुष्टों का दलन करे और किस तरह शत्रुओंको परास्त करे? राजा के अति दयालु होने में भी बड़ी भारी हानि है। नीति में कहा है—"अति दयालु राजा, सर्वभक्षी ब्राह्मण, निर्लज स्त्री, दुष्टमति सहायक, प्रतिकूल सेवक, असावधान अधिकारी और काम न जानने वाला ये सब त्यागने योग्य हैं।" बिना उपद्रव किये कोई बड़े से-बड़े को नहीं मानता। देखिये, मनुष्य सर्पों को पूजते हैं, पर सर्प को खा जाने वाले गरुड़ को नहीं पूजते; क्योंकि सर्प उपद्रवी हैं और गरुड़ उपद्रवी नहीं। गुलिस्ताँ में भी लिखा

है—"तीन चीज़ें तीन चीज़ों के बिना क़ायम नहीं रहतीं—दौलत बिना सौदागरी के, इल्म बिना बहस के और बादशाहत बिना दहशत के।" बहुत लिखने से क्या, जो राजा वेश्या की तरह अनेक रूप बदलते हैं, वेश्यारूपिणी नीति को बर्तते हैं, उनका ही राज्य रहता और बढ़ता है। हमारे वर्तमान राजा अँगरेज़ भी इसी तरह की नीति पर चलते हैं; कहीं सत्य बोलते हैं और कहीं मिथ्या; कहीं प्रतिज्ञा पालन करते हैं और कहीं प्रतिज्ञा भंग। हमारे परम योगीश्वर भगवान् कृष्ण प्रथम श्रेणी के कूटनीतिज्ञ थे। नीति में लिखा है।

> न राम सदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत्।
> न कुटनीतिरभवत श्रीकृष्ण सदृशो नृपः॥

इस पृथ्वी पर रामचन्द्र के समान नीतिमान् और श्रीकृष्ण के समान कूटनीतिज्ञ राजा नहीं हुआ। रामचन्द्रजी ने अपनी नीति के बल से बानरों को अपने वश में कर लिया और श्रीकृष्ण ने अपनी ही बहिन सुभद्रा छल से अर्जुन को व्याह दी।

छप्पय–*साँची है सब भाँति, सद सब बातनि झूठा।*
कबहुँ रोससा भरी, कबहुँ प्रिय बनै अनूठी॥
हिंसा को डर नाहिं, दयाहू प्रगट दिखावत।
धन लेवे की बान, खर्चहू धन को भावत॥

राखत जु भीर बहु नरन की, सदा संवारत रहत गृह।
इह भांति रूप नाना रचत, गनिकासम नृपनीति यह ॥४७॥

47. The policy of a king like that of a prostitute is manifold. It is truthful as well as false, heartless as well as sweet-tongued, destructive as well as merciful, avaricious as well as charitable and ever prodigal as well as ever econmical.

विद्या कीर्त्तिः पालनं ब्राह्मणानां
दानं भोगो मित्रसंरक्षणं च ॥
येषामेते षड् गुणा न प्रवृत्ताः
कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ॥ ४८ ॥

जिन पुरुषों में विद्या, कीर्त्ति, ब्राह्मणों का पालन; दान, भोग और मित्रों की रक्षा—ये छै गुण नहीं हुए, उनकी राज-सेवा वृथा है।

तात्पर्य यह है, जिनका हुक्म चलता हो, जिनकी नेक-नामी हो, जिनके द्वारा ब्राह्मणों का पालन होता हो, जो सत्पात्रों को धन-दान करते हों, स्वयं सुख भोगते हों और अपने बन्धुबान्धवों की रक्षा करते हों—उनका ही राजा की सेवा करना सफल है—जिन में ये गुण न हों, उनकी राजसेवा निरर्थक है।

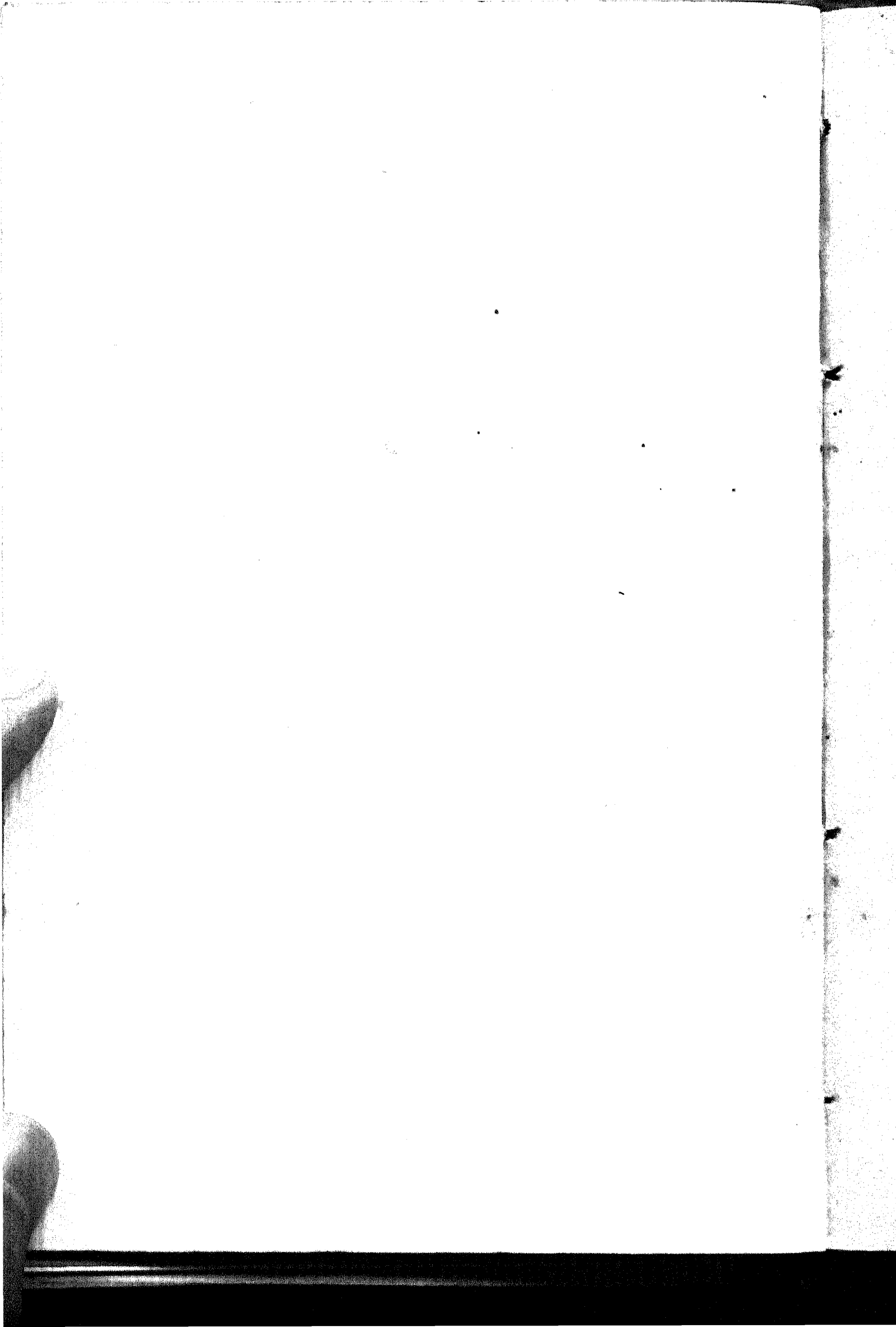
दोहा—विद्या यश द्विज पालना, दान भोग सन्मान।
नृप सेवा इन छः बिना, निष्फल जान सुजान ॥४८॥

48. What is the use of those that have influence at a king's court if they do not possess these six qualities :— knowledge, fame, procuring livelihood for Brahmans, charity, enjoyment of pleasures and protection of friends.

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततो नाधिकम् ॥
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम् ॥४६॥

थोड़ा या बहुत—जितना धन विधाता ने तुम्हारे भाग्य में लिख दिया है, उतना तुम्हें निश्चय ही मरुस्थल में भी मिल जायगा ; उससे ज़ियादा तुमको सुमेरु पर भी नहीं मिल सकता ; इसलिये सन्तोष करो, धनियों के सामने वृथा दीनता से याचना न करो : क्योंकि, देखो, घड़ा समुद्र और कूएँ से समान जल ही ग्रहण करता है।

इसका खुलासा यह है—जितना धन भाग्य में लिखा है, उतना हर कहीं मिल जाता है। भाग्य में लिखे से अधिक धन सोने के सुमेरु पर्वत पर भी नहीं मिलता। घड़े को चाहे समुद्र में डालिये चाहे कूएँ में डालिये, दोनों जगहों से वह समान जल ही ग्रहण करता है ; अर्थात जितना जल उस में समा सकता है, उतना ही उस में आता है—कूएँ में से कम नहीं आता और समुद्र में से अधिक नहीं आ जाता।



मनुष्य को इस बात को समझ कर सदा सन्तोष करना चाहिये। धनियों की खुशामद और दीनता करके अपना मान न गँवाना चाहिये। भाग्य में जो नहीं है, उसे लाख-लाख खुशामद और दीनता करने से भी कोई न देगा। शास्त्र में लिखा है—

> आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
> पञ्चैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः॥

आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु—ये पाँचों प्राणी के भाग्य में उसी समय लिख दिये जाते हैं, जब कि वह गर्भाशय के भीतर ही होता है। जितना विधाता लिख देता है, उतना अवश्य मिलता है और जो नहीं लिखता वह कैसे मिल सकता है? इसलिये भटकना और दीनता करके मान खोना वृथा है।

"पञ्चतंत्र" में लिखा है—

> न हि भवति यन्न भाव्यं, भवति च भाव्यं विनापि यत्नेन्।
> करतलगतमपि नश्यति यस्य तु भवितव्यता नास्ति॥

जो होनहार नहीं है वह नहीं होता और जो होनहार है वह बिना उपाय किये ही हो जाता है। जो हमारे भाग्य में नहीं है, वह हाथ में आकर भी नष्ट हो जाता है।

मनुष्य ने जितना पूर्व्व जन्म में बोया है, उतना वह अवश्य ही काटेगा। सारा संसार प्रारब्ध और पुरुषार्थ में ही

विद्यमान है। पूर्वजन्म के कर्म को प्रारब्ध और इस जन्म के कर्म को पुरुषार्थ कहते हैं। एक ही कर्म के दो नाम हैं। फलों की प्राप्ति का हेतु प्रत्यक्ष नहीं दीखता। फलों की प्राप्ति पूर्व्वजन्म के कर्मानुसार ही होती है। देखते हैं, कोई-कोई बिना ज़रा सा भी उद्योग और परिश्रम किये अतुल सम्पत्ति का अधिकारी हो जाता है और कोई दिन-रात घोर परिश्रम करने पर भी पेट भर अन्न नहीं पाता। किये हुए कर्म का फल मनुष्य को अवश्य मिलता है। जिस तरह बछड़ा अपनी माँ को हज़ारों गायों में से पहचान लेता है; उसी तरह पूर्व्वजन्म का किया कर्म अपने कर्त्ता को चट पहचान लेता है। किया हुआ कर्म सोते के साथ सोता है, चलते के साथ चलता है; बहुत क्या पूर्व्वकृत कर्म आत्मा के साथ रहता है। छाया और धूप का आपस में जो सम्बन्ध है, कर्त्ता और कर्म का भी वही सम्बन्ध है।

सारांश यही है, कि जितना दिया है, उतना इस जन्म में अवश्य मिलेगा; उस से अधिक कहीं और कभी भी न मिलेगा। गुलिस्ताँ में लिखा है—"संसार में दो बातें असम्भव हैं—(१) भाग्य में जितना लिखा है उससे अधिक खाना, और (२) नियत समय से पहले मरना।" जितना भाग्य में लिखा है, उतना हर जगह बिना उद्योग और परिश्रम के भी मिल जायगा और जो भाग्य में नहीं लिखा है, वह कुबेर की खुशामद और चाकरी से भी न मिलेगा। जबतक मृत्यु का

समय नहीं आया है, मनुष्य सिंह के मुँह में जाकर भी बच जायगा और मृत्यु-समय आ जाने पर वह कहीं भी और किसी भी उपाय से न बचेगा ।

मित्रो ! इन बातों को समझो और इन पर विश्वास करके बेफिक्र रहो । वृथा मारे-मारे न फिरो । अपनी प्रतिष्ठा और मान को न खोओ । कहा है—

असेवितेश्वरद्वारमदृष्ट विरहव्यथम् ।
अनुक्तक्लीव वचनं, धन्यं कस्यापि जीवनम् ॥

जिसने धनवान का द्वार न सेया, विरह की पीर न सही और नामर्दी की बात न कही—उसका जीवन धन्य है । ऐसा कौन है ?

दोहा-भाल लिखौ जू विरंचि वह, घटै बढ़ै कछु नाहिं ।
सुरधर कंचन मेरु सम, जान लेहु मनमाहिं ॥ ४९ ॥

49. Whatever wealth, great or small, the god Brahma has ordained to be the lot of a man, is got by him without fail even in a desert. On the golden (Meru) mountain he cannot get any more. Then be contented and do not show a suppliant attitude towards rich people uselessly. See, a pitcher takes in an equal quantity of water in a well as well as in the ocean.

त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषां न गोचरः ।
किमम्भोदवरास्माकं कार्पण्योक्तिः प्रतीक्ष्यते ॥ ५० ॥

हे श्रेष्ठ मेघ! तुम्हीं हम पपहियों के एक मात्र आधार हो, इस बात को कौन नहीं जानता? हमारे दीन वचनों को प्रतीक्षा क्यों करते हो?

चातक कहता है—"हे मेघ! संसार में नद नदी और सरोबर आदि अनेक जलाशय हैं; हम प्यासे ही क्यों न मर जायँ, पर तुम्हारे सिवा हम किसी का जल नहीं पीते। तुम्हारे जल के सिवा गंगा, जमुना, सरस्वती और सिन्धु प्रभृति हमारे लिये धूल हैं। हम लोगों को तुम्हारा ही आश्रय है। इस दशा में तुम्हें उचित नहीं है, कि तुम हमसे बारम्बार दीनता कराओ।

सज्जनों को अपने आश्रितों की दीनता की प्रतीक्षा न करनी चाहिये। उनकी अनुनय-विनय और दीन वाणी के बिना ही उन की आशा पूरी करनी चाहिये। जो अपने आश्रित को बिना दीनता कराये दे, उसके समान कौन दाता है?

दोहा—मेघ तुझे जाने जगत, पपिहा प्राण-अधार।

दीन वचन चाहत सुन्यौ, यह नहिं उचित विचार ॥५०॥

50. Who does not know, O cloud, that thou art the only refuge of Chataka birds (a kind of sky-lark)? Then why, Oh, dost thou wait for our entreaties? (The above is spoken by a Chataka bird which, it is said, tastes no water except that from falling drops of rain.)

रे रे चातक सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयता-
मम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः ॥
केचिद्वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद्वृथा
यंयं पश्यसि तस्यतस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वच ॥५१॥

रे रे चातक! सावधान होकर ज़रा हमारी बात सुन! आकाश में बहुत से मेघ हैं; पर सब एक से नहीं। कितने ही तो ऐसे हैं, जो पृथ्वी पर जल ही जल कर देते हैं और कितने ही ऐसे हैं, जो वृथा ही गर्ज कर चले जाते हैं; इस-लिये हे मित्र! तुम जिस को देखो उसी के सामने दीनता मत करो।

मनुष्य को चाहिये कि, जिस-तिस के सामने दीनता न करे। इस जगत् में सभी उदार दाता नहीं। कितने ही बातें तो लम्बी-चौड़ी बनाते हैं, पर देते एक पैसा नहीं। ऐसे सज्जन बहुत थोड़े हैं, जो बिना कहे ही अपने आश्रितों के मनोरथ पूरे कर दें। नीच-स्वभाव वालों के सामने अपनी दुःख कहानी कहने और उनसे कुछ माँगने से दुःख के सिवा और कुछ नहीं मिलता। गुलिस्ताँ में कहा है—'दुष्टों के आगे अपने अभावों का रोना न रोओ; क्योंकि उनके दुष्ट स्वभाव के कारण तुम्हें दुःखित होना पड़ेगा। अगर तुम अपने दिल का दुःख किसी मनुष्य के आगे कहो, तो ऐसे के सामने कहो, कि जिसके प्रसन्न मुख के देखने से तुम्हें निश्चय

दुर्जनों की निन्दा

अकरुणत्वमकारणविग्रहः
परधने परयोषिति च स्पृहा ॥
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता
प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ॥ ५२ ॥

किसी पर दया न करना, बिना वजह लड़ाई झगड़ा करना, परधन और पर-स्त्री पर मन चलाना, सज्जनों और अपने रिश्तेदारों की उन्नति पर कुढ़ना—ये छहों अवगुण दुष्टों में स्वभाव से ही होते हैं।

दुर्जनों में ठीक ये छहों अवगुण होते हैं। कौरव-कुल-कलङ्क दुर्योधन में ये सभी औगुण थे। दया का उसमें नाम ही नहीं था। हृदय में दया होती, तो पाण्डवों को वह इतने कष्ट क्यों देता? उन्हें लाक्षागृह में सोते हुए क्यों जलवाता? द्रौपदी को भरी सभा में नंगी करने की चेष्टा क्यों करता? असलमें; दुर्जन पराई वृद्धिको नहीं देख सकते। दुर्योधन राजसूय यज्ञ में पाण्डवों की अतुल सम्पत्ति देखकर ही जल गया था और इसीलिये उसने अकारण ही रार मोल ली। कपट-द्यूत से उनकी सम्पत्ति और स्त्री तक को छीन लेने का उसने उद्योग किया। सम्पत्ति तो ले ही ली, केवल द्रौपदी अपने बुद्धिबल से स्वाधीन हो गई।

रोज़ ही आँखों से देखा करते हैं, दुष्ट लोग ग़रीब और कमज़ोरों को सताते हैं, परस्त्रियों को छेड़ते हैं और मौक़ा पाने से उन अबलाओं का जीवन सदा के लिये ख़राब कर देते हैं, रात-दिन पराई सम्पत्ति हड़पने की चेष्टा में लगी रहते हैं, जिसे ज़रा भी खुशहाल और खाता पीता देखते हैं उसके पीछे पड़ जाते हैं ; उसकी बदनामी करने और उसका सर्वस्व स्वाहा करने में कोई बात उठा नहीं रखते। दुर्जनों के सिर पर कलंगी नहीं होती ; जिनमें ये छहों दुर्गुण हों, उन्हें ही दुर्जन समझना चाहिये। ऐसे दुर्जन इस जगत् में बहुत हैं। "पराई सम्पत्ति या वैभव को देख कर जलना" इन दुष्टों की मुख्य पहचान है। ये सब बातें इन में स्वभाव से ही होती हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

पर सुख सम्पति देखि सुनि, जरहिं मूढ़ बिन आग ।
तुलसी तिनके भागते, चलै भलाई भाग ॥

सुजन गुनन सों खल जर्यो, पुनि पुनि वैर कराय ।
पूर्ण चन्द्र गुण सो जर्यो, ग्रसै राहु जिमि आय ॥

दोहा-दयाहीन बिन काज रिपु, तस्कारता पर पुष्ट ।
सहि न सकत सुख बन्धु को, यह स्वभाव सों दुष्ट ॥५२॥

52. Want of pity, quarrelling without any cause, cherishing desire for other people's money and womenfollk, into-

lerance towards the virtuous and towards their own relatives are the natural characteristics of evil men.

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्यया भूषितोऽपि सन्।
मणिनालङ्कृतः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥५३॥

दुर्जन विद्वान् हो तोभी उसे त्याग देना ही उचित है; क्योंकि मणि से भूषित सर्प क्या भयङ्कर नहीं होता ?

जिस तरह मणि के धारण करने से सर्प की भयङ्करता नष्ट नहीं हो जाती ; उसी तरह विद्या अध्ययन कर लेने से दुर्जनों की स्वाभाविक दुष्टता चली नहीं जाती।

"पंचतंत्र" में लिखा है—

न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं
न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः।
स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते
यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः॥

धर्मशास्त्र के पढ़ने या वेदाध्ययन करने से दुष्टात्मा साधु-स्वभाव नहीं हो जाता ; जिसका जो स्वभाव है, वही प्रबल है; गाय का दूध स्वभाव से ही मीठा होता है।

वृन्द कविने कहा है—

खल विद्या-भूषित तऊ, नहिं भरोस को मूल ।
ज्यों मणि-भूषित भुजग जग, नीच मीच सम तूल ॥
नहिं इलाज देख्यौ सुन्यौ, जासों मिटत स्वभाव ।
मधुपुट कोटिक देत तउ, विष न तजत विष भाव ॥

किसी का भी जन्म-स्वभाव नहीं बदलता। विद्या उत्तम चीज़ है, पर स्वभाव बदलने की शक्ति उसमें भी नहीं। विद्या से मनुष्य में बुद्धिमत्ता आती है, पर मूर्ख की मूर्खता और भी बढ़ती है। जिन्होंने यूरोपियन डाकू, चोर और बदमाशों के सम्बन्ध की पुस्तकें पढ़ी होंगी अथवा जिन्होंने बायस्कोप के तमाशे देखे होंगे, उन्हें मालूम होगा, कि चोर और बद-माश इस देश में भी भयङ्कर होते हैं, पर यूरोप के पढ़े लिखे बदमाशों की लीलायें देख कर दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। विद्या से दुष्टों को एक प्रकार का बल और मिल जाता है। विद्याबल से उनकी दुष्टतायें और भी भीषण रूप धारण कर लेती हैं। स्वाती की बूँद सीप में पड़ कर मोती का रूप धारण करती है और सर्प के मुख में पड़ कर भयङ्कर विष हो जाती है। मेह सर्वत्र यकसाँ ही बरसता है, पर बाग़ों में गुललाला होते हैं और ऊसर ज़मीन में घास होती है। जो अयोग्य और नालायक़ होता है, जिसकी असलियत ही ख़राब होती है, उसे कैसी भी उत्तम शिक्षा दी जाय और वह कसी भी अच्छी संगति में रक्खा जाय, वह हरगिज़ उत्तम न होगा; जैसा का तैसा रहेगा। निकम्मे लोहे पर चाहे जितनी पालिश की जाय, वह हरगिज़ चिकना और चमकदार न होगा। पानी को कितना ही गरम कीजिये, थोड़ी देर बाद ही वह शीतल हो जायगा; यानी अपने असली स्वभाव पर आ जायगा। लहसुन और

हींग कस्तूरी के हज़ारों पुट दिये जाने पर भी अपने स्वभाव को नहीं त्यागते; उनकी असली गन्ध बनी ही रहती है। जीभ पर कितनी ही चिकनाई लहेसी जाय; पर वह चिकनी न होगी। नीम में कितना ही गुड़ घी सींचा जाय, पर वह मीठा न होगा ; जैसा उसका स्वभाव है, वैसा ही रहेगा। विषमें चाहे जितना मधु मिलाइये, पर वह अपना विषभाव न तजेगा। बहुत कहनेसे क्या, असली स्वभाव किसी भी उपाय से मिट नहीं सकता।

जो लोग समझते हैं, कि दुर्जन विद्याके प्रभाव से सज्जन हो जाते हैं,—उनकी स्वाभाविक दुष्टता नष्ट हो जाती है, उन्हीं के लिये योगिराज भर्तृहरि ने मणिधारी सर्प का दृष्टान्त देकर समझाया है, कि आप ऐसा भूल कर भी न समझें। अगर ऐसा समझ कर दुर्जनों का संग करेंगे, उनके साथ रहेंगे, उनसे बातचीत करेंगे; तो आप को भयानक विपद् में फँसना होगा। रावण कम विद्वान् नहीं था ; पर विद्वान् होने से क्या उसकी दुष्टता चली गई थी ?

इन बातों को हृदयङ्गम करके, अपना भला चाहने वालों को अपढ़—निरक्षर दुष्टों से तो बचना ही चाहिये ; पर पढ़े लिखे या विद्वान् दुर्जनोंसे और भी अधिक दूर रहना चाहिये। निरक्षर दुर्जनों से साक्षर या विद्वान् दुर्जन अधिक भयंकर होते हैं। इस बात को तो सभी जानते हैं, कि विद्वान् होते ही उन में सौ दुर्गुणों का एक दुर्गुण अभिमान आ जाता

है। जिस में अभिमान आ जाता है, उस में कौनसा दुर्गुण नहीं आ जाता। "करेला और नीम चढ़ा वाली" कहावत चरितार्थ होने लगती है।

हमारा विद्वान् दुर्जनों से बहुत काम पड़ा है। हमने योगिराज के इस उपदेश को लड़कपन में पढ़कर भी अनेक बार धोखे खाये हैं। हमारे दिल में भी सदा यही ख़याल जमा रहता था, कि जो विद्वान् होते हैं, वे दुष्टात्मा नहीं होते; पर अब संसार में ठोकरें खाकर, हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं, कि विद्वान्-दुर्जनों के समान और दुरात्मा नहीं होते। ये अकारण ही लोगों से तकरार और झगड़े करते हैं और परले सिरे के स्वार्थी और कृतघ्न होते हैं। एक बार एक भले आदमी वृथा ही झगड़ा करने लगे। अगर वह झगड़ा चलता, अगर दोनों पक्ष अदालत में जाते, तो हज़ारों रुपये स्वाहा हो जाते। हमने उन्हें लिखा—"भाई! इन बातों में कोई लाभ नहीं; धर्मतः मेरे दिल में आप से ज़रा भी वैर-भाव नहीं। आप ऐसा न कीजिये। इससे आप को और मुझको दोनों को तकलीफ होगी और नतीजा कुछ निकलेगा नहीं। अधिक क्या लिखूँ, आप गणेश हैं, गणेश को बुद्धि कौन दे?" बस, इस आख़िरी फ़िक़रे ने तो अग्नि में घी का काम ही किया। पाठक! विचारें, हमने क्या बुरी बात लिख दी?

और भी लीजिये—एक बार हम एक भले आदमी से मिलने गये। आफिस में वे तो हमें न मिले, पर एक दूसरे नामी ग्रामी पढ़े-लिखे भले आदमी वहाँ कुरसी पर विराजमान थे। चन्द मिनट तो हम खड़े रहे, उन्होंने हमारी ओर देखा भी नहीं। ख़ैर, बेहयाई से हम और हमारे मित्र वहाँ ही पड़ी हुई दो चौकियों पर बैठ गये। कुछ देर बाद आप की नज़र हम पर पड़ी। आपने हमारा नाम धाम पूछा। इसके बाद आपने और सब छोड़ यह पूछा—"मुझे आप के यहाँ का अमुक माल बेचने के लिये चाहिये। पेमेण्ट किस तरह करना होगा?" हमारे यहाँ उधार का नियम नहीं है। इसलिये हमने मीठा सा उत्तर दे दिया, कि इस बात का जवाब हम सोच कर देंगे। एक रोज़ वह मित्र जिनसे हम मिलने गये थे, हमारे डेरे पर ही तशरीफ़ ले आये। बातों-ही-बातों में ज़िक्र आ गया, कि कल हम आपके आफिस में गये थे। एक सज्जन जो वहाँ बैठे हुए थे, उन्होंने हमसे ये सवाल किये। दुःख है, कि हम उधार माल किसी को भी नहीं देते; फिर भी अगर आप कहें तो सौ दो सौ का दे दें। आप को हम जानते हैं, उनको नहीं जानते। उस समय वहाँ एक और विद्वान् कहलाने वाले महाशय तशरीफ़ रखते थे। उन्होंने उनसे जाकर कह दिया कि, अमुक आदमी आप इतने बड़े कारोबारी का ऐतबार नहीं करता और आपके मातहत का ऐतबार करता है। बस, अब क्या

था ? वह भले आदमी तत्ते तेल के बैंगन हो गये। कहने लगे—"हमारा विश्वास नहीं ; हमारे नौकर का विश्वास ! आपने हमारे साथ बड़ा बुरा व्यवहार किया है। याद रक्खो, आपने यह अच्छा काम नहीं किया। हम आपको इसके लिये बुरे फल चखायेंगे।" गौर कीजिये पाठक ! हमने क्या अपराध किया ? अपना माल उधार दिया और न दिया, किसी की ज़बर्दस्ती है ? अधिक कागज़ काला करके आप का अमूल्य समय नष्ट करना नहीं चाहते। उन्होंने हमारे सर्वनाश के लिये कोई बात उठा न रक्खी, पर "जाको राखे साँइयाँ, मार सके नहिं कोय" वाली बात हुई। उनका नैतिक पतन हो गया। हमें मानसिक कष्ट अवश्य हुआ, पर और हमारा बाल भी बाँका न हुआ। कहाँ तक लिखें, ऐसे-ऐसे विद्वान् दुर्जन हमने बहुत देखे हैं। इनके दिल में न दया है न धर्म ; दूसरों को वृथा कष्ट देना ही इनके जीवन का मुख्य उद्देश्य है। यह उस भेड़िये की तरह जो नीचे स्थान में पानी पीने वाले मेमने से विवाद कर बैठा—वृथा लड़ाई मोल लिया करते हैं। इन बातों के बिना इनको रोटी ही हज़म नहीं होती। अच्छा हो, ये शान्ति से अपना काम करें, दूसरों की शान्ति को भङ्ग न करें, दीन-दुःखियों को न सतावें, पराये धन पर मन न चलावें; पर ये अपने स्वभाव से लाचार हैं। भगवान् ने इनका स्वभाव ही ऐसा बना दिया है। ये आप दुःख पाते हैं और दूसरों को कष्ट

देते हैं। ये दूसरों के छिद्र देखने में ही अपनी उम्र बिता देते हैं। किसी की उन्नति से ये खुश नहीं होते। वे ही भाग्यवान हैं, जिनका ऐसों से पाला नहीं पड़ता। इस बात को याद रखो :—

कैसे हू छूटत नहीं, जामें परी कुबानि।
काग न कोयल ह्वै सके, जो विधि सिखवें आनि॥

सोरठा-विद्यायुतहू होय, तदपि दुष्ट तज दीजिये।

सर्पजु मणिधर होय, भयकारी तेहुं जानिये॥ ५३॥

53. An evil person should be shunned even if he is adorned with knowledge. Is a serpent, although adorned with a precious gem, not fearful?

जाड्यं ह्रीमति गण्यते व्रतरुचौ दम्भः शुचौ कैतवं
शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्यं प्रियालापिनि॥
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तव्यशक्तिः स्थिरे
तत्को नाम गुणो भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः॥५४॥

लज्जावानों को मूर्ख, व्रत उपवास करने वालों को ठग, पवित्रता से रहने वालों को धूर्त्त, शूरवीरों को निर्दयी, चुप रहने वालों को निर्बुद्धि, मधुरभाषियों को दीन, तेजस्वियों को अहंकारी, वक्ताओं को बकवादी और शान्त पुरुषों को असमर्थ कह कर, दुष्टों ने गुणियों के कौनसे गुण को कलंकित नहीं किया?

दुर्जनों को सज्जनों से स्वाभाविक वैर होता है। जिस तरह मूर्ख पण्डितों से, दरिद्र धनियों से, व्यभिचारिणी कुल-स्त्रियों से और विधवा सधवाओं से सदा जलती रहती हैं; उसी तरह दुर्जन सज्जनों से जला करते हैं। ये सब चाहा करते हैं,—जैसे हम हैं, वैसे ही सभी हों। जब इन से कुछ भी बन नहीं पड़ता, तब ये गुणियों के गुणों की ही निन्दा किया करते हैं।

बुरे कामों से लजाना मनुष्य में उत्तम गुण है; इस गुण के होने से मनुष्य बुरे कामों से बचता है। व्रत-उपवास करने से मन और आत्मा शुद्ध हो जाते हैं तथा काया का मल नाश हो जाता है। शूरवीरता से निर्बलों की रक्षा होती है। मधुर भाषण से मनुष्यमात्र की आत्मा सन्तुष्ट रहती है; पर दुर्जनों की नज़र में ये सब अनुकरणीय गुण भी औगुण हैं। और कहाँ तक कहें ये लोग उस वक्ता को भी वाचालता के दोष से दूषित करते हैं. जिसके बोलने से श्रोता मूक हो जाते हैं, उनके मन स्थिर हो जाते हैं और नेत्रों से टपाटप आँसू गिरने लगते हैं; जो आप किसी की ओर नहीं देखता, पर सबकी दृष्टि अपनी ओर खींच लेता है, आप सिर नहीं हिलाता, पर सबके सिर हिलवा देता है और जिसका भाषण श्रोताओं के हृदय में अमृत का काम करता है। असल में दुर्जनों को सज्जन और गुणवान बुरे लगते हैं; इसलिये वे सदा उन्हें अपने जैसा करने के लिये कोई कोशिश उठा

नहीं रखते और उन्हें बदनाम करने के लिये अपना एड़ी से चोटी तक का ज़ोर लगाने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं। जिन के हृदय मलिन हैं, वे इन्हीं कुकर्मों में अपने दुष्प्राप्य मनुष्य-जीवन को बर्बाद करते हैं। कहा है—

दोष लगावत गुनिन कों, जाको हृदय मलीन।
धरमी को दम्भी कहे, क्षमियन को बलहीन॥
दुर्जन गुनगन सुजन के, छिन महँ करत मलीन।
बिमल वसन कों करत जिमि, धूम श्याम रंग भीन॥

दुष्ट लोग भले आदमियों को अकारण ही इतना तंग करते हैं, कि मनुष्य को यह संसार बहुत ही बुरा मालूम होता है। ऐसों ही से दुःखित होकर महाकवि ग़ालिब ने कहा है :—

रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
हमसख़ुन कोई न हो और हमज़बाँ कोई न हो॥
बे दरो दीवार सा इक घर बनाया चाहिए।
कोई हमसाया न हो और पासबाँ कोई न हो॥

संसार रहने की जगह नहीं, यहाँ ईर्ष्या द्वेष का बाज़ार गर्म है। जी में आता है ऐसी जगह चलकर रहिये, जहाँ कोई न हो। हमारी बात कोई न समझे और न हम किसी की समझें। मकान भी ऐसा ही हो, जिसमें न दर हो न दीवार अर्थात् शुद्ध जंगल हो, न कोई साथी हो न पड़ोसी।

इसी तरह एक अँग्रेज़ विद्वान् ने भी दुष्टों से दुःखित होकर कहा है—

The better I know men the more I admire dogs.

जितना ही मैं मनुष्यों को जानता जाता हूँ, उतना ही मैं कुत्तों की प्रशंसा करता हूँ।

बस; यही हालत हमारी भी है। दुष्टोंसे दुःख पाकर हमारी भी तबियत ऐसी हो गई है, कि इस संसार से जङ्गल भला मालूम होता है। मनुष्यों के सङ्ग से पशुओं का संग भला मालूम होता है। पर मजबूरी से, दूसरों के कारण से, हम इच्छा करके भी, यहाँ से अभी सरक नहीं सकते। हम तो यही कहेंगे, जो मनुष्यों की बस्ती से दूर रहते हैं, वे ही सुखी हैं, उन्हें ही सुखशान्ति मिलती होगी; हमें तो किसी तरह का अभाव न होने पर भी, यहाँ सुख नहीं दीखता।

जो लोग इन में ही रहना चाहें अथवा इच्छा न होने पर भी रहे बिना न सरे, उनको इन दुष्टों की बातों पर कान न देना चाहिये। मन में समझना चाहिये, हम तो कौन चीज़ हैं, ये बड़े बड़ों की निन्दा करते हैं। इनकी निन्दा से हमारा क्या बिगड़ जायगा? तुलसीदास जी ने कहा है—

> द्वारे टाट न दे सकहिं, तुलसी जे नर नीच।
> निदरहिं बल हरिचन्द कहँ, कहु का करण दधीच॥
> भलो कहहिं जाने बिना, की अथवा अपवाद।
> तुलसी गाँवर जानि जिय, करव न हर्ष विषाद॥

तुलसी देवल राम के, लागे लाख करोर ।
काक अभागे हगि भरे, महिमा भयउ न थोर ॥

नीच लोग दरवाज़े पर तो टाट भी नहीं लगा सकते, पर बलि और हरिश्चन्द्र जैसे महादानियों की भी निन्दा करते हैं; कर्ण और दधीच तो इनकी नज़रों में कोई चीज़ ही नहीं।

बिना जाने प्रशंसा करें अथवा निन्दा; गँवार समझ कर इन की बात पर न हर्ष ही करना चाहिये और न शोक ही करना चाहिये।

रामचन्द्रजी के लाखों करोड़ों की लागत से बने मन्दिर पर अगर अभागा काग हग भरता है, तो क्या मन्दिर की महिमा कम हो जाती है?

बस, दुष्टों में रह कर शान्तिपूर्व्वक जीवन बिताने का इससे उत्तम और इलाज नहीं। यों तो दुष्टों का पड़ोस और गाँव छोड़ कर—उन से हज़ार कोस दूर रहने में भी सुख-शान्ति नहीं—हाँ, गोस्वामी जी के उपदेश से मन को कुछ शान्ति अवश्य मिलती है।

छप्पय-लज्जायुत जो होय, ताहि मूरख ठहरावत ।
धर्मवृत्ति मन मांहि, ताहि दम्भी कहि गावत ॥
अति पवित्र जो होय, ताहि कपटी कहि बोलत ।
धरै शूरता अंग, ताहि पापी कहि तोलत ॥

विक्रमी मत्त पिय वचन रत, तेजवान लम्पट कहत ।

पण्डित लबार कहैं, दुष्ट जन गुण को तज औगुण गहत॥५४

54. What good qualities of the meritorious are not misrepresented by evil men ? The modest are called by them fools, those true to their vows are named hypocrites, the pure in heart are nicknamed cheats, the brave are misrepresented as tyrants, the philosophers are spoken of as whimsical, the sweet-tongued are depicted as servile, the self-respecting are called self-conceited, good speakers are said to be talkative and the patient are proclaimed as inactive.

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः

सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ॥

सौजन्यं यदि किं गुणैः स्वमहिमा यद्यस्ति किं मंडनैः

सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥५५॥

यदि लोभ है, तो और औगुणों की क्या ज़रूरत ? यदि परनिन्दा या चुग़लख़ोरी है, तो और पापोंकी क्या आवश्यकता ? यदि सत्य है, तो तपस्या से क्या प्रयोजन ? यदि मन शुद्ध है, तो तीर्थों से क्या लाभ ? यदि सज्जनता है तो और गुणों की क्या ज़रूरत ? यदि कीर्त्ति है, तो आभूषणों को क्या आवश्यकता ? यदि उत्तम विद्या है, तो धन का क्या प्रयोजन ? यदि अपयश है, तो मृत्यु से और क्या होगा ?

लोभ से ही काम, क्रोध और मोह की उत्पत्ति होती

है और मोह से मनुष्य का नाश होता है। लोभ ही पापों का कारण है। लोभ से बुद्धि चंचल हो जाती है। लोभ से तृष्णा होती है। तृष्णार्त्त को दोनों लोकों में सुख नहीं। धन के लोभी को, असन्तोषी को, चंचल मन वाले को और अजितेन्द्रिय को सर्वत्र आफ़त है। लोभ सचमुच ही सब औगुणों की खान है। लोभ होते ही और सब औगुण आप-से-आप चले आते हैं। दुष्टों के मन में पहले लोभ ही होता है; इसके बाद वे परनिन्दा, परपीड़न और हत्या प्रभृति कुकर्म करते हैं। रावण को पहले सीता पर लोभ ही हुआ था। दुर्योधन को पहले पाण्डवों की सम्पत्ति पर लोभ ही हुआ था। इसलिये मनुष्य को लोभ-शत्रु से बिल्कुल ही दूर रहना चाहिये। जिसमें लोभ नहीं, वह सच्चा विद्वान् और पण्डित है। निर्लोभ को जगत् में आपदा कहाँ? अगर विद्वान् के मन में लोभ है, तो वह विद्वान् नहीं मूर्ख ही है। कहा है—

> काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि मन में खान।
> का पण्डित का मूरखै, दोनों एक समान ॥ तुलसी ॥

परनिन्दक से बढ़ कर पापी कोई नहीं। जिनका हृदय काला होता है; जिनका दिल मैला होता है, वे ही पराई निन्दा किया करते हैं। पराई निन्दा यदि सच्ची हो, तो भी लाभ नहीं और यदि झूठी हो तब तो कहना ही क्या? अपनी

ज़बान गन्दी करने से कोई फायदा नहीं। लेवेटर नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने कहा है—"अगर तुम्हें किसी के दोष का ठीक पता न हो, तो तुम उसकी निन्दा मत करो; और अगर तुम को उसके दोष का ठीक पता हो, तो अपने दिल से पूछो, कि तुम्हें निन्दा करने से क्या लाभ?" आपका अन्तरात्मा यही कहेगा कि, कोई लाभ नहीं। जब लाभ नहीं, तब परनिन्दा क्यों की जाय? अच्छे आदमी पर-निन्दा से लाभ होनेपर भी परनिन्दा नहीं करते। परनिन्दा से जो लाभ हो, उसकी अपेक्षा उस लाभ बिना रहना भला। पर संसार में कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो दूसरों से परनिन्दा सुन कर खुश हुआ करते हैं और इस तरह वे निन्दकों को उन के काम में उत्साहित करते हैं। अगर लोग इतना समझें कि, जो आज दूसरे की बुराई हमारे सामने करता है, वह एक दिन हमारी भी दूसरे के सामने करेगा, तो कभी ऐसों को मुँह न लगावें। परनिन्दा करने और सुनने में समान पाप लगता है। जो पराई निन्दा करें, उन्हें सोचना चाहिये कि, क्या उन में कोई दोष या ख़ामी नहीं है। अगर उनमें भी दोष या ख़ामियाँ हों, तब उन्हें दूसरों की निन्दा करने का क्या अधिकार है? असल बात यह है, जिन में स्वयं दोष होते हैं, वे ही दूसरों की निन्दा किया करते हैं। गोथे नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने कहा है—

"He that would reproach an author for obscurity should

look into his own mind to see whether it is quite clear there. In the dusk the plainest writing is illegible."

जो मनुष्य अस्पष्टता के कारण किसी ग्रन्थकर्त्ता की निन्दा करे, वह अपने ही चित्त में विचार कर देखे, कि क्या वहाँ बिल्कुल स्वच्छता है। धुँधलके में स्पष्ट-से-स्पष्ट लेख अपाठ्य होता है। जिनका दिल स्वच्छ नहीं होता, उनको ही पराया काम सदोष दीखता है। किसी ने कहा है—

"It is easy to criticise an author, but it is difficult to appreciate it."

किसी ग्रन्थकार के ग्रन्थ की कड़ी आलोचना करना आसान है, पर उसकी प्रशंसा करना या क़द्र करना कठिन है; अर्थात् किसी की निन्दा करना सहज है, पर उसकी तारीफ़ करना कठिन है। इस काम के लिये बड़े दिल की ज़रूरत है। निन्दक संकीर्ण-हृदय होते हैं। वे लोग पराई निन्दा करके ही प्रसिद्धि लाभ करना चाहते हैं; पर यह महापाप है, इससे पराई आत्मा को कष्ट होता है। पराया दिल दुखाना ही संसार में सबसे बड़ा पाप माना गया है। परनिन्दक और स्वार्थी इस बात को जानते हुए भी अपनी आदत से लाचार हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

तुलसी निज कीरति चहैं, पर कीरति कहँ खोय।
तिनके मुख मसि लागिहै, मिटे न मरि है धोय॥

कबीर दास ने भी कहा है—

निन्दक एकहु मति मिलै, पापी मिलै हज़ार।
एक निन्दक के सीस पर, हज़ार पाप को भार॥

सत्य की महिमा २६ वें श्लोक में लिख आये हैं। सत्य के सामने तप कुछ नहीं। सत्यवादी स्वयं बड़ा भारी तपस्वी है। जो सदा सत्य बोलता है, स्वप्नमें भी मिथ्या नहीं बोलता, उस की बराबरी कौन कर सकता है?

यदि मन शुद्ध है, तो निश्चय ही तीर्थयात्रा की कोई ज़रूरत नहीं। सारा दारमदार मन की शुद्धि पर है। कहते हैं—"मन चंगा तो कठौती में गंगा।" जिसका मन शुद्ध नहीं, जिसके हृदय में पाप है, वही दुष्ट है। वह सौ बार तीर्थस्नान करने से भी शुद्ध नहीं हो सकता। क्या मदिरा का पात्र जलाने से शुद्ध हो जाता है? जिन के मनमें काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ प्रभृति का निवास नहीं है—उनका ही मन शुद्ध है, उनका ही मन रोग रहित है। जिनका मन विशुद्ध है, उन्हें तीर्थों से क्या लाभ? अगर मन शुद्ध रहे और एक ही रंग में रँगा रहे—तो बस फिर सारा काम ही बन जाय—स्वयं जगदीश ही न मिल जायँ। कहा है—

मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक।
जो यह मन हर सों मिले, तो हरि मिले निःशंक॥

सज्जन पुरुष सदा पराया भला करते हैं, बुरा वे किसी का

मन से भी नहीं चाहते, सभी का काम बनाते हैं, बिगाड़ते किसी का भी नहीं। वे न किसी पर क्रोध करते हैं, न किसी वस्तु पर मन चलाते हैं, परस्त्रियों को अपनी माता के समान समझते हैं, प्राणिमात्र को अपना कुटुम्बी समझते हैं, सबके कष्ट को अपना कष्ट समझते हैं और किसी को भूल कर भी दुःख नहीं देते। झूठ बोलना और पराई निन्दा या चुगली-चपाती करना तो उनके स्वभाव में ही नहीं। वे पराये औगुणों को छिपाते और गुणों को प्रकाश करते हैं। वे ऐसे मधुरभाषी होते हैं, कि जिससे ज़रा भी बात करते हैं, वही उनका हो जाता है। उनके इन गुणों के कारण ही सभी उनके हो जाते हैं ; इसी से कहा है,कि अगर सज्जनता है, तो स्वजनों की क्या ज़रूरत।

निस्सन्देह विद्या स्वयं धन है। जिसके पास विद्या है, उसे क्या अभाव है ? प्रथम तो वास्तविक विद्वान धन की इच्छाही नहीं रखते ; वे जानते हैं,कि धन ही सारे अनर्थों की जड़ है। धन बड़े कष्ट से कमाया जाता है, बड़ी-बड़ी तक-लीफों से सञ्चित होता है, विपत्ति में सन्ताप और सम्पद् में मोह करता है, इससे अभिमान हुए बिना नहीं रहता। धनवान को क्षण-भर भी चैन नहीं। जिस तरह आकाश में माँस को खाने वाले पक्षी हैं, जल में मछलियाँ और पृथ्वी पर सिंह व्याघ्र आदि हैं; उसी तरह धनी को खाने वाले सर्वत्र हैं। जिस तरह प्राणधारियों को सदा मृत्यु से भय रहता

है ; उसी तरह धनी को राजा, अग्नि, जल, चोर और भाई-बन्धुओं से सदा भय रहता है। कुटुम्बी सदा धनवान की मरण-कामना करते रहते हैं। प्रथम तो मनुष्य-जन्म ही दुःखों से भरा हुआ है। फिर ; धन होते ही तृष्णा बढ़ती है और ज्यों ज्यों धन अधिक होता है, त्यों त्यों तृष्णा और भी अधिक होती है। इच्छानुसार सम्पत्ति किसी को भी नहीं मिलती, इसलिये इच्छा की निवृत्ति भी कभी नहीं होती। जो धन पास होता है, उसके चले जाने का भय सदा सिर पर सवार रहता है ; क्योंकि लक्ष्मी स्वभाव से ही चञ्चल है, किसी एक के यहाँ नहीं ठहरती ; अपने चञ्चल स्वभाव के वश, एक को छोड़ दूसरे के यहाँ चली जाती है। उसके चले जाने पर जो सन्ताप मन में होता है, उसे भुक्तभोगी ही जानता है। पास का धन नष्ट हो जाने से मृत्यु-समय की सी बेदना होती है। बहुत क्या—धनवान को कभी सुख नहीं मिलता। बेंजामिन फ्रेंकलिन महोदय कहते हैं—

Money never made a man happy yet, nor will it. There is nothing in its nature to produce happiness. The more man has, the more he wants.

"रुपये ने आज तक किसी को सुखी किया भी नहीं और करेगा भी नहीं। इसके स्वभाव में ऐसी कोई बात ही नहीं, जिससे वह सुख उत्पन्न करे। जितना ही मनुष्य के पास होता है,उतना ही वह और चाहता है।" लूथर महाशय कहते हैं—

Our Lord God commonly gives riches to foolish people, to whom He gives nothing else.

"हमारा स्वामी—परमेश्वर मूर्खों को धन देता है। जिन्हें वह धन देता है, उन्हें वह सिवा धनके और कुछ नहीं देता।" इन दुःखों के सिवा धन से एक और भी दुःख है। वह यह कि, मरण-समय भी यह कष्ट देता है। जिस गधे पर हल्का बोझ होता है, वह आसानी से चला जाता है; उसी तरह जो ग़रीब होते हैं, जिनके हाथी घोड़े महल मकान बाग़-बगीचे, बड़ा परिवार और अनेक प्रकार के हीरा पन्ना आदि रत्न नहीं होते, वे सहज में देह त्याग कर जाते हैं, उन्हें प्राणान्त के समय भयङ्कर वेदना नहीं होती—इन सब दुःखों के कारण से ही विद्वान् लोग धन को पसन्द नहीं करते। वे विद्या रूपी धनको सब धनों की अपेक्षा उत्तम धन समझते हैं; क्योंकि उसके नाश का कभी भय नहीं और वह सदा-सर्वदा मनुष्य का कल्याण ही करता है। अगर वे इस धन को परोपकार प्रभृति पुण्यकार्य्यों के लिये चाहें तो इसका उन्हें कभी अभाव न हो—लक्ष्मी उनके क़दमों में लोटे; पर वे उस अक्षय धन के मुक़ाबले में, इस नाशमान् और क्षण-क्षण दुःखदायी धन को पसन्द ही क्यों करने लगे?

मनुष्य में यदि सुयश है, तो से आभूषणों की ज़रूरत नहीं। आभूषणों से तो शरीर की शोभा होती है और वह भी सदा नहीं; किन्तु सुयश या सुनाम से आत्मा की शोभा होती है और वह चिरकाल रहती है। सुयश स्त्री पुरुषों की आत्माओं का सच्चा आभूषण है। मनुष्य की देह नाश

हो जाती है, पर सुकीर्त्ति शरीर के नाश हो जाने पर भी बनी रहती है।

अपयश मनुष्य का मरण है। जिसकी अपकीर्त्ति है, वह जीता हुआ ही मरा है। सज्जनों के दिलों में बदनामी से जैसी मर्मान्तक वेदना होती है, वैसी शायद मृत्यु से भी नहीं होती। बदनामी के डर से ही भगवान् रामचन्द्र ने सच्ची सती प्राणाधिका सीता को, निर्दोष जानकर भी, बन में भेज दी और स्वयं उसकी विरहाग्नि में जल-जल कर ख़ाक हुए। बहुत क्या, मनुष्य को कोई भी काम ऐसा न करना चाहिये, जिससे उसका अपयश हो। जिनका अपयश है, वह ज़िन्दा होने पर भी मुर्दा है।

छप्पय-भयौ लोभ मन माँहि, कहा तब अवगुण चहिये।
निन्दा सबकी करत, तहाँ सब पातक लहिये॥
सत्यवचन तप जान, शुद्ध मन तीरथ जानहु।
होत सुजनता जहाँ, तहाँ गुण प्रकट प्रमानहु॥
यश जहाँ कहा भूषण चहै, सद्विद्या जहँ धन कहा।
अपयश जु छ्यौ या जगतमें, तिन्हें मृत्युही है महा॥५५॥

55. If there is avarice, there is no need of seeking for other bad qualities. If there is perversity of heart, no other sin is required. If there is truth, other penances are useless. If the heart is pure, one need not visit the holy places. If a

man is good-natured, no other strength is needful. If there is inborn merit, no other ornaments are necessary. If there is knowledge, wealth is a secondary consideration. If there is disgrace, death is no worse.

शशी दिवसधूसरो गलितयौवना कामिनी।
सरो विगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वाकृतेः॥
प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनो।
नृपाङ्गणगतः खलो मनसि सप्त शल्यानि मे॥ ५६॥

दिनका मलिन चन्द्रमा, यौवनहीन कामिनी, कमल-हीन सरोवर, निरक्षर रूपवान, कंजूस स्वामी या राजा, सज्जन दरिद्री और राज-सभा में दुष्टों का होना—ये सातों हमारे दिल में काँटे की तरह चुभते हैं।

चन्द्रमा अपनी प्रभा से ही शोभायमान लगता है। सूर्य के प्रकाश में उसकी प्रभा नष्ट हो जाती है, इसलिये खूबसूरती-पसन्दों के दिल में वह प्रभाहीन होने पर काँटे की तरह खटकता है। स्त्री की शोभा यौवन से ही है। जिस स्त्री की तरुणाई और लुनाई नष्ट हो जाती है, चित्ताकर्षक सौन्दर्य्य नष्ट हो जाता है; वह बुरी मालूम होती है। सरोवर की शोभा कमलों से है। कमल-हीन-सरोवर, अच्छा-से-अच्छा होने पर भी, सौन्दर्य्यहीन और सूना सा लगता है। रूपवान मनुष्य, विद्याहीन होने पर, ढाक के फूलों की तरह बेकाम

होता है। यदि रूपवान विद्वान् भी होता है, तो उसकी खूबसूरती दुबाला हो जाती है। राजा या धनी की शोभा उदारता से है। कृपण राजा या धनी नपुंसक के समान होते हैं। बिना धन त्याग किये, राज राज शब्द से कोई लाभ नहीं। निधियों की रक्षा करने वाले कुबेर को पण्डित लोग महेश्वर नहीं कहते। दाता अगर थोड़े नवाला भी हो तो भी अच्छा; किन्तु समृद्धिवान कृपण किसी काम का नहीं; समुद्र की अपेक्षा लोग कुएँ को पसन्द करते हैं। धनी होने पर जो उदार नहीं होता, वह मन में खटकता ही है। इसी तरह सज्जनों का दरिद्री होना और राजसभा में दुष्टों का होना खटकता है।

परमात्मा ने अपने सभी कामों में कुछ-न-कुछ दोष रख दिये हैं और वे ही दोष चतुरों के दिलों में खटकते हैं। अगर चन्द्रमा दिन में भी प्रभाहीन न होता, स्त्री का यौवन सदा रहता, सरोवर कभी कमल-शून्य न होता, रूपवान विद्वान् होते, धनी उदार होते, सज्जन धनवान होते और राजसभा में दुष्टों की पहुँच न होती—तो कैसे आनन्द की बात होती ? पर परमात्मा की तो लीला ही अजब है ! वह सज्जनों को बहुधा निर्धन रखता है।

एमर्सन महोदय ने कहा है—

The greatest man in history was the poorest.

इतिहास में सब से बड़ा आदमी सब से ज़ियादा निर्धन था। लिवी महोदय कहते हैं—

Men are seldom blessed with good fortune and good sense at the same time.

धन और सुबुद्धि एक साथ किसी ही भाग्यवान् को मिलते हैं। जो धनवान हैं, वे बुद्धिमान् नहीं और जो बुद्धिमान हैं, वे धनवान नहीं।

कवियोंने कहा है और ठीक ही कहा है—

भले बुरे बिधिना रचे, पै सदोष सब कीन।
कामधेनु पशु, कठिन मनि, दधि खारो शशि छीन ॥
कहीं कहीं विधि की अवधि, भूले परम प्रवीन।
मूरख को सम्पत दई, पण्डित सम्पतहीन ॥

और भी कहा है ;—

गंधः सुवर्णे फलमिक्षुदंडे,
नाकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य ।
विद्वान् धनी, भूपति दीर्घजीवी
धातुःपुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत ॥

सोने में सुगन्ध, ऊख में फल, चन्दन में फल, विद्वान् धनी और राजा चिरजीवी न किया, इस से स्पष्ट है, कि विधाता को कोई अक्ल देनेवाला न था।

कुण्डलिया-फीको है शशि दिवस में, कामिन यौवनहीन ;
सुन्दर मुख अक्षर बिना, सरवर पंकज हीन ॥
सरवर पंकज हीन, होत प्रभु लोभी धनकों।
सज्जन कपटी होत, नृपति ढिंग बास खलन कों॥
सातों है शल्य परम, छेदत या जीकों।
ब्रजनिधि! इनको देख, होत मेरो मन फीको ॥५६॥

56. These even prick my heart like a thorn. The moon seen in the day-time destitute of her brightness, a beautiful woman past her youth, a lake without lotus-flowers, a handsome person possessing no literary talents, a miserly king, a good man stricken with poverty and a tale-bearing person having influence in a king's court.

न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भूभुजाम्।
होतारमपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति पावकः ॥५७॥

प्रचण्ड क्रोधी राजाओं का कोई प्यारा नहीं। जिस तरह हवन करने वाले को भी अग्नि छूते ही जला देती है, उसी तरह राजा भी किसी के नहीं।

क्रोधी राजा का भूल कर भी विश्वास न करना चाहिये। उसके नाते-रिश्तेदार और मित्रोंको भी उस से डरना चाहिये। आग जिस तरह हवन करने वाले का भी मुलाहिज़ा नहीं

करती, उसी तरह राजा अपने बन्धु-बान्धवों का भी लिहाज़ नहीं रखते। राजा और अग्नि से कुछ दूर रहना और डरते रहना ही भला है। जो इन से बिल्कुल दूर रहते हैं, उन्हें इन से फल नहीं मिलता और जो इन के बहुत निकट जाते हैं—इनसे निर्भय रहते हैं—इनकी प्रीति का विश्वास करते हैं, वे मारे जाते हैं। कहावत प्रसिद्ध है—

राजा जोगी अगिन जल, इनकी उल्टी रीति।
डरते रहिये परसराम, ये थोड़ी पालें प्रीति॥

"पंचतंत्र" में लिखा है—

काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं
सर्पे क्षान्ति स्त्रीषु कामोपशान्तिः।
क्लीवे धैर्य्यं मद्यपे तत्वचिन्ता
राजा मित्रं केन दृष्टंश्रुतं वा॥

कव्वे में पवित्रता, ज्वारी में सत्य, सर्प में सहनशीलता, स्त्री में कामशान्ति, नामर्द में धीरज, शराबी में तत्वचिन्ता और राजा में मैत्री किसने देखी या सुनी है?

और भी कहा है—

दुर्जनगम्या नार्य्यः प्रायेणास्नेहवान्भवति राजा।
कृपणानुसारि च धनं, मेघो गिरिदुर्गवर्षी च॥

नारी अपने शत्रुओं से भी मिल सकती है, राजा में स्नेह

नहीं होता, धन कृपण के पास रहता है और मेह पर्वतों की चोटियों पर बरसता है।

गुलिस्तां में भी लिखा है—राजाओंकी मैत्री और लड़कों की मीठी-मीठी बातों पर भरोसा न करना चाहिये; क्योंकि राजाओं की मैत्री ज़रा से शक पर टूट जाती है और लड़कों की प्यारी-प्यारी बातें रात-भर में बदल जाती हैं।

दोहा–जे अति पापी भूप ते, काहूसौं न कृपाल।

होम करतहूँ द्विजन कौ, दहत अग्नि की ज्वाल ॥ ५७ ॥

57. As for kings who are subject to strong passions, nobody is their own. Fire never fails to burn a man if it is touched by him, while offering his oblations to it.

मौनान्मूकः प्रवचनपटुश्चाटुको जल्पको वा
धृष्टः पार्श्वे वसति च तदा दूरतश्चाप्रगल्भः ॥
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥५८॥

नौकर यदि चुप रहता है, तो मालिक उसे गूँगा कहता है; यदि बोलता है, तो उसे बकवादी कहता है; यदि पास रहता है, तो ढीठ कहता है; यदि दूर रहता है, तो उसे मूर्ख कहता है; यदि खोटी-खरी सह लेता है, तो उसे डरपोक कहता है और यदि नहीं सहता है, तो उसे नीच कुल का कहता है। मतलब यह कि सेवाधर्म—पराई चाकरी—बड़ी ही कठिन है; योगियों के लिये भी अगम्य है।

संसार में जितने कठिन काम हैं, उन में पराई चाकरी सबसे कठिन है। योगिजन सब तरह के कष्ट सहने के अभ्यासी होते हैं, उन्हें कोई कष्ट कष्ट और कोई दुःख दुःख नहीं मालूम होता; पर, पर-सेवा उनके लिये भी महा कठिन है। नौकर को किसी तरह भी चैन नहीं। प्रसिद्ध विद्वान् और महाकवि होमर ने जो कहा है, वह बहुत ही ठीक कहा है, कि मनुष्य के आधे गुण तो उसी समय विदा हो जाते हैं, जब वह दूसरे का दासत्व स्वीकार करता है।

पहले तो मनुष्य का जन्म ही दुःख भोगने के लिये होता है। फिर; यदि दरिद्रता हो और पराई चाकरीसे पेट भरना पड़े, तब तो दुःख की परम्परा ही है। सेवा करने वाले बड़े ही मूर्ख होते हैं, जो अपने शरीर की स्वतन्त्रता को भी खो देते हैं—अपनी आज़ादी से भी हाथ धो बैठते हैं। सेवक भूख लगने पर खा नहीं सकता, नींद आने पर सो नहीं सकता, नींद खुलने पर जाग नहीं सकता और निःशंक हो कर कुछ कह नहीं सकता। क्या ऐसे सेवक को भी ज़िन्दा कह सकते हैं? लोग जो सेवावृत्ति को कुत्ते की वृत्ति कहते हैं, बड़ी ग़लती करते हैं। कुत्ते में और सेवक में तो बड़ा फ़र्क़ है! सेवक से कुत्ता भला है; क्योंकि कुत्ता आज़ाद होता है और सेवक आज़ाद नहीं होता। कुत्ता अपनी मौज से फिरता है; पर नौकर तो प्रभु की आज्ञा से फिरता है।

सेवक सारे ही काम यति के समान करता है। सेवक ज़मीन पर सोता है और यति भी ज़मीन पर सोता है; सेवक ब्रह्मचर्य रखता है और यति भी ब्रह्मचर्य रखता है। सेवक थोड़ा सा भोजन करता है और यति भी थोड़ा सा भोजन करता है; पर सेवक और यति में बड़ा भेद है; क्योंकि सेवक के सब काम पाप के लिये और यति के धर्म के लिये होते हैं। सेवा से जो गोल-गोल और बड़े-बड़े मनोहर लड्डू मिलते हैं, वे तुच्छ हैं। उनकी अपेक्षा जङ्गलका साग-पात खाकर पेट भरना और स्वतन्त्र रहना भला। झोंपड़ीमें रहना अच्छा, पर गुलामी कर के महलों में रहना भला नहीं। स्वर्ग में सेवा करने से नरक में राज्य करना भला। कहा है—

> वरं वनं वरं भैक्ष्यं, वरं भारोपजीवनम्।
> वरं व्याधिर्मनुष्याणां, नाधिकारेण सम्पदः॥

वन में रहना अच्छा, भीख माँग कर खाना अच्छा, बोझा उठा कर जीना अच्छा, रोगी रहना अच्छा; पर सेवा करके धन प्राप्त करना अच्छा नहीं।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान्, भूतपूर्व सरस्वती सम्पादक श्रीमान् पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी महोदय कहते हैं—

> चाहे कुटी अति घने वन में बनावे,
> चाहे बिना निमक कुत्सित अन्न खावे।

चाहे कभी नर नये पट भी न पावे,

सेवा प्रभो, पर न तू पर की करावे ॥

दोहा-चुप गूँगो लाबर वचन, निकट ढीठ जड़ दूर ।

क्षमाहीन परिहास खल, सेवा कठिहिं पूर ॥५८॥

58. If a servant is silent, he is said to be dumb ; if he is clever of speech, he is dubbed as a talkative prattler ; if he lives near, he is called disrespectful ; if he keeps himself at a distance, he is considered a skulker ; if he pardons, he is a coward and if he does not, he is put down as valgar. The duty of serving (others) is very difficult to perform. Even the Yogis can hardly understand it,

उद्भासिताखिलखलस्य विशृंखलस्य

प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः ॥

दैवादवाप्तविभवस्य गुणद्विषोस्य

नीचस्य गोचरगतैः सुखमास्यते कैः ॥५९॥

जो दुष्टों का सिरताज है, जो निरङ्कुश या मर्य्यादा रहित है, जो पूर्व्व जन्म के कुकर्म्मों के कारण परले सिरे का दुराचारी है, जो सौभाग्य से धनी हो गया है और जो उत्तमोत्तम गुणों से द्वेष रखने वाला है—ऐसे नीच के अधीन रह कर कौन सुखी हो सकता है ?

तात्पर्य्य यह है, कि नीच मनुष्य की सेवा करके मनुष्य हरगिज़ सुखी नहीं हो सकता । कहा है—

अगम्यान्यः पुमान्याति, असेव्यांश्च निषेवते ।
स मृत्युमुपगृह्णाति, गर्भमश्वतरी यथा ॥

जो अगम्या स्त्री में गमन करता है, जो सेवा न करने योग्य की सेवा करता है; वह उसी तरह मरता है, जिस तरह खच्चरी गर्भ धारण करने से मरती है ।

जो ऐसे अवगुणों की खान नीचों की सेवा करते हैं, उन्हें भीष्म और द्रोण की तरह पद-पद पर लांछित और दुखी होना पड़ता है । कहा है—

नासेव्य सेवयादुःखाद्दैवाधीने धनेधियम् ।
भीष्मद्रोणादयो याताञ्जयन् दुर्योधनाश्रयात् ॥

दुर्योधन दुष्टों का सरदार और बुराइयों की खान था, वह किसी नीति नियम को न मानता था—मन में आता था वही करता था। पूर्वजन्म के पापों से घोर दुराचारी था। दैव के अनुकूल होने से लक्ष्मी मिल गई थी ; पर पाण्डवों के उत्तमोत्तम गुणों से वह अहर्निश जला करता था । उस की सेवा करने से गोग्टह में भीष्म को अपमानित होना पड़ा और द्रोणाचार्य को भी नीचा देखना पड़ा । भरी सभा में उसका अन्यायाचरण देख कर भी, चाकरी के कारण से, भीष्म और द्रोण कुछ न बोल सके । न चाहने पर भी, अन्याय और अनीति को देख कर मन-ही-मन कुढ़ा किये । बहुत क्या, शेष में उन्हें अपने प्राण भी गँवाने पड़े ।

अतः मनुष्य को किसी दशा में भी नीच की चाकरी न करनी चाहिये ; क्योंकि नीच की सेवा में सुख नहीं ।

कुण्डलिया-संग न करिये दुष्ट को, जासों होय उपाध ।

पूर्वजन्म के पाप सब, उपज उठावें व्याध ॥

उपज उठावें व्याध, दैवबल होय धनी सो ।

शुभगुण राख द्वेष, कुबुंध कों मित्र करै सो ॥

निपट निरंकुश नीच, तास चित रंग न धरिये ।

दुखमय दुर्गुण खान, तासु को संग न करिये ॥५९॥

59, Who can find happiness if he is dependent on a mean-hearted person who outvies all evil men and is unrestrained by any thing, who is bent upon adding to his base nature owing to the evil actions done in a previous birth, who has acquired wealth by good luck and who is jealous of all good qualities

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण

लघ्वी पुरा बृद्धिमती च पश्चात् ॥

दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना

छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ॥६०॥

दुष्टों की मैत्री दोपहर पहले की छाया के समान आरम्भ में बहुत लम्बी-चौड़ी होती है और पीछे क्रमशः घटती चली जाती है ; किन्तु सज्जनों की मैत्री दोपहर के बाद की छाया

के समान पहले बहुत थोड़ी सी होती है और पीछे क्रमशः बढ़ने वाली होती है।

खुलासा यह है कि, जिस तरह दोपहर पहले की छाया आरम्भ में बहुत होती है और पीछे क्षण-क्षण घटती जाती है; उसी तरह खलों की मैत्री पहले बहुत और पीछे कम होने वाली होती है; परन्तु सत्पुरुषों की मैत्री दोपहर पीछे की छाया के समान पहले थोड़ी और पीछे क्रम-क्रमसे बढ़ने वाली होती है।

दुर्जनों की मित्रता—पहले बहुत, पीछे कम।
सज्जनों की मित्रता—पहले कम पीछे बहुत।

"पंचतंत्र" में भी कहा है—

इक्षोरग्रात्क्रमशः पर्वणि यथा रस विशेषः।
तद्वत् सज्जन मैत्री विपरीतानान्तु विपरीता ॥

ईख के अगले हिस्से में रस कम होता है; ज्यों-ज्यों आगे चलियेगा, रस अधिक मिलता जायगा। बस, सज्जनों की मैत्री ठीक ऐसी ही होती है; दुर्जनों की इस के विपरीत होती है।

नीचों की मैत्री के सम्बन्ध में और कवियों ने भी कहा है:—

ओछे नर की प्रीति की, दीनी रीति बताय।
जैसे छीलर ताल जल, घटत-घटत घट जाय॥

विनसत बार न लागई, ओछे नर की प्रीति।
अम्बर डम्बर साँझ के, ज्यों बालू की भीत ॥

कुण्डलिया-छाया जैसी प्रात की, तैसी दुर्जन प्रीति।
पहिले दीरघ होय पुनि, घटन लगे तज रीति ॥
घटन लग तज रीति, प्रीति को करै बहानौ।
पै सज्जन की प्रीत, विरुध याके मन मानौ ॥
पहिले सूक्षमरूप, फेर दिनरात सवाया।
सुजन प्रीति नित बढै, यथा संध्या की छाया ॥६०॥

60, The friendship of evil as well as good men is like the shade of day in the forenoon and afternoon The former is great in the beginning, but diminishes as the day passes on, whereas the latter is small at first but goes on increasing afterwards.

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसंतोषविहितवृत्तीनाम् ॥
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति ॥६१॥

हिरन, मछली और सज्जन क्रमशः तिनके, जल और सन्तोष पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं ; पर शिकारी, मछुए और दुष्ट लोग अकारण ही इन से वैर भाव रखते हैं।

हिरन, मछली और सज्जन—ये किसी की हानि नहीं करते, पर दुष्ट लोग इन्हें वृथा ही सताते हैं। इस से मालूम

होता है, कि दुष्टों का स्वभाव ही ऐसा होता है। वे दूसरों को तकलीफ देने में ही अपना कर्त्तव्य-पालन समझते हैं। कहा है—

सहज संतोष है साध को, खल दुख दैन प्रवीन ।
मछुआ मारत जल बसत, कहा बिगारत मीन ॥

दोहा—मीन वारि मृग तृण सुजन, करि सन्तोषहिं जीव ।
लुब्धक धीवर दुष्टजन, बिन कारण दुख कीव ॥६१॥

61, With deer, with fishes and with good men who feed themselves only with grass, water and a contented livelihood respectively, the hunters, fishermen and evil-minded persons cherish an enmity in this world without any cause whatsoever.

सज्जन-प्रशंसा ।

वाञ्छा सज्जनसङ्गमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता ।
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्भयम् ॥
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले-
ष्वेते येषु वसंति निर्मल गुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥६२॥

सज्जनों की संगति की अभिलाषा, पराये गुणों में प्रीति, बड़ों के साथ नम्रता, विद्या का व्यसन, अपनी ही स्त्री में

रति, लोकनिन्दा से भय, शिव को भक्ति, मनको वश में करने की शक्ति और दुष्टों की संगति का त्याग—ये उत्तम गुण जिन में हैं, उन्हें हम प्रणाम करते हैं।

जिन पुरुषों में ये उत्तम गुण हैं, वे मनुष्य-रूप में देवता और इस भूतल की शोभा है।

सज्जनों की संगति में अनन्त लाभ हैं और दुर्जनों की संगति में अनन्त हानियाँ हैं। सज्जनों की संगति से बुरे भी भले हो जाते हैं और दुर्जनों की संगति से भले भी बुरे हो जाते हैं,—इन बातों का विचार करके बुद्धिमान मनुष्य सज्जनों की संगति करते हैं और दुर्जनोंकी छाया के पास भी नहीं जाते। सज्जन आप दुखी रहने पर भी पराया भला करते हैं। अर्जुनने स्वयं, घोर विपत्ति में भी, विराट की गौवें कौरवों से छुड़ा कर, राजा का भला किया। शिव जी स्वयं भिक्षाटन करते हैं; पर उनकी सहधर्म्मिणी जगत् को अन्न पूरती हैं। सज्जनों की बात पत्थर की लकीर होती हैं। वे जो कुछ मुँह से निकाल देते हैं, उसे पूरा करते ही हैं। राजा हरिश्चन्द्रने अगणित कष्ट भोगे, पर विश्वामित्र को जो कहा था, सो दे ही दिया। रामचन्द्रजी ने, स्वयं राज्यहीन वनवासी होने पर भी, विभीषण को तो राज्य दे ही दिया। सज्जन जिसे, हँसी में भी, अपना कह लेते हैं, उसे अपने ऊपर हज़ार-हज़ार कष्ट पड़ने पर भी नहीं त्यागते। चन्द्रमा क्षयी और कलंकी है तथा विष प्राणहारक है; पर शिवजी उन्हें नहीं त्यागते। सज्जन

ज़रा-ज़रा सी बातों पर रीझ कर दूसरों को निहाल कर देते हैं; उमापति गाल बजाने से ही सन्तुष्ट होकर मनुष्य को अभावहीन कर देते हैं; विष्णु भगवान् केवल तुलसी-पत्रों से ही रीझ कर भक्त के सारे मनोरथ पूरे कर देते हैं। पारख जी नामक एक महापुरुष ने अपने मन्दिर में झाड़ू देनेवाले को करोड़पति बना दिया। एक दिल्लगीबाज़ ने किसी महफिल में एक सेठ के दुपट्टे के पल्ले से नाचने वाली वेश्या के ओढ़ने का पल्ला बाँध दिया। सेठ ने वेश्या को इच्छानुसार धन देकर उसकी वेश्या-वृत्ति छुड़ा दी। सज्जनों के गुण कदाचित शेष जी भी न कह सकें, तब हमारे जैसे क्षुद्र मनुष्य की क्या सामर्थ्य? बुद्धिमान लोग इन बातों को जानते हैं, इसी से वे सज्जनों की ही संगति की अभिलाषा रखते हैं। तुलसीदासजी ने कहा है—

तुलसी सत्पुरुष सेइये, जब तब आवहिं काम ।
लंक विभीषण को दई, बड़े दुचित में राम ॥

जिस तरह उत्तम पुरुष सज्जनों की संगति की अभिलाषा रखते हैं; उसी तरह वे पराये गुणोंकी क़दर भी करते हैं, एवं माता पिता और गुरु प्रभृति बड़ों के आगे नम्र भाव से रहते हैं। इस में वे श्रवण, रामचन्द्र और कच प्रभृति आदर्श पुरुषों का अनुकरण करते हैं; अपने समय को हँसी-मज़ाक, ताश-गंजफे अथवा मादक पदार्थों के सेवन में नहीं बर्बाद करते। जीविका उपार्जन के कामों से जो समय बचता है, उसे

पुस्तकावलोकन में व्यतीत करते हैं; अपनी ही स्त्री से सन्तुष्ट रहते हैं, सुपने में भी पर-स्त्री का ध्यान नहीं करते; लोक-निन्दा से बहुत डरते हैं; वे समझते हैं, कि संसार जिसकी निन्दा करता है, वह जीता भी मरा है; इसलिये वे फूँक-फूँककर क़दम रखते हैं। वे इन्द्रियोंको अपने क़ाबूमें रखनेकी सामर्थ्य रखते हैं; क्योंकि जो इन्द्रियोंको वश में नहीं रख सकते, उन को पद-पद पर आपदा है; घोड़ों को वश में न रखने से जो गति गाड़ी और गाड़ी के बैठने वाले को होती है, वही गति मनुष्य के शरीर और आत्मा की होती है। जो इन्द्रियों को वश में रखता है, वही सच्चा बहादुर है। दुष्टों की संगति से वे बिल्कुल ही बचते हैं; क्योंकि कुसंग के समान हानिकारक और मनुष्य का अधःपतन कराने वाला और कोई काम नहीं है। जिन में ये सब उत्तम गुण हैं, वे नररत्न निस्सन्देह वन्दनीय है।

कुण्डलिया—*जाने परके गुण सदा, महत् पुरुष को संग।*
विद्या, अरु निज भारजा, तिनमें मनकों रंग॥
तिनमें मनकों रंग, भक्ति शिवकी दृढ़ राखै।
गुरु आज्ञा में नम्र रहै, खल संग न भाषै॥
ब्रह्मज्ञान चित माहिं, दमन इन्द्रिन सुख मानै।
लोकवादकी शंक, पुरुष ते नृप सम जानै॥६२॥

62, I salute the people in whom the following pure qualities find their residence:—A desire for the society of virtuous men, an appreciation for other people's merits, respect for elders, love of knowledge, fondness for their own wives, fear of disgrace, devotion to the god Shiva, power of self-control and avoidance of evil company.

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा।
सदसि वाक्पटुता युधिविक्रमः॥
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ।
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥ ६२॥

विपद्काल में धैर्य्य, ऐश्वर्य्य में क्षमा, सभा में वचन-चातुरी, संग्राम में पराक्रम, सुयश में अभिरुचि और शास्त्रों में व्यसन—ये गुण महापुरुषों में स्वभाव से ही होते हैं।

महात्मा पुरुष घोर विपद् में भी धैर्य्य नहीं त्यागते, विपद् में वे फौलाद से भी मज़बूत हो जाते हैं; कैसी भी आपदा उन्हें अधीर नहीं कर सकती; स्वयं विधाता भी उन्हें धैर्य्य-च्युत नहीं कर सकता। जिस तरह गरमीमें सरोवर सूख जाते हैं, पर सिन्धु अत्यन्त बढ़ता है; उसी तरह विपद्में नपुंसक घबरा जाते हैं, किन्तु महात्मा और भी दृढ़ हो जाते हैं—उन का साहस बढ़ जाता है। साहस के बल से, वे महाविपद् को भी पार हो जाते हैं।

महात्मा लोग समझते हैं कि मनुष्यके सुख और दुःख सम्पद और विपद् उसके पूर्व्वजन्मों के किये हुए कर्म्मों के फल हैं।

कर्मों के फल भोगने से कोई भी बच नहीं सकता। जो किया है, उस का फल भोगना ही होगा। विपत्ति और दुर्भाग्य का रोकना असम्भव है, फिर घबराने से क्या लाभ? घबराने या धैर्य त्यागने से विपत्ति बढ़ती है, घटती नहीं।

उनका ख़याल है, कि विपत्ति परमात्मा अपने प्यारों पर डालता है; विपत्ति रूप कसौटी पर ही वह अपने प्यारों के धैर्य और धर्म की परीक्षा करता है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर, वह अपने प्यारे को उचित पुरस्कार देता है। विपत्ति भयङ्कर सर्प है और उसके 'गुण सर्प'की मणिसे ज़ियादा क़ीमती नहीं, तो कम भी नहीं। विपत्ति में ही मनुष्य को अपने और पराये, हितु-मित्र प्रभृति का खरा-खोटापन मालूम होता है। इस समय स्त्री पुत्र बन्धु बान्धव और सेवक आदि जो साथ देते हैं, वे ही सच्चे समझे जाते हैं; सम्पदावस्था में तो शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। गोस्वामीजी ने कहा है—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपदकाल परखिये चारी॥

इन सब की परीक्षा के सिवा, मनुष्य विपद्काल में देश-देशान्तर में भ्रमण करता है, छोटे और बड़े सब से मिलता है और सब तरहके आदमियोंके व्यवहार और बर्ताव को देख कर नित्य नया अनुभव प्राप्त करता है। रात जितनी ही अँधेरी होती है, तारे उतने ही तेज़ी से चमकते हैं; विपद् जितनी ही भारी होती है, मनुष्य उतना ही अधिक गुणवान होता

62, I salute the people in whom the following pure qualities find their residences:—A desire for the society of virtuous men, an appreciation for other people's merits, respect for elders, love of knowledge, fondness for their own wives, fear of disgrace, devotion to the god Shiva, power of self-control and avoidance of evil company.

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा ।
सदसि वाक्पटुता युधिविक्रमः ॥
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ ।
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥ ६३ ॥

विपद्काल में धैर्य्य, ऐश्वर्य्य में क्षमा, सभा में वचन-चातुरी, संग्राम में पराक्रम, सुयश में अभिरुचि और शास्त्रों में व्यसन—ये गुण महापुरुषों में स्वभाव से ही होते हैं।

महात्मा पुरुष घोर विपद् में भी धैर्य्य नहीं त्यागते, विपद् में वे फौलाद से भी मज़बूत हो जाते हैं; कैसी भी आपदा उन्हें अधीर नहीं कर सकती; स्वयं विधाता भी उन्हें धैर्य्य-च्युत नहीं कर सकता। जिस तरह गरमीमें सरोवर सूख जाते हैं, पर सिन्धु अत्यन्त बढ़ता है; उसी तरह विपद्में नपुंसक घबरा जाते हैं, किन्तु महात्मा और भी दृढ़ हो जाते हैं—उन का साहस बढ़ जाता है। साहस के बल से, वे महाविपद् के भी पार हो जाते हैं।

महात्मा लोग समझते हैं, कि मनुष्यके सुख और दुःख सम्पद और विपद् उसके पूर्व्वजन्मों के किये हुए कर्म्मों के फल हैं।

कर्मों के फल भोगने से कोई भी बच नहीं सकता। जो किया है, उस का फल भोगना ही होगा। विपत्ति और दुर्भाग्य का रोकना असम्भव है, फिर घबराने से क्या लाभ? घबराने या धैर्य त्यागने से विपत्ति बढ़ती है, घटती नहीं।

उनका ख़याल है, कि विपत्ति परमात्मा अपने प्यारों पर डालता है; विपत्ति रूप कसौटी पर ही वह अपने प्यारों के धैर्य और धर्म की परीक्षा करता है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर, वह अपने प्यारे को उचित पुरस्कार देता है। विपत्ति भयङ्कर सर्प है और उसके गुण सर्प की मणि से ज़ियादा क़ीमती नहीं, तो कम भी नहीं। विपत्ति में ही मनुष्य को अपने और पराये, हितु-मित्र प्रभृति का खरा-खोटापन मालूम होता है। इस समय स्त्री पुत्र बन्धु बान्धव और सेवक आदि जो साथ देते हैं, वे ही सच्चे समझे जाते हैं; सम्पदावस्था में तो शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। गोस्वामीजी ने कहा है—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपदकाल परखिये चारी॥

इन सब की परीक्षा के सिवा, मनुष्य विपद्‌काल में देश-देशान्तर में भ्रमण करता है, छोटे और बड़े सब से मिलता है और सब तरह के आदमियों के व्यवहार और बर्ताव को देख कर नित्य नया अनुभव प्राप्त करता है। रात जितनी ही अँधेरी होती है, तारे उतने ही तेज़ी से चमकते हैं; विपद जितनी ही भारी होती है, मनुष्य उतना ही अधिक गुणवान होता

है। विपद् में ही मनुष्य के गुणों का प्रकाश होता है। विपद् निश्चय ही परमात्मा का शुभाशीर्वाद है। जिस तरह दिन के बाद रात और रात के बाद दिन होते हैं; उसी तरह सम्पद और विपदावस्थायें आती और जाती रहती हैं। सदा न सुख ही रहता है और न दुःख ही रहता है; इसलिये विपद् में मनुष्य को घबराना न चाहिये। समुद्र में जहाज़ के डूब जाने पर जो यात्री घबरा जाता है, वह निश्चय ही डूब जाता है; किन्तु जो धैर्य्य और साहस रखता है, वह परमात्मा की दया से बहुधा बच जाता है। धैर्य्यवान का विपद् कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। विपद् मनुष्य का धैर्य्य देखती है; जब उसे धैर्य्य में पक्का पाती है, तब आप उसके धैर्य्य से घबरा कर भाग जाती है। महात्मा लोग इन सब तत्त्व-पूर्ण बातों को जानते हैं; इसीलिये वह स्वभाव से ही धैर्य्यवान होते हैं और विपद् में धैर्य को कदापि नहीं त्यागते।

अयोध्यानाथ महाराजा रामचन्द्रजी पर कुछ कम विपत्ति नहीं पड़ी। राजतिलक होते-होते बनवास हुआ, पिता दशरथ का मरण हुआ, जननी से वियोग हुआ, सीता जैसी कोमलाङ्गी को लेकर भीषण वन और दुर्गम पर्वतों में भ्रमण करना पड़ा। वन में भी सीता का वियोग हुआ, पर वे ज़रा भी धैर्य्यच्युत नहीं हुए और इसीलिये महादुस्तर विपद् से पार होकर विजयी हुए। महाराजा नल पर कम

विपद् नहीं पड़ी। राज्य गया, रानी और सन्तान से वियोग हुआ, अन्न और वस्त्र के लिये तरसना पड़ा, पराई चाकरी करनी पड़ी ; पर वे नहीं घबराये ; इसीलिये शेष में उनकी विपद् भाग गई, रानी और राज्य सभी मिल गये। पाण्डवोंकी तरह कौन विपद् सहेगा ? बेचारों पर विपद्-पर-विपद् पड़ती रहीं। धनैश्वर्य्य गया, भरी सभा में घोर अपमान हुआ, वन-वन में मारे-मारे डोले ; भिक्षा-वृत्ति पर भी जीवन निर्वाह करना पड़ा ; पर धैर्य्य के बल से सारी विपदाओं को काटकर, भगवान् कृष्ण की दया से, वे युद्ध में विजयी हुए। महाराजा हरिश्चन्द्र का राज्य गया, स्त्री और पुत्र से वियोग हुआ, पुत्र का मरण हुआ, रानी को पराई दासी बनना पड़ा, स्वयं आपने श्मशान पर चाण्डाल की चाकरी की ; पर आपने पुत्रके मरने पर भी अपने धैर्य्य और धर्मको न छोड़ा ; इससे भगवान् आप पर प्रसन्न हुए ; आपकी सारी विपद् हवा हो गई। मनुष्यों को इन महात्माओंकी विपद्-कहानियोंसे शिक्षा ग्रहण कर, विपद् में कदापि धैर्य्यच्युत न होना चाहिये।

महात्मा लोग विपद्में जिस तरह कठोर हो जाते हैं; उसी तरह सम्पद में वे एकदम नम्र बने रहते हैं और धनैश्वर्य्य-शाली होकर इतराते नहीं ; अभिमान के वश होकर किसी को कष्ट नहीं देते। इस अवस्था में उनकी सहनशीलता उलटी बढ़ जाती है। क्षमा और नम्रता की वे मूर्त्तियाँ बन जाते हैं; क्योंकि वे इस अवस्था को भी विपदावस्था की तरह चिर-

स्वायी नहीं समझते। महापुरुषों में क्षमाशीलता स्वभाव से ही होती है ; किन्तु सर्प-समान दुष्टों में क्षमा नहीं होती। धैर्य्य वीरों में होता है ; नपुंसकों में नहीं होता। सम्पद पाकर दुष्ट लोग नदी-नालों की तरह इतरा जाते हैं ; पर महात्मा लोग समुद्र की तरह गम्भीर बने रहते है।

वृन्द कवि ने कहा है—

भले बंस को पुरुष सो, निहुरे बहु धन पाय।
नवै धनुष सद्‌वंस को, जिहिं द्वै कोटि दिखाय॥

सभा-चातुरी भी एक बड़ा गुण है। सभाचतुर मनुष्य अपनी वचन-चातुरी से सब को मुग्ध कर लेता है। नीति में लिखा है, जो सुन्दर वचन रूपी द्रव्य का संग्रह नहीं करता, वह परस्परके आलाप रूपी यज्ञ में क्या दक्षिणा दे सकता है? वचनचातुरी से देवता राज़ी होते हैं। वचनचातुरी से शत्रु भी वश में हो जाते हैं। सभाचतुर पुरुष हज़ारों-लाखों विपक्षियों को भी मूक बना देता है। इच्छा न होने पर भी, विपक्षियों को उस की इच्छानुसार काम करना पड़ता है। यों तो सभी बोलते चालते और काम करते हैं ; पर चतुरों का बोलना चालना कुछ और ही होता है। सभा-चतुर जो कहता है, वह सप्रमाण कहता है और इस ढँग से कहता है, कि सभी उसकी बातों पर लट्टू हो जाते हैं। कहा है—

श्रवण नयन मुख नासिका, सब ही के इक ठौर।
हँसिवो बोलिवो देखिवो, चतुरन कौ कछु और॥

करिये सभा सुहावते, मुखते बचन प्रकाश ।
बिन समझे शिशुपाल को, बचनन भयो बिनाश ॥

महात्मा लोग जीवन को एक न एक दिन अवश्य नाश होनेवाला समझते हैं ; उन्हें धन और प्राणों का मोह नहीं होता। वे जीवन का मोह त्याग कर और निर्भय होकर युद्ध करते हैं और अपना पराक्रम खूब दिखाते हैं। वे आगे पैर रख कर पीछे पैर नहीं देते। कर्ण, अर्जुन और अभिमन्यु प्रभृति महापुरुषों के पराक्रम की बात "महाभारत" पढ़ने वालों से छिपी नहीं है। कहा है—

रन सन्मुख पग सूर के, बचन कहैं ते सन्त ।
निकस न पाछे होत हैं, ज्यों गयन्द के दन्त ॥

महात्मा लोगों की रुचि सदा सुयश में ही रहती है ; अपयश और मौत में वे भेद नहीं समझते। उनका ख़याल है कि, बुरा ज़ख़्म अच्छा हो जाता है, पर कुनाम सुनाम नहीं होता। इसी भय से वे जो काम करते हैं, ऐसा ही करते हैं, जिस से उन के सुनाम में बट्टा न लगे और निशि-दिवस उनका सुयश बढ़े।

महात्मा लोग अपना एक क्षण भी गप-शप, कलह-विवाद या अन्य बुरे कामों में नष्ट नहीं करते। उनका सारा समय ग्रन्थों के देखने, पढ़ने और मनन करने में ही जाता है ; जबकि मूर्खों का समय सोने, झगड़ने और अन्य निन्दनीय कामों में नष्ट होता है।

सारांश यह है कि, महापुरुषों की तरह मनुष्य को विपद् में धैर्य्य रखना चाहिये, ऐश्वर्य्यमें विनीत भाव धारण करना चाहिये, सभा में वाक्चातुरी दिखानी चाहिये, युद्ध में वीरता प्रकाशित करनी चाहिये, सदा सुयश की प्राप्ति कराने वाले काम करने चाहियें और शास्त्रावलोकन के सिवा और व्यसन न रखना चाहिये। सत्पुरुषों में तो ये सब गुण स्वभाव से ही होते हैं ; पर दूसरे लोगोंको भी उनका अनुकरण करना चाहिये ; क्योंकि इस राह पर चलने से सदा कल्याण होता है ।

दोहा-विपत धीर सम्पति छमा, सभा माहिं शुभ बैन ।

युधि विक्रम यश माहिं रुचि, ते नरवर गुण ऐन ॥६३॥

63. Fortitude in distress, gentleness in prosperity, cleverness of speech in gatherings, gallantry in war, liking for renown and fondness for the study ofe Vedas are the natural characteristics of great men.

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः ।
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः ॥
अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभवसारा परकथाः ।
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥ ६४ ॥

दान को गुप्त रखना, घर आये का सत्कार करना, पराया भला करके चुप रहना, दूसरों के उपकार को सब के सामने

कहना, धनी होकर गर्व न करना और पराई बात निन्दा-रहित कहना—ये उत्तम गुण महात्माओं में स्वभाव से ही होते हैं।

महात्माओं में तो ये गुण स्वभाव से होते ही हैं, उन्हें कोई इन की शिक्षा नहीं देता; पर अन्य लोगों को भी उनका अनुकरण करना चाहिये ।

दान करके किसी से कहना, अख़बारों में छपवाना अथवा और तरह डौंडी पिटवाना अच्छा नहीं। इस तरह से जो दान किया जाता है, उस दान का मूल्य घट जाता है; इसी से वास्तविक दानी अपने दान की ख़बर अपने दूसरे हाथको भी नहीं पड़ने देते। अमेरिकाके धनकुबेर महादानी कारनेगी, इस ज़माने के कर्ण, करोड़ों का दान करके भी किसी को नहीं जनाते थे। उन्होंने अपने धन से हज़ारों दुखियाओं के दुःख दूर कर दिये, लाखों के चिक ज़रा-ज़रासी प्रार्थनाओं पर काट दिये और साथही उनसे कह दिया—"ख़बरदार! किसीसे भी यह बात न कहना।" इस अभागे भारत में भी, पहले, ऐसे ही अनेक दानी महात्मा जन्म लेते थे, पर अब तो दान पीछे करते हैं और समाचारपत्रों में ख़बर पहले निकल जाती है। आजकल इस देश के धनी ऐसी ही जगह अपनी रक़में दान करते हैं, जहाँ से उन्हें नाम होने की या कोई पदवी मिलने की आशा होती है। ऐसा दान सच्चा दान नहीं। इस दान का फल दाता को पूरा नहीं मिलता। कहा है :—

सारांश यह है कि, महापुरुषों की तरह मनुष्य को विपद् में धैर्य्य रखना चाहिये, ऐश्वर्य्यमें विनीत भाव धारण करना चाहिये, सभा में वाक्‌चातुरी दिखानी चाहिये, युद्ध में वीरता प्रकाशित करनी चाहिये, सदा सुयश की प्राप्ति करानेवाले काम करने चाहियें और शास्त्रावलोकन के सिवा और व्यसन न रखना चाहिये। सत्पुरुषों में तो ये सब गुण स्वभाव से ही होते हैं ; पर दूसरे लोगोंको भी उनका अनुकरण करना चाहिये ; क्योंकि इस राह पर चलने से सदा कल्याण होता है।

दोहा-विपत धीर सम्पति छमा, सभा माहिं शुभ बैन।
युधि विक्रम यश माहिं रुचि, ते नरवर गुण ऐन ॥६३॥

63. Fortitude in distress, gentleness in prosperity, cleverness of speech in gatherings, gallantry in war, liking for renown and fondness for the study ofe Vedas are the natural characteristics of great men.

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः।
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः॥
अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभवसारा परकथाः।
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम्॥ ६४॥

दान को गुप्त रखना, घर आये का सत्कार करना, पराया भला करके चुप रहना, दूसरों के उपकार को सब के सामने

कहना, धनी होकर गर्व न करना और पराई बात निन्दा-रहित कहना—ये उत्तम गुण महात्माओं में स्वभाव से ही होते हैं।

महात्माओं में तो ये गुण स्वभाव से होते ही हैं, उन्हें कोई इन की शिक्षा नहीं देता; पर अन्य लोगों को भी उनका अनुकरण करना चाहिये।

दान करके किसी से कहना, अख़बारों में छपवाना अथवा और तरह डौंडी पिटवाना अच्छा नहीं। इस तरह से जो दान किया जाता है, उस दान का मूल्य घट जाता है; इसी से वास्तविक दानी अपने दान की ख़बर अपने दूसरे हाथको भी नहीं पड़ने देते। अमेरिकाके धनकुबेर महादानी कारनेगी, इस ज़माने के कर्ण, करोड़ों का दान करके भी किसी को नहीं जनाते थे। उन्होंने अपने धन से हज़ारों दुखियाओं के दुःख दूर कर दिये, लाखों के चेक ज़रा-ज़रासी प्रार्थनाओं पर काट दिये और साथही उनसे कह दिया—"ख़बरदार! किसीसे भी यह बात न कहना।" इस अभागे भारत में भी, पहले, ऐसे ही अनेक दानी महात्मा जन्म लेते थे, पर अब तो दान पीछे करते हैं और समाचारपत्रों में ख़बर पहले निकल जाती है। आजकल इस देश के धनी ऐसी ही जगह अपनी रक़में दान करते हैं, जहाँ से उन्हें नाम होने की या कोई पदवी मिलने की आशा होती है। ऐसा दान सच्चा दान नहीं। इस दान का फल दाता को पूरा नहीं मिलता। कहा है :—

तन धन महिमा धर्म जेहि, जाकहँ सह अभिमान ।
तुलसी जियत बिडम्बना, परिणामहु गति जान ॥ तुलसी ॥

महापुरुष पराया भला करके किसी से कहते नहीं; वे पराया कष्ट निवारण करके चुप रहने में ही अपनी शोभा समझते हैं। जो परोपकार करके कहता फिरता है, उसका उपकार नष्ट हो जाता है। उपकार करके गाते फिरने से उपकार न करना ही भला है। अँगरेज़ लोग भी उपकार करके जगत् जनाने वाले को सत्पुरुष नहीं समझते। महात्माओं में तो यह उत्तम गुण स्वभाव से ही होता है; अन्य लोगों को भी महात्माओं का अनुकरण करना चाहिये। महात्मा अर्जुन ने विराट् राजा का महत् उपकार करके भी, अपनी ज़बानसे यह नहीं कहा कि, यह काम मैंने किया है। उसका सेहरा उत्तर के सिर ही बाँधना चाहा; पर स्वयं उत्तर ने राजा से सारा हाल कह दिया। कहा है—

बड़े बड़ेई काम कर, आप सिहावत नाहिं ।
जय जस उत्तर को दियो, पथ विराट के माहिं ॥

सत्पुरुष घर आये शत्रु का भी उपकार करते हैं। अपने घर में जो कुछ होता है, उसी से उसका सत्कार करते हैं। अगर कुछ भी पास नहीं होता, तो उसे बैठने को कुशों का आसन देते हैं, शीतल कूप-जल पिलाते हैं और मीठी-मीठी बातों से उसका श्रम दूर करते हैं। आप नहीं खाते, अतिथि को खिलाते हैं। आप ज़मीन पर सो रहते हैं, पर अतिथि

को पलँग पर सुलाते हैं। यह सत्पुरुषों का सहज स्वभाव होता है। और लोगों को भी उनका अनुकरण करना चाहिये। हमारे शास्त्रों में लिखा है।

अपूजितोऽतिथिर्यस्य, गृहाद्याति विनिश्वसन्।
गच्छन्ति विमुखास्तस्य, पितृभिः सह देवताः॥

"जिसके घर से अपूजित अतिथि साँस लेता हुआ चला जाता है, उसके यहाँ से देवता पितरों सहित विमुख होकर चले जाते हैं।" अगर गृहस्थ सूर्य्य डूबने के बाद आये हुए अतिथि की सेवा करता है, तो वह देवता होता है—"आइये" कहने से अग्नि, आसन देने से इन्द्र, चरण धोने से पितर और अर्घ देने से शिवजी प्रसन्न होते है। घर पर कोई भी आवे, उसकी खातिर करनीही चाहिये। यथासामर्थ्य खान-पान वस्त्र आदि से उसका कष्ट और श्रम निवारण करना चाहिये। देखिये, वृक्ष अपने काटने वाले के सिर पर भी छाया करता है। घर पर आये हुए बालक, वृद्ध, युवा सभी की पूजा करनी चाहिये; क्योंकि अभ्यागत सबका गुरु होता है। उत्तम वर्ण वालेके घर आया हुआ नीच वर्णका अतिथि भी यथायोग्य पूजनीय होता है। जिसके घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है, वह अपने किये पाप उसे देकर उसका पुण्य ले जाता है। एक दिन भारत में अतिथि-सत्कार की बड़ी महिमा थी, पर अब वह बात नहीं। देश के जिन भागों में नई सभ्यता की रोशनी

नहीं पहुँची है, वहाँ के लोग अब भी पुरानी चाल पर चलते हैं। यह बात राजपूतानेके उन हिस्सों में, जिन में पुराने ही ढँग के मनुष्य हैं, अब भी है। हमने सिन्ध और राजपूताने के मरुस्थल में स्वयं परिभ्रमण किया है। जब हम दिन-भर चल कर शाम के वक्त किसी गाँवमें पहुँचते थे, तो वहाँ के ग़रीब लोग हमें यथा-सामर्थ्य सब तरह से सुखी करने में ही अपने को धन्य समझते थे। कहा है—

जो घर आवत शत्रुहु, सुजन देत सुख चाहि।
ज्यों काटे तरु मूल कोउ, छाँह करत वह ताहि॥

महापुरुष अपने किये उपकारों को तो छिपाते हैं; पर दूसरा उनके साथ जो ज़रासी भी भलाई करता है, उसको सौ गुनी कर के औरों से कहते हैं। यह सामर्थ्य सत्पुरुषों में ही होती है। नीच लोग तो अपने उपकारी के उपकार को छिपाने की ही चेष्टा किया करते हैं; क्योंकि संकीर्ण-हृदय लोग इसमें अपनी मानहानि समझते हैं। किसीने कहा है—

"Man is, beyond dispute, the most excellent of created beings, and the vilest animal is a dog; but the sages agree that a grateful dog is better than an ungrateful man".

मनुष्य, निस्सन्देह, सब प्राणधारियों में उत्तम है और कुत्ता सब से नीच है, लेकिन बुद्धिमान कहते हैं, उपकार न मानने वाले मनुष्य से कुत्ता अच्छा है। शास्त्रों में लिखा है—मित्रद्रोही, कृतघ्न, भ्रूणहत्या करनेवाले और विश्वासघाती

सदा रौरव नरकमें रहते हैं; इसलिये पराये किये उपकार को कभी न भूलना चाहिये और अपने उपकारी को जगह-जगह प्रशंसा करनी चाहिये। कहा है—

तिनसों विमुख हूजिये, जे उपकार समेत।
मोर ताल जल पान करि, जैसे पीठ न देत॥
खल नर गुण माने नहिं, मेटहिं दाता ओप।
जिमि जल तुलसी देत रवि, जलद करत तेहि लोप॥

कहते हैं, धन से किसे गर्व न हुआ? किस कामी का दुःख कम हुआ? किसके मन को स्त्रियों ने खण्डित न किया? कौन राजा का प्यारा हुआ? कौन काल के वश नहीं हुआ? कौन याचक बड़ा हुआ? दुष्ट के संसर्गसे कौन सकुशल बचा? महात्मा तुलसीदासजी ने भी कहा है—

"प्रभुता पाय काहि मद नाहीं?"

यह बात साधारण लोगोंके सम्बन्ध में ठीक है। सत्पुरुषों को धन से गर्व नहीं होता। धनैश्वर्य पाकर, सत्पुरुष फलदार वृक्षों की तरह उलटे नीचेको झुक जाते हैं; अर्थात् नम्र हो जाते हैं। वे इस बात को जानते हैं कि धन, यौवन और जीवन असार और चञ्चल हैं। धन गेंद की तरह हाथमें आता है और गेंद की तरह शीघ्र ही हाथ से निकल जाता है। जो आज ऊँचा है, उसे कल नीचे गिरना ही होगा। इस जहानमें कितने ही बाग़ लग-लग कर सूख गये, आज उनका

नामोनिशान भी नहीं; कितने ही दरिया चढ़े और उतर गये। संसार की परिवर्तनशीलता का ज्ञान होने की वजह से ही, वे सारी पृथ्वी के अकेले स्वामी होने पर भी, मुतलक़ घमण्ड नहीं करते और जो ऐश्वर्य्यशाली होने पर गर्व नहीं करते, वे निस्सन्देह महात्मा और इस पृथ्वी के भूषण हैं।

कहा है—

सधन सगुण सधरम सगण, सुजन सुसबल महीप।
तुलसी जे अभिमान बिन, ते त्रिभुवन के दीप॥

महात्मा पुरुष अगर किसी का ज़िक्र करते हैं, तो उसमें निन्दाव्यञ्जक वाक्य तो क्या—एक बुरा शब्द भी नहीं आने देते। उनको किसीसे ईर्षा-द्वेष नहीं होता, इसलिये वे किसी का दिल दुखाने वाली बात नहीं कहते। पराया दिल दुखाने को वे महापातक समझते हैं। उनकी ज़बान और क़लम से, स्वप्न में भी किसी की निन्दा की बात नहीं निकलती। महात्माओं को दूसरे में दोष दीखते ही नहीं। दोष उन्हींको दीखते हैं, जिनके हृदय स्वयं मलीन होते हैं और जो परछिद्रान्वेषणकी फ़िक्रमें रहते हैं। जो स्वयं ख़राब होते हैं, उन्हींको दूसरे ख़राब मालूम होते हैं। धूँधले आइने में ही चेहरा ख़राब दीखता है। धुँधलकेमें स्पष्ट लिखा हुआ भी अस्पष्ट और अपाठ्य दीखता है। शेली महाशय ने कहा है—

"जो ग्रन्थकारों की धूल उड़ाते हैं, उनमें अधिकांश लोग मूर्ख और पर-गुण-द्वेषी होते हैं।" परगुणद्वेषी के सिवा पर-

निन्दा कौन करेगा ? महापुरुष जो कहते हैं, वह इस तरह कहते हैं, जिससे किसी के दिलमें चोट न लगे और उन्हें कोई निन्दक न कह सके। दूसरे का दिल दुखाने वाली बात सच भी हो, तोभी न कहनी चाहिये।

कहा है—

पर परिवादः परिषदि न कथञ्चित परिडतेन वक्तव्यः।
सत्यमपि तन्न वाच्यं यदुक्तम सुखावहं भवति॥

सभा में बुद्धिमान को पराई निन्दा किसी हालत में भी न करनी चाहिये। जो बात कहने से दूसरे को बुरी लगे, वह सत्य भी हो तथापि न कहनी चाहिये।

और भी कहा है—

पर को अवगुण देखिये, अपनो दृष्टि न होय।
करै उजेरो दीप पै, तरे अँधेरो जोय॥
दोष भरी न उचारिये जदपि यथारथ बात।
कहै अन्ध को आँधरो, मान बुरौ सतरात॥

छप्पय-दियो जनावत नाहिं, गये घर कर सत आदर।
हितकर साधत मौन, कहत उपचार वचन वर॥
काहू को दुख होय, कथा वह कबहूँ न भाषत।
सदा दान सों प्रीति नीतियुत सम्पति राखत॥

यह खड्गधार व्रत धारके, जे नर साधत मन वचन।
तिनकौ सुनहु यह लोकमें, पूर रह्यो यशही रचन ॥६४॥

64 To give charity in secret, to honour a guest, to be silent after doing good to others, to speak openly of the good done by others, to be free from vanity in spite of wealth and to speak of others without the use of any bad remarks (are the virtues generally possessed by good man). (I wonder) who has taught these good men to observe such a difficult vow which is as sharp as the edge of a sword.

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता।
मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम् ॥
हृदि स्वस्था वृत्तिः श्रुतमधिगतैकव्रतफलं।
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मंडनमिदम् ॥ ६५ ॥

बिना ऐश्वर्यके भी महापुरुषोंके हाथ दानसे, मस्तक गुरुजनों को सिर झुकाने से, मुख सत्य बोलने से, जय चाहनेवाली दोनो भुजायें अतुल पराक्रम से, हृदय शुद्ध वृत्तिसे और कान शास्त्रों से शोभा के योग्य होते हैं।

मनुष्य के और आभूषण धन होने पर होते हैं; पर सत्पुरुषों को निर्धनावस्थामें भी उनके हाथ दान से, मस्तक बड़ों को दण्डवत-प्रणाम करने से, मुँह सत्यभाषण से, भुजायें पराक्रम से, हृदय शुद्धता से और कान शास्त्र सुनने से, उनके

भूषण होते हैं; अर्थात् वे धन न होने पर भी, इन उत्तम कामों को करते हैं।

छप्पय-करन करत ते दान, शीस गुरु चरणन राखत।
मुखसों बोलत सांच, भुजन सों जय अभिलाषत॥
चित की निर्मल वृत्ति, श्रवण में कथा श्रवणरति।
निशदि[illegible] पर उपकार सहित, सुन्दर जिनकी मति।
ते विना साज सम्पत तऊ, सोहत सकल सिंगार तन।
उनको जु संग तिन देह प्रभु, तो यह सुधरे चपल मन॥६५॥

65 The hands become praiseworthy by charity, the head by bowing down before elders, the mouth by speaking the truth, both the arms by display of valour in battle, the mind by calm thinking and the ears by listening to the knowledge of scriptures. The foregoing are the ornaments of those great by nature even without the possession of wealth.

संपत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम्॥
आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम्॥६६॥

सम्पत्ति-काल में महापुरुषों का चित्त कमल से भी कोमल रहता है और विपद्-कालमें वह पर्वत को महान शिला को तरह कठोर हो जाता है।

सम्पदावस्था में मनुष्य जितना ही नम्र रहे उतना ही

अच्छा। इस अवस्था में नम्रता और सरलता से मनुष्य की शोभा होती है और विपद्-काल में मनुष्य जितनाही कठोर होता है, जितना ही धैर्य्यावलम्बन करता है, उतनी ही उसकी बड़ाई होती है। जो विपद् में घबराता है, उसको विपद् घबराती है। कठोर होने से ही विपद् आसानी से कट जाती है। जो विपद् में पड़ कर कड़ा नहीं होता, सब कुछ सहने को तैय्यार नहीं होता, मोह से खाली रोता है, उसका रोना ही बढ़ता है। उपाय करने और विषाद त्यागने के सिवा विपद् की और दवा नहीं। महापुरुष सम्पद और विपद् दोनों अवस्थाओं को चिरस्थायी नहीं समझते; उन्हें गाड़ी के पहियों की तरह घूमती हुई समझते हैं; इसलिये वे सम्पद में न तो फूलते हैं और न इतराते हैं और विपद् में न रोते हैं न घबराते हैं। जो नम्र और सरल होते हैं, वे आपद में विकार-ग्रस्त नहीं होते।

सोरठा–सतपुरुषन की रीति, सम्पत् में कोमलहिं मन।

दुखहू में यह नीति, बज्रसमानहिं होत तन ॥६६॥

66 In prosperity the heart of the great becomes gentle like a lotus-flower, while in calamity it is hardened like the rock of a great mountain

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते।

मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते॥

स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते।
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणाः संसर्गतो देहिनाम् ॥ ६७॥

गरम लोहे पर जल की बूँद पड़ने से उस का नाम भी नहीं रहता; वही जल की बूँद कमल के पत्ते पर पड़ने से मोती सी हो जाती है और वही जलकी बूँद स्वाति नक्षत्र में समुद्र की सीप में पड़ने से मोती हो जाती है। इस से सिद्ध होता है, कि संसार में अधम, मध्यम और उत्तम गुण प्रायः संसर्ग से ही होते हैं।

निस्सन्देह अधम, मध्यम और उत्तम गुण मनुष्य में प्रायः संसर्ग या सुहबत से ही होते हैं। यदि संसर्ग अधम होता है, मनुष्य अधम हो जाता है और यदि संसर्ग उत्तम होता है, तो मनुष्य उत्तम हो जाता है।

तवे बुन्द ह्वै छीण, कमलपत्र जे सरस हैं।
मुक्ता सीपहिं कीन, यान मान अपमान है ॥६७॥

67 No trace is left of a drop of rain fallen on red-hot iron. The same drop, fallen on a lotus-leaf (in the shape of dew) looks beautiful like a pearl. (Again) the same is transformed into a genuine pearl when it falls into a sea-shell at the time of Swati (nakshatra). Generally the evil, ordinary or good qualities of men are acquired in accordance with the kind of society they keep.

यः प्रीणयेत्सुचरितैः पितरं स पुत्रो।
यद्भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम्॥
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं य-।
देतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते॥ ६८॥

अपने उत्तम चरित्र से पिता को प्रसन्न रक्खे वही पुत्र है, अपने पति का सदा-सर्वदा भला चाहे वही स्त्री है और जो सम्पद और विपद्—दोनो अवस्थाओं में एकसा रहे वही मित्र है। जगत् में ये तीनों भाग्यवानों को ही मिलते हैं।

यों तो पुत्र प्रायः सभी के होते हैं; पर जो पुत्र सदाचारी है, अच्छे चालचलन वाला है, कुकर्मों से बचने वाला है, पिता-माता की सेवा करने वाला और उनकी आज्ञा में रहने वाला है, वही पुत्र है। वैसे ही पुत्र के माता-पिता पुत्रवान हैं। असदाचारी—बुरे चालचलन वाला, माता-पिता की बात न सहने वाला, उनकी आज्ञा न पालन करने वाला और अपने कुकर्म से कुल में दाग़ लगाने वाला पुत्र, पुत्र नहीं—शत्रु है।

प्रायः सभी लोगों के भार्य्यायें होती हैं; पर वास्तविक स्त्री वही है, जो पतिव्रता और पतिपरायणा है तथा पतिके अनुकूल चलने वाली, छाया की तरह उसके साथ रहने वाली और पति के दुःख में दुखी और पति के सुख में सुखी रहने वाली है एवं हर क्षण पति की शुभ चिन्तना करने वाली

है। जो स्त्री व्यभिचारिणी, कुलटा या असती है; जो हर दम कलह करने वाली और क्रोधमुखी है; जो पति को कष्ट देती, उसकी इच्छानुसार नहीं चलती, और उसकी अशुभ चिन्तना करती है, वह स्त्री—स्त्री नहीं; वह तो पति की शत्रु अथवा साक्षात् मृत्यु है।

मित्र भी बहुत लोगों के होते हैं। जिसके पास दो पैसे होते हैं, उसके अनेक खुशामदी मित्र बन बैठते हैं। जबतक पैसा देखते हैं, मौज उड़ाने के सामान देखते हैं, खूब गुलछर्रे उड़ते हैं, तबतक वे मित्र बने रहते हैं; लेकिन ज्योंही पैसोंका अभाव या दरिद्र देखते हैं, कि आजकलके मित्र नौ दो ग्यारह होते हैं। जो ऐसों को मित्र समझते हैं, वे बड़ी गलती करते और धोखा खाते हैं। इन लोगों को स्वार्थी या मतलबी कहना चाहिये। मित्र तो वही होता है, जो सुदिन और दुर्दिन—अच्छे दिन और बुरे दिन—सम्पद और विपद दोनों में ही एकसा रहता है अथवा विपद् में स्नेह की मात्रा और भी बढ़ा देता है। ऐसा मित्र न हमें मिला और न हमने किसी और के ही देखा। हां, मतलबी यार हमें भी बहुत मिले और अन्य लोगों को भी। बनी में साथ रहनेवाले और बिगड़ी में अलग हो जानेवाले नीच हमने बहुत देखे। कहा है—

प्रारम्भे कुसुमाकरस्य परितो यस्योल्लसन्मंजरी-
पुञ्जे मञ्जुल गुञ्जितानि रचयंस्तानातनोरुत्सवान्।

मैत्री करनी चाहिये, नगर में बसना चाहिये और किसी सुन्दरी नारी का पाणिग्रहण कर उससे विलास करना चाहिये। अगर मनुष्य संसार की असारता से विरक्त होकर वन में रहे, तो उसे शिवजी की भक्ति और आराधना करनी चाहिये, किसी तपस्वी से मैत्री करनी चाहिये, वन में रहना चाहिये और कन्दरा—गुफ़ा से विलास करना चाहिये।

अत्यागी और त्यागी—गृहस्थ और संन्यासी दोनों के लिये योगिराज ने क्या ही उत्तम उपदेश दिया है! संसार में रहने वाले, गृहस्थ के लिये कृष्ण की भक्ति, राजा की मैत्री, नगर का निवास और सुन्दरी नारी से विलास—चारों ही बातें बड़ी उत्तम हैं। इस तरह करने से अत्यागी—गृहस्थ को दोनों लोकोंमें सुख होता है। भगवान् कृष्ण की अनन्य भक्ति करने से मनुष्य के सारे मनोरथ पूरे होते हैं; कोई आपदा पास नहीं आती और यदि आती भी है, तो भगवान की कृपा से हवा से बादलों की तरह उड़ जाती है। लाख-लाख दुर्जन शत्रु मिलकर भी, कृष्ण के प्यारे का बाल भी बाँका नहीं कर सकते। कृष्ण की कृपा होने से लक्ष्मी की कृपा होती है। पति जिसे चाहता है, स्त्री भी उसे प्यार करती है। भगवान् कृष्ण की भक्ति का फल, इस कलिकाल में भी, हाथों-हाथ मिलता है, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। इन पंक्तियों के लेखक ने इस का स्वयं अनुभव किया है। बहुत से लोग कहा करते हैं, कि गृहस्थी के जंजाल में भगवान् की भक्ति हो ही नहीं

सकती । जो ऐसा कहते हैं, ग़लती करते हैं । मनुष्य, गृहस्थी में रह कर भी, परमात्माकी भक्ति कर सकता है । मनुष्य को चाहिये, वाणिज्य-व्यवसाय नौकरी-चाकरी आदि संसारी काम करता रहे, पर मन को प्यारे कृष्ण में रक्खे । इस तरह शरीर से जगत् के काम-धन्धे करने और मन को परमात्मा में रखने से मनुष्य को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थों की प्राप्ति होती है । माया में फँसा हुआ चञ्चल मन मुकुन्द के चरण-कमलों में कैसे लग सकता है? स्वामी रामकृष्ण परमहंस कहते हैं—"व्यभिचारिणी स्त्री घरके सभी काम-काज करती रहती है, पर उसका मन हर क्षण अपने यार में रहता है । गाय जगह-जगह घास चरती फिरती है, पर मन को अपने बच्चे में रखती है । स्त्रियाँ धान या बाजरा वगैरः ओखली में डालकर कूटा करती हैं, उस समय एक हाथ से मूसल चलाती हैं और दूसरे से धान को ठीक करती जाती हैं । अगर उस समय घर का कोई आदमी या पड़ोसिन आ जाती है, तो वे धान भी कूटती जाती हैं और बातें भी करती रहती हैं । अगर उस समय बालक रोने लगता है, तो उसे दूध भी पिलाती जाती हैं ; पर उनका ध्यान मूसल ही में रहता है । अगर बातों में उनका ध्यान ज़रा भी मूसल से हट जाय, तो उनके हाथ के पलस्तर उड़ जायँ, फौरन मूसल उनके हाथ पर ही पड़े ।" स्त्रियाँ तीन-तीन जेहर पानी की सिर पर धर कर, अपनी साथिनों के साथ इठलाती और बातें करती

राह में चलती हैं। अगर राह में किसी कुलटा का यार मिल जाता है, तो वह सिर पर घड़ेको रक्खे हुए हँस-हँस कर और मटक-मटक कर खूब बातें करती हैं, पर उसके घड़े का पानी उछल कर उसके कपड़े नहीं भिगोता—इसका क्या कारण है? कारण यही है, कि वह हँसती मटकती और बातें अवश्य करती है, पर उसका मन अपने सिर पर रक्खे हुए घड़े से ज़रा भी नहीं हटता। बस, इसी तरह संसारी काम करता हुआ भी, मनुष्य भगवान् की सच्ची भक्ति कर सकता है। स्त्री रखने, बालबच्चों का पालन-पोषण करने और अन्यान्य सुकर्म करने से इष्टसिद्धि में ज़रा भी गड़बड़ नहीं होती।"

पितरों के पिण्डदान की व्यवस्था के लिये पुरुषको सुन्दरी से विवाह करके सन्तान पैदा करनी चाहिये। सुन्दरी स्त्री के साथ शादी करने की बात इसलिये लिखी गई है, कि स्त्री के सुन्दरी होने से पराई स्त्री पर मन नहीं जाता और सन्तान भी स्वरूपवान् होती है। नगर में रहने की बात इसलिये लिखी है, कि गृहस्थ को चिकित्सक, साहूकार, कर्म-काण्डी ब्राह्मण और खाद्य सामग्री एवं वस्त्र प्रभृति की ज़रूरत पड़ती रहती है और ये सब शहरमें आसानी से ज़रूरत के समय मिल जाते हैं। राजा के साथ मैत्री करने की बात इस लिये लिखी है, कि राजाके साथ मैत्री रहने से पुरुष को धन सञ्चय में सहायता मिलती है, लोगों पर प्रभाव पड़ता है और

सम्मान मिलता है। राज-सम्मान अमृत के समान माना गया है और है भी ठीक। भाग्यवान् पुरुष ही राजसम्मान लाभ करते हैं। कहा है—

> अमृतं शिशिरे वह्निरमृतं प्रियदर्शनम् ।
> अमृतं राजसम्मानममृतं क्षीरभोजनम् ॥

शीतकाल में अग्नि अमृत है, प्यारे का दर्शन अमृत है, राजसम्मान अमृत है और खीर का भोजन अमृत है।

अगर मनुष्य के स्त्री न हो, हो तो कुलटा और कलह-कारिणी हो, लक्ष्मी की कृपा न हो, राजा से भी मैत्री न हो; तो उसे भूल कर भी गृहस्थाश्रम में रहकर अपना दुष्प्राप्य मनुष्य-जीवन नष्ट न करना चाहिये। सब आशा-तृष्णा त्याग कर वन में रहना चाहिये। वनमें अकेले रहने से, मनुष्य का मन सब ओर से हट कर प्रभु के पदपंकजों में ही झुकेगा; क्योंकि एकान्तवासी को मन के विकृत करने वाले पदार्थ—शिकार, ताश चौपड़ आदि खेल, दिन में सोना, पर-निन्दा, स्त्री का सङ्ग, मदिरा पान और नाच-बाजे तथा गाने प्रभृति का संसर्ग ही नहीं रहता, इससे मन विकृत नहीं होता। कैसा ही मनुष्य क्यों न हो, उपरोक्त पदार्थ मनुष्यके मन को बिगाड़े बिना नहीं रहते। विकृत मन में प्यारा बैठ नहीं सकता। प्यारे के निवास के लिये मन को क्रोध के आठों दोष—दुष्टता, हठकारिता, परको अनिष्ट-चिन्ता और आचरण, पराये गुण देख कर जलना और सह न सकना, पराये

गुणों में दोष ढूँढ़ना, जो देना है उसे न देना और दी हुई चीज़ को हज़म कर जाना, कठोर वचन बोलना और निर्दयता के काम करना—इन से मन को साफ़ रखना चाहिये। शुद्ध और पवित्र मनमें ही प्यारा बैठता है। जिन से इस तरह मन शुद्ध न किया जा सके, उनका वन में जाना भी वृथा ही है। वन में रह कर तपस्वियों से मैत्री करनी चाहिये; संसारी लोगों का संसर्ग सदा त्यागना चाहिये। गुफा में बैठ कर आनन्दपूर्वक "शङ्कर-शङ्कर" भजना चाहिये। इस तरह करने से मनुष्य को इस जन्म में सच्चा सुख और शान्ति मिलती है और मरने पर स्वर्ग या मोक्ष-पद की प्राप्ति होती है।

एक ही काम करना चाहिये, "इधर के रहे न उधर के रहे, खुदा ही मिला न विसाले सनम्" वाली कहावत न चरितार्थ करनी चाहिये। संसारी बनना हो, तो संसारी ही बनना चाहिये; त्यागी का ढोंग करना ठीक नहीं। संन्यासी होकर गृहस्थों के घर आना, उत्तमोत्तम पुष्टिकारक षटरस भोजन करना, धन सञ्चय करना, युवतियों को पास बिठाना, उनसे पैर पुजाना—उचित नहीं; इस तरह करने से मनुष्य न इधर का रहता है न उधर का। "धोबी का कुत्ता घर का न घाट का" यह कहावत चरितार्थ होती है।

गोस्वामीजी ने कहा है :—

कै ममता करु रामपद, कै ममता करु हेल।
तुलसी दो महँ एक अब, खेल छाँड़ि छल खेल ॥

कुण्डलिया-सेवहु केशव देव को, कै शिवकी कर सेव ।
मित्र एक कर नृपति को, कै जोगेश्वर देव ॥
कै जोगेश्वर देव, दुहुन में एक हितू कारि ।
करिये नगर निवास,किधौं बनवास करहु ढरि ॥
पुत्रवती तियसंग, अंग अंगन मेटै वहु ।
करि गिरिगुहा प्रसंग, प्रीति सों नितप्रति सेवहु ॥६९॥

69 (One ought to worship) only one god, either Vishnu or Shiva. (There should be only) one friend, either a king or a recluse. (There should be) one residence,either in a town or in a forest. (There should be) single beautiful wife or (else one should have resort to) a (hidden) cave.

नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुणकथनैः स्वान्गुणान्ख्यापयन्तः
स्वार्थान्सम्पादयन्तो विततप्रियतरारम्भयत्नाः पदार्थे ॥
क्षान्त्यैवाक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान्दुर्जनान्दूषयन्तः
सन्तः साश्चर्यचर्या जगति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीयाः॥७०

नम्रता से ऊँचे होते हैं, पराये गुणों का कीर्त्तन करके अपने गुणों को प्रसिद्ध कर लेते हैं—पराया भला करने में दिल से लग कर अपना मतलब भी बना लेते हैं और निन्दा करने वाले दुष्टों को अपनी क्षमाशीलता से ही कलंकित या लज्जित करते हैं—ऐसे आश्चर्यकारक आचरण से सभी के माननीय सन्तपुरुष संसार में किस के पूजनीय नहीं हैं ?

सज्जन सब से नम्रता का व्यवहार करते हैं, किसो से भी ऐंठ कर बात नहीं करते, अपने तईं सबसे नीचा समझते हैं और अपनी नम्रता से ही ऊँचे होते हैं; यानी किसी को भी अपने से कम नहीं समझते, सब को अपने से ऊँचा और अपने तईं सबसे नीचा समझते हैं; अदना-से-अदना आदमी से विनीत व्यवहार करते हैं। उनके इस व्यवहार से प्रत्येक मनुष्य का आत्मा सन्तुष्ट हो जाता है; प्रत्येक मनुष्य उनका सम्मान करने लगता है और उन्हें अपने से ऊँचा समझता है; क्योंकि वास्तविक महापुरुषों में ही नम्रता होती है; जो ओछे और थोथे होते हैं, उनमें ही अभिमान की मात्रा हद से ज़ियादा होती है *। नीच लोग अभिमान-भरी बातें कह कर, अपनी शान और रोब दिखाकर ऊँचा होना चाहते हैं; पर वे लोगों की नज़रों से उलटे ही गिर जाते हैं। पहले भी जितने बड़े लोग हुए हैं, वे सभी निराभिमानी, परले सिरे के नम्र, विनयी और मधुरभाषी हुए हैं। जो अपने तईं ऊँचा बनाना चाहें, उन्हें नम्र होना ही चाहिये; बिना नीचा हुए कोई ऊँचा हो नहीं सकता।

कविजन कहते हैं—

'नर की अरु नल नीर की, गति एकी कर जोय।
ज्यों ज्यों नीचो ह्वै चले, त्यों त्यों ऊँचो होय॥'

† A little pot becomes soon hot.—*Dutch.*
Empty vessels make the most noise.

उच्च हुयो जो जन चहै, विनय धरै निज मत्थ ।
नयौ प्रथम ज्यों केसरी, ह्वै करिवध समरत्थ ॥

ईसाइयों की बाइबिल में लिखा है—

"He that humbles himself shall be exalted."

जो अपने तईं नीचा बनावेगा, वह अवश्य ऊँचा होगा ।
शेख़ सादी ने भी कहा है—

"बनी आदम सरश्त अज़ ख़ाक दारन्द
अगर ख़ाकी न बाशद आदमी नेस्त
न शायद बनी आदमे पाकज़ाद ।
के दर सर कुनद किब्र तुन्दी ओ बाद ॥"

मनुष्य ख़ाक से बना है । अगर उसमें ख़ाकसारी—नम्रता नहीं है, तो वह फिर आदमी नहीं है । ख़ाक से बनी आदम की औलाद को अभिमान और कठोरता आदि से बचना चाहिये ।

सच है, मनुष्य मिट्टी से बना है और मिट्टी में ही मिल जायगा * । इस लिए उसमें मिट्टी की तरह ही नम्रता होनी चाहिये । जिस में नम्रता नहीं, वह मनुष्य नहीं ।

दूसरी बात सज्जनों के स्वभाव में यह होती है, कि वे

† Dust thou art, and unto dust thou shalt return.—*Bible*

किसी को भी निन्दा नहीं करते ; जहाँ तक होता है, पराई प्रशंसा ही किया करते हैं। जिन के दिल में ईर्षा-द्वेष होता है, जिनके हृदय अपवित्र होते हैं, उनके हृदयों से ही गन्दी बातें निकला करती हैं। जो सब को ही परमात्मा का रूप समझते हैं, जो सभी प्राणियों में परमात्मा को देखते हैं, वे भूल कर भी किसी की निन्दा नहीं कर सकते। वे सभी को अपने से बड़ा समझते हैं, उनकी नज़र में कोई भी उनसे छोटा नहीं। उनकी ऐसी समझ है, तभी तो वे किसी से शत्रुता और द्वेषभाव नहीं रखते। कहा है—

> कैसा मोमिन कैसा काफिर, कौन है सूफी कैसा रिन्द।
> सारे बशर हैं बन्दे हक़्क़े, सारे शर के झगड़े हैं॥

और भी—

> ऐ ज़ौक़, किसको चश्मे हिक़ारत से देखिये।
> सब हमसे हैं ज़ियादा, कोई हम से कम नहीं॥

जो सब को बन्दे-खुदा समझते हैं और सभी को अपने से ज़ियादा समझते हैं, वे किसी को नज़र-हिक़ारत से नहीं देख सकते *। उनके मुँह से पराई प्रशंसा छोड़ निन्दा निकल ही नहीं सकती ; पर यह काम है कठिन। किसी लेखकको नुक़ताचीनी या कड़ी समालोचना करना आसान है ; पर उसकी प्रशंसा करना कठिन है। निस्सन्देह पराये औगुणों को

* A true man hates no one.—*Napoleon*

छिपाना और गुणों का बखान करना कठिन है; पर सज्जनों में यह गुण स्वभाव से ही होता है। जो ऐसा करते हैं, उनका कोई भी शत्रु हो नहीं सकता, सभी उन के मित्र हो जाते हैं और उन्हीं के द्वारा उनके गुणों की प्रसिद्धि हो जाती है।

तीसरा गुण सज्जनोंमें यह होता है, कि वे सदा परोपकार में दत्तचित्त रहते हैं। जो सदा पराई भलाई में लगा रहेगा, उसका कोई काम बिना बने रह नहीं सकता।

चौथा गुण सज्जनों में यह होता है, कि वे अपने निन्दकों की बातों का बुरा नहीं मानते। वे आम के वृक्ष की तरह होते हैं, कि लोग उसे पत्थर मारते हैं और वह फल देता है। जो लोग उनकी निन्दा करते हैं, वे उन्हीं की प्रशंसा करते हैं। उनका ख़याल है—

ज़ुबा खोलेंगे मुझ पर बदज़ुबाँ क्या बदशआरी से।
कि मैंने ख़ाक भर दी है उनके मुँहमें ख़ाकसारी से॥
तू भला है तो बुरा हो नहीं सकता ऐ ज़ौक़।
है बुरा वही कि जो तुझ को बुरा जानता है॥

बुरे आदमी अपनी बुराई के कारण मेरी निन्दा नहीं कर सकते; क्योंकि मैंने अपनी नम्रता से उनके मुँह में ख़ाक भर दी है।

ऐ ज़ौक़! तू भला है, तो निन्दकों के कहने से बुरा हो नहीं सकता। वही बुरा है, जो तुझे बुरा समझता है।

"गुलिस्ताँ" में लिखा है :—

"द्वेषी मनुष्य ही निरपराध मनुष्यों से शत्रुता रखता है। मैंने एक मूर्ख को एक प्रतिष्ठित पुरुष का अपमान करते देखा। मैंने उससे कहा—"महाशय! अगर आप भाग्यहीन हैं, तो इसमें भाग्यवानों का क्या दोष है?" जो तुम को देख कर जले, तुम उसका बैर मत चीतो; क्योंकि वह अभागा स्वयं आफ़त में फँसा हुआ है *। जिस के पीछे ऐसा शत्रु (दूसरे को देख कर कुढ़ना) लग रहा है, उसके साथ शत्रुता करनेकी क्या आवश्यकता? बुद्धिमान दुष्टोंकी बातों का बुरा नहीं मानते। दुष्टों का स्वभाव ही है, कि जब वे गुणों में दूसरों की बराबरी नहीं कर सकते, तब अपनी दुष्टताके कारण उनमें दोष लगाने लगते हैं।"

सज्जन पुरुष नीचों की बातों की परवा नहीं करते। वे अपनी नम्रता और क्षमाशीलता से ही उनके मुँह बन्द कर देते हैं। बुराई करते-करते जब दुष्ट थक जाते हैं, तब आप ही लज्जित होकर बुराई करना छोड़ देते हैं।

क्षमा खड्ग लीने रहे, खल की कहा बसाय।
अगिन परी तृणरहित थल, आपहि तैं बुझ जाय॥

नम्रता से ऊँचा होना, पराया गुण गान करके अपनी

---

* Envy, if surrounded on all sides by the brightness of another's prosperity, like the scorpion confined with a circle of fire, will sting itself to death,—*Colton*.

प्रसिद्धि करना, पराया भला करते हुए अपना भी स्वार्थ सिद्ध कर लेना और निन्दकों को अपनी क्षमाशीलता से लज्जित करना,—ये चारों ही गुण अनुकरणीय हैं। जिनमें ये चारों गुण होते हैं, निश्चय ही वे सभी के पूजनीय होते हैं।

छप्पय-नीचे ह्वै के चलत, होत सबसे ऊँचे अति।
परगुण कीरति करत, आपगुण ढाँकत यह मति॥
आपन अरथ विचार, करत निशि दिन परमारथ।
दुष्ट वचन नहिं कहत, क्षमा कर साधत स्वारथ॥
नित रहत एकरस सबनसों, वचन कोपकर कहत नहिं।
ऐसे जु सन्त या जगत में, वंचित सबके स्वतन्त्रहि॥७०॥

70. They display their greatness by their humility, and their personal good qualities by speaking well of others. In the acquirement of their own objects they ceaselessly make even greater efforts for the benefit of others and put to shame by their pardoning (habits) the evil men whose mouths are polluted by (uttering) dry words of attack. Who will not honour the holy men with such a wonderful conduct and worthy of being respected by the whole world?

परोपकारियों की प्रशंसा।

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
र्नवांबुभिर्भूरि विलम्बिनो घनाः॥
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥७१॥

जैसे वृक्ष फल लगने से नीचे की ओर झुक जाते हैं, वर्षा के जल से भरे हुए नवीन मेघ ज़मीन की ओर झूमने लगते हैं ; वैसे ही सत्पुरुष भी सम्पत्ति पाकर उद्धत नहीं होते,बल्कि नम्र हो जाते हैं ; इस से प्रत्यक्ष है, कि परोपकारी मनुष्यों का स्वभाव ही ऐसा होता है।

सज्जन पुरुष सम्पत्तिवान् होकर नम्रता धारण करते हैं ; किन्तु दुष्ट लोग धन-सम्पत्ति पाकर इतरा उठते हैं *। जो लक्ष्मी सज्जनों को नम्र बना देती है, वही दुष्टों की दुष्टता को और भी बढ़ा देती है। दुष्ट लोग दौलत पाकर और मतवाले हो जाते हैं। ऐस के सम्बन्ध में किसी उर्दू कवि ने कहा है--

नशा दौलत का बद अतबार को जिस आन चढ़ा।
सर पै शैतान के एक और शैतान चढ़ा॥

अनुभव-विहीन और तङ्ग-दिल मनुष्य पर जिस समय दौलत का नशा चढ़ गया, तब मानो शैतान के सिर पर एक और शैतान चढ़ गया।

और भी कहा है—

बन्धुः को नाम दुष्टानां, कुप्यते को न याचितः।
को न दृप्यति वित्तेन, कुकृत्ये को न पण्डितः॥

* A vulgar mind is proud in prosperity and humble in adversity ; a noble mind is humble in prosperity and proud in adversity.—*Ruckert*.



जैसे सफल वृक्ष और जलपूर्ण मेघ पृथ्वी की ओर झुक जाते हैं ;
वैसे ही सत्पुरुष सम्पत्ति पाकर नम्र हो जाते हैं । (पृष्ठ ३०४)



दुर्मन्त्रिणं कमुपयान्ति न नीतिदोषाः।
सन्तापयन्ति कमपथ्यभुजं न रोगाः॥
कं श्रीर्नदर्पयति कं न निहन्ति मृत्युः।
कं स्वीकृता न विषयाः परितापयन्ति॥

दुर्जन का बन्धु कौन है? माँगने पर किसे क्रोध नहीं आता? धन से किसे अभिमान नहीं होता? कुकर्म करने में चतुर कौन नहीं है?

नीति का दोष किस दुष्ट मन्त्री को नहीं होता? रोग किस कुपथ्य सेवन करने वाले को दुःख नहीं देते? लक्ष्मी से किसे घमण्ड नहीं होता? मृत्यु किसको नष्ट नहीं करती? स्वीकृत विषय किसे सन्ताप नहीं देते?

धन-मद सभी को चढ़ता है, दौलत का नशा सभी को आता है; केवल उन सत्पुरुषों को धन का मद नहीं आता, जिन्होंने संसारका अनुभव प्राप्त किया है और जिन्होंने दुनिया की ऊँच-नीच देखी है।

धन और यौवन चञ्चल हैं।

कहा है:—

अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसंचयः।
ऐश्वर्य्यं प्रियसंवासो मुह्येत्तत्र न पण्डितः॥
कायः संनिहितापायः सम्पदः पदमापदाम्।
समागमाः सापगमाः सर्वमुत्पादि भंगुरम्॥

यौवन, रूप, जीवन, धनसञ्चय, ऐश्वर्य्य और मित्रके साथ रहना,—ये सभी अनित्य हैं ; इसी वजह से ज्ञानवान् इनमें मोहित नहीं होते।

शरीर तो दुःखों से भरा है, सम्पत्तिके साथ आपत्ति और संयोग के साथ वियोग है और सारी उत्पत्तिमान वस्तुएँ नाशमान हैं*।

शंकराचार्य्य-कृत प्रश्नोत्तरमाला में भी लिखा है:—

विद्युच्चलं किं धनयौवनायु—
दानं परं किञ्च सुपात्रदत्तम्।

संसार में बिजली के समान चञ्चल क्या है ? धन यौवन और आयु। उत्तम दान कौनसा है ? जो सुपात्र को दिया जाय।

उस्ताद ज़ौक़ भी कहते हैं:—

दिखा न जोशो ख़रोश इतना, ज़ोर पर चढ़ कर।
गये जहान में दरिया, बहुत उतर चढ़ कर॥

अपनी उन्नति पर मत इतरा ; संसार में बहुत से दरिया चढ़-चढ़ कर उतर गये।

ज्ञानी नम्र होते हैं।

जिन्हें संसार की असारता और धन-यौवन की चञ्चलता का ज्ञान है, भला वे धन-सम्पत्ति पाकर इतरा सकते हैं ? कमल निर्मल जल में पैदा होता है, उसकी मधुरता

† All things are double, one against another. Good set against evil and life against death.—*Ecclus.*

स्त्रियों के मुख की मिठास से भी बढ़ी-चढ़ी होती है, सुगन्ध से देवता भी राज़ी होते हैं, स्वयं नारायण के हाथ में उसका वास है और कामदेव का तो वह सर्वस्व ही है,—इतने गुण होने पर भी, कमल तुच्छ भौंरे से मुहब्बत रखता है। इससे स्पष्ट है, कि बड़े लोग धन-वैभव होने पर, अपने से छोटों से इतराते नहीं; क्योंकि सब तरह से सुखी होने पर भी, उन्हें मौत और मुसीबत का ख़ौफ़ लगा रहता है *। इसलिए, ज्यों-ज्यों प्रभुता बढ़ती है, वे नम्र होते और परोपकार करते हैं। उस्ताद ज़ौक़ने भी कहा है ;—

है बाग़े जहाँ में, तुझे गर हिम्मते आली।
कर गरदने तसलीम को, ख़म और ज़ियादा॥
लेते हैं समर शाख़, समर वर को झुकाकर।
झुकते हैं सख़ी, वक्त करम और ज़ियादा॥

अगर तू साहस रखता है, तो ख़ूब नम्र बन। फलदार वृक्ष को देख! लोग फल तोड़ते समय उसे झुका लेते हैं और वह फल देता और झुकता है।

दोहा-नम्र होत फल भार तरु, जल भर नम्र घटासु।
त्यों सम्पत् लहि सत्पुरुष, नवैं सुभाव छटासु॥७१॥

* Even out of a cloudless heaven the flaming thunder-bolt may strike ; therefore in the days of joy have a fear of the spiteful neighbourhood of misfortune—*Schiller*.

71. The (branches of) trees hang down when they are full of fruits, the cloulds lower (themselves in the sky) when they are full of fresh water (vapour) and good men become gentle-hearted in prosperity. Such is the nature of those that do good to others.

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन दानेन पाणिर्न तु कंकणेन।
विभाति कायः करुणापराणां परोपकारैर्न तु चन्दनेन ॥७२॥

दयालु पुरुषों के कानों की शोभा शास्त्र सुनने से है, कुण्डल पहनने से नहीं ; उनके हाथों की शोभा दान करने से है, कंगन पहनने से नहीं ; देह की शोभा परोपकार करने से है, चन्दन लगाने से नहीं।

इस से मिलता जुलता कलाम उस्ताद ज़ौक़ ने कहा है ; पाठक ! उसका भी मज़ा चखिये—

दिल वह क्या, जिस को नहीं तेरी तमन्नाये विसाल।
चश्म वह क्या, जिसको तेरे दीद की हसरत नहीं ॥

वह दिल ही नहीं, जिसे तेरे पाने की इच्छा न हो। वह आँख ही नहीं, जिसे तेरे दर्शन की लालसा न हो।

कान वही हैं, जो शास्त्र सुनते हैं ; हाथ वही हैं, जो दान करते हैं; देह वही है, जो पराये काम आती है; दिल वही है, जो परमात्मा के पाने की इच्छा रखता है और आँख वही है, जो उसके दर्शनों की लालसा रखती है। अगर शरीर और

उसके अवयवों से यह काम नहीं होते, तो उनका होना न होना बराबर है। मनुष्य और पशुओं में क्या फर्क़ है? मनुष्य और पशुओं में यही भेद है, कि मनुष्य अपने शरीर से परोपकार और परमात्मा की भक्ति प्रभृति उत्तमोत्तम कार्य्य कर सकता है और पशु ये सब नहीं कर सकते। अगर शरीर पराये काम न आया, तो उससे कोई लाभ नहीं; एक न एक दिन यह पञ्चत्व में मिल ही जायगा। कहा है—

धनानि जीवितं चैव, परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
सन्निमित्तो वरं त्यागो, विनाशे नियते सति॥

पण्डितों को चाहिये, कि धन और प्राण पराये लिये त्याग दें। क्योंकि शरीर का नाश अवश्य होगा; इससे इसका साधुओं के लिए त्याग ही भला है।

गोस्वामि तुलसीदास जी भी कहते हैं:—

तुलसी सन्तनते छुनें, सन्तत यहै विचार।
तन धन चञ्चल अचल जग, युगयुग परउपकार॥

सारांश—शास्त्र सुनो; दान करो और परोपकार करो। इन कामों से सचमुच ही शरीर की खूबसूरती बढ़ती है; ज़ेवर पहनने से खूबसूरती को बढ़ी समझना मूर्खता है।

कुण्डलिया—कंकन ते सोहत न कर, कुण्डल ते नहिं कान।
चन्दन ते सोहत न तन, जान लेहु यह जान॥

जान लेहु यह जान, दानते पाणि लसत है ।

कथा श्रवण ते कान, परम शोभा सरसत है ॥

परमारथसों देह, दिपत चन्दन सों टंकन ।

ये शुभ सुकृतहि राख, पहरिये कुण्डल कंकन ॥७२॥

72 The ears look beautiful by listening to Shastras and not by (wearing) ear-rings, the hands by doing charity and not by (wearing) bangles and the body of gentle-hearted men by philanthropic actions and not by sandal-wood plastering.

पापान्निवारयति योजयते हिताय ।
गुह्यं च गूहति गुणान्प्रकटीकरोति ॥
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले ।
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥ ७३ ॥

सन्तोंने कहा है,—सुमित्र वही है, जो मित्र को बुरे कामों से रोकता है, अच्छे कामों में लगाता है, उसकी गुप्त बात को छिपाता है, उसके गुणों को प्रकट करता है, विपद्काल में उसका साथ नहीं छोड़ता और समय पड़े पर यथासामर्थ्य धन देता है ।

सुमित्र के लक्षण ।

अपने मित्र को पाप-कर्मों से बचाना, हितकर्म में लगाना, उसकी गुप्त बात को छिपाना, उसके गुणों को प्रका-

शित करना, दुःख में उसका साथ न छोड़ना और समय पर आर्थिक सहायता करना—ये उत्तम मित्रों के लक्षण हैं; गोस्वामि तुलसीदास जी ने भी कहा है :—

जे न मित्र-दुःख होहिं दुखारी।
तिन्हैं विलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज कर जाना।
मित्र को दुख रज मेरु समाना॥
जिनके अस मति सहज न आई।
ते शठ हठ कत करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपन्थ चलावा।
गुण प्रगटै अवगुणहिं दुरावा॥
देत लेत मन शंक न धरहीं।
बल अनुमान सदा हित करहीं॥
विपति-काल कर शतगुण नेहा।
श्रुति कह सत्य मित्र गुण एहा॥
आगे कह मृदु बचन बनाई।
पाछे अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहिं गति सम भाई।
अस कुमित्र परिहरे भलाई॥

आजकल कपटी यार बहुत हैं। निष्कपट या साफ़ तबियतके आदमी कोई बिरले ही होते हैं। उस्ताद ज़ौक़ ने कहा है;—

देखे आईने बहुत बिन ख़ाक है नासाफ़ सब ।
हैं कहाँ अहले सफ़ा अहले सफ़ा कहने को हैं ॥

मित्र को बुरे कामों से रोकना ।

मित्र का पहला लक्षण है, मित्र को पापों या बुरे कामों से रोकना । आजकल बुरे कामों से रोकने वाले तो नज़र नहीं आते, पर बुरे कामों में फँसाने वाले या कुराह पर ले जाने वाले बहुत हैं। जिसके पास लोग धन देखते हैं, उसके चारों ओर कुत्ते पर मक्खियों की तरह आ लगते हैं। उसकी खुशामद करके, उसकी हाँ में हाँ मिलाकर, अपना स्वार्थ साधन करते हैं। भीतरसे हितकारी और ज़ाहिरा कड़वी कहने वाले कहीं नहीं दीखते। ऐसी बात तो वही कह सकता है, जिसके दिल में पाप न हो, जो शुद्धहृदय और निष्कपट हो और जिसे अपना उल्लू सीधा न करना हो । किसीने ठीक ही कहा है:—

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥

राजन् ! सदा मीठी-मीठी बातें बनाने वाले लोग बहुत हैं, पर हितकारी और कड़वी कहने और सुननेवाले दुर्लभ हैं।

खुशामदी मित्र ।

जिनको लोग आजकल मित्र समझते हैं, वे मित्र नहीं, पर नीच खुशामदी हैं। खुशामदियों की लच्छेदार बातों में

कौन नहीं फँस जाता ? खुशामदियों ने लाखों के घर ख़ाकमें मिला दिये—अनेकों को घर-गृहस्थियों का सत्यानाश कर दिया। भोले-भाले नातजुर्बेकार लोग उनको चिकनी-चपड़ी बातों में फँस जाते और अपना सत्यानाश कर लेते हैं। अत्यन्त मीठी बातें बनाने वालों को धूर्त्त समझना चाहिये। कहा है—

असती भवति सलज्जा, क्षारं नीरञ्च शीतलं भवति।
दम्भी भवति विवेकी, प्रियवक्ता भवति धूर्त्तजनः ॥

असती लज्जावती होती है, खारी पानी शीतल होता है। पाखण्डी ज्ञानी होता है और धूर्त्त प्रियवक्ता होता है।

धूर्त्त या दग़ाबाजों की बातें आरम्भ में बड़ी प्यारी लगती हैं, परन्तु परिणाम उनका बुरा होता है; सज्जनों की बातें आरम्भ में कड़वी मालूम होती हैं, पर परिणाम में वे अच्छी प्रमाणित होती हैं। पण्डितेन्द्र जगन्नाथ महाराज अपने "भामिनी विलास" में कहते हैं—

अनवरत परोपकारव्यग्री भवदमलचेतसां महताम्।
आपात काटवानि स्फुरन्ति वचनानि भेषजानीव ॥

जिन पुरुषों के अन्त:करण शुद्ध , जो निरन्तर परोपकार की चिन्ता में लगे रहते हैं, उनके वचन आरम्भ में कड़वी दवा की तरह कड़वे लगते हैं; पर शेष में, जिस भाँति कड़वी दवा का फल अच्छा होता है, उसी तरह उनकी कड़वी बातों का फल भी मंगलकारी होता है।

अँगरेज़ी में एक कहावत है—"ख़ुशामदी हमारे सब से बुरे शत्रु हैं।" यह कहावत अक्षर-अक्षर सच है। परमात्मा इन काल भुजङ्गों से बचाये। इन पर किसी ने ख़ूब भजन बनाया है। सुनिये—

देश को किया ख़राब, ख़ुशामदी लोगों ने ॥ टेक ॥

महाराज मंत्रियों से बोले, 'बैंगन' बड़ा बुरा है।
मन्त्री बोले, तभी तो इसका 'बेगुन' नाम धरा है ॥
दिया क्या ख़ूब जवाब, ख़ुशामदी लोगों ने ॥ १ ॥

महाराज कुछ देर में बोले, 'बैंगन' अति अच्छा है।
कहा तभी तो इसके सरपर, हरा मुकट रक्खा है ॥
पलट दी बात शिताब, ख़ुशामदी लोगों ने ॥ २ ॥

स्वामी दिन को रात कहें, तो यह तारे चमकादें ।
स्वामी कहें रात को दिन, तो यह सूरज उगवादें ॥
किया जाग्रत को स्वाब, ख़ुशामदी लोगों ने ॥ ३ ॥

स्वामी कहें मद्य कैसा है ? कहें "सुरा" सुखकर है।
स्वामी पूछें हिंसा जायज़ ? कहिदें जीव अमर है ॥
पढ़ी है ख़ास किताब, ख़ुशामदी लोगों ने ॥ ४ ॥

इसीलिये सतसंगी सज्जन, बिचर स्वतन्त्र रहे हैं।
भला समझकर सत्य वचन, ये राधेश्याम कहे हैं ॥
उठा ही दिया हिजाब, ख़ुशामदी लोगों ने ॥ ५ ॥

मन की बात किसी से भी मत कहो ।

हमने खूब देख लिया है, कि जिससे अपने मनकी गुप्त बात कह कर मनुष्य अपने हृदय का बोझ हलका कर सके, ऐसा आदमी मिलना असम्भव नहीं तो कठिन ज़रूर है । हमने स्वयं खूब धोखे खाये हैं; बड़ी-बड़ी तकलीफ़ें उठाई हैं; इसी से हम अपने प्यारे पाठकों को बार-बार सावधान करते हैं, कि अपने मन की गुप्त बात आजकल के मित्र तो क्या—अपने पिता और सगे भाई से भी न कहनी चाहिये । जो आज मित्र बना हुआ है, वह कल, निश्चय ही, किसी-न-किसी कारण से, आपका शत्रु हो जायगा और आपको कष्ट देगा। अपनी गुप्त बात दूसरे को देना और उसका गुलाम होना एक ही बात है । गुलिस्ताँ में लिखा है और ठीक ही लिखा है—"वह भेद जिसे तुम गुप्त रखना चाहते हो, किसी से भी न कहो; चाहे वह तुम्हारा परम विश्वासी ही क्यों न हो । अपनी गुप्त बात को जितनी अच्छी तरह आप स्वयं छिपा सकते हैं, दूसरा न छिपा सकेगा । अपनी बात किसी से कहने और उसे दूसरे से कहने की मनाही करने से एकदम चुप रहना भला है । ऐ भले आदमी! पानीको निकास पर ही रोक; जब वह नदी के रूप में बहने लगेगा, तब तू उसे रोक न सकेगा ।" कितनी अच्छी और सच्ची नसीहत है !

विश्वास ही आफ़तों का मूल है ।

संसार में "विश्वास" ही आफ़तों की जड़ है। अगर

अँगरेज़ी में एक कहावत है—"ख़ुशामदी हमारे सब से बुरे शत्रु हैं।" यह कहावत अक्षर-अक्षर सच है। परमात्मा इन काल भुजङ्गों से बचाये। इन पर किसी ने ख़ूब भजन बनाया है। सुनिये—

देश को किया ख़राब, ख़ुशामदी लोगों ने ।। टेक ।।

महाराज मंत्रियों से बोले, 'बैंगन' बड़ा बुरा है।
मन्त्री बोले, तभी तो इसका 'बेगुन' नाम धरा है।।
दिया क्या ख़ूब जवाब, ख़ुशामदी लोगों ने ।। १ ।।

महाराज कुछ देर में बोले, 'बैंगन' अति अच्छा है।
कहा तभी तो इसके सरपर, हरा मुकट रक्खा है।।
पलट दी बात शिताब, ख़ुशामदी लोगों ने ।। २ ।।

स्वामी दिन को रात कहैं, तो यह तारे चमकादें ।
स्वामी कहें रात को दिन, तो यह सूरज उगवादें ।।
किया जाग्रत को ख़्वाब, ख़ुशामदी लोगों ने ।। ३ ।।

स्वामी कहें मद्य कैसा है ? कहैं "छुरा" छुखकर है।
स्वामी पूछें हिंसा जायज़ ? कहिदें जीव अमर है ।।
पढ़ी है ख़ास किताब, ख़ुशामदी लोगों ने ।। ४ ।।

इसीलिये सतसंगी सज्जन, बिचर स्वतन्त्र रहे हैं।
भला समझकर सत्य वचन, ये राधेश्याम कहे हैं ।।
उठा ही दिया हिजाब, ख़ुशामदी लोगों ने ।। ५ ।।

मन की बात किसी से भी मत कहो।

हमने खूब देख लिया है, कि जिससे अपने मनकी गुप्त बात कह कर मनुष्य अपने हृदय का बोझ हलका कर सके, ऐसा आदमी मिलना असम्भव नहीं तो कठिन ज़रूर है। हमने स्वयं खूब धोखे खाये हैं; बड़ी-बड़ी तकलीफें उठाई हैं; इसी से हम अपने प्यारे पाठकों को बार-बार सावधान करते हैं, कि अपने मन की गुप्त बात आजकल के मित्र तो क्या—अपने पिता और सगे भाई से भी न कहनी चाहिये। जो आज मित्र बना हुआ है, वह कल, निश्चय ही, किसी-न-किसी कारण से, आपका शत्रु हो जायगा और आपको कष्ट देगा। अपनी गुप्त बात दूसरे को देना और उसका गुलाम होना एक ही बात है। गुलिस्ताँ में लिखा है और ठीक ही लिखा है—"वह भेद जिसे तुम गुप्त रखना चाहते हो, किसी से भी न कहो; चाहे वह तुम्हारा परम विश्वासी ही क्यों न हो। अपनी गुप्त बात को जितनी अच्छी तरह आप स्वयं छिपा सकते हैं, दूसरा न छिपा सकेगा। अपनी बात किसी से कहने और उसे दूसरे से कहने की मनाही करने से एकदम चुप रहना भला है। ऐ भले आदमी! पानीको निकास पर ही रोक; जब वह नदी के रूप में बहने लगेगा, तब तू उसे रोक न सकेगा।" कितनी अच्छी और सच्ची नसीहत है!

विश्वास ही आफ़तों का मूल है।

संसार में "विश्वास" ही आफ़तों की जड़ है। अगर

किसी से मैत्री टूट जाय और शत्रुता हो जाय; इसके बाद वही शत्रु मेल-जोलकी बातें करे, तो उससे बातें करो, मिलो-जुलो, पर उसकी प्रत्येक बात को सन्देह की दृष्टि से देखो। मनमें समझो, कि शत्रु अपना कोई मतलब निकालना चाहता है अथवा अपना बल बढ़ाना चाहता है और इसीके लिये धोखा दे रहा है। मित्रों की सचाई पर भी विश्वास करना नादानी है; तब शत्रुओं को—खासकर उस शत्रुको, जो मेल-मिलाप से फिर मित्र बना लिया गया है, लल्लोचप्पो और मीठी बातों से क्या भली उम्मीद की जा सकती है? कहते हैं—

"A reconciled friend is double enemy" जो शत्रु मेल-जोलसे मित्र बना लिया जाता है, वह डबल शत्रु होता है; यानी वह साधारण शत्रुसे कई दर्जे अधिक भयङ्कर होता है। शपथपूर्व्वक सन्धि करके, इन्द्रने वृत्तासुर को मार डाला था। विश्वास के सिवा, देवताओं का भी कोई शत्रु नहीं। विश्वास से ही इन्द्रने दितिका गर्भ नाश कर दिया था। शास्त्रोंमें लिखा है—

बृहस्पतेरपि प्राज्ञो न विश्वासे व्रजेन्नरः।
य इच्छेदात्मनो वृद्धिमायुष्यंच सुखानि च॥
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्तेऽपि न विश्वसेत्।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति॥
न वध्यन्ते ह्यविश्वस्तो दुर्बलोऽपि बलोत्कटैः।
विश्वस्ताश्चाशुबध्यन्ते बलवन्तोऽपि दुर्बलैः॥

यदि बुद्धिमान अपनी आयु-वृद्धि और सुख की इच्छा करता हो, तो वृहस्पति का भी विश्वास न करे।

मनुष्य अविश्वासी का विश्वास न करे और विश्वासी का भी बहुत विश्वास न करे ; क्योंकि विश्वास से उत्पन्न हुआ भय मूल सहित नष्ट कर देता है।

किसी का भी विश्वास न करने वाले, दुर्बल मनुष्य भी, बलवानों के फन्दे में नहीं फँसते ; किन्तु विश्वास करने वाले, बलवान् पुरुष भी, दुर्बलों के फन्दे में फँस कर मारे जाते हैं।

चाणक्य कहते हैं:—

न विश्वसेत्कुमित्रे च मित्रेचापि न विश्वसेत्।
कदाचित्कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत्॥

कुमित्र का विश्वास तो किसी हालत में भी न करना चाहिये ; किन्तु सुमित्र का भी विश्वास न करना चाहिये ; क्योंकि कदाचित् मित्र रूठ जाय और सारी गुप्त बातों को प्रकाशित कर दे।

मित्रद्रोही को नरक।

मित्रके गुप्त भेदों को प्रकाशित करना, उसके साथ विश्वासघात करना है। विश्वासघाती और मित्रद्रोहियों को शास्त्रों में बड़ी-बड़ी सज़ायें लिखी हैं। जैसे—

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वासघातकः।
ते नरा नरकं यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥

मित्रद्रोही, कृतघ्न—पराया ऐहसान न मानने वाले और विश्वासघात करनेवाले,—जब तक सूर्य और चन्द्रमा हैं, नरक में पड़े रहेंगे।

फ्रेञ्च भाषा में भी एक कहावत है:—

"The betrayer is the murderer."

दग़ा से दुश्मन के हवाले करने वाला या भेद खोल देने वाला हत्यारा होता है। खेद की बात है, इन बातों पर दुष्ट लोग ध्यान नहीं देते। वे तो अपने ज़रा से स्वार्थके लिये घोर-से-घोर अधर्म करने को तैयार हो जाते हैं। उन्हें इस बातको ज़रा भी परवा नहीं, कि विश्वासघातकता के समान और पाप नहीं है। शास्त्र में लिखा है:—

अपि ब्रह्मवधं कृत्वा प्रायश्चित्तेन शुद्ध्यति।
तद्दर्हस्य विचीर्णेन न कथञ्चित् सुहृद्द्रुहः॥

मनुष्य ब्रह्महत्या करके उसके योग्य प्रायश्चित्त करने से शुद्ध हो जाता है, पर मित्रद्रोही शुद्ध नहीं होता।

मित्रके औगुण छिपाना।

अब रही मित्र के गुणों को प्रकाशित करने और अवगुणों को छिपाने की बात। यह भी आजकल अधिकांश मित्रों में नहीं पाई जाती। आजकल सामने मीठी-मीठी बात कहनेवाले और पीठ पीछे घोर निन्दा करने वालों की अधिकता है। ऐसे मित्रों से सदा बचना चाहिये। चाणक्य ने कहा है:—

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जत्तायेदृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखं ॥

आँख की ओभल होने पर काम बिगाड़नेवाले और सामने मीठी-मीठी बातें बनाने वाले मित्रको मुँह पर दूध और भीतर ज़हर भरे घड़े के समान त्याग देना चाहिये।

संसार में सभी "विषकुम्भंपयोमुखम्" नहीं होते। अगर ऐसा हो, तो प्रलय ही हो जाय। अब भी संसार में सज्जन पुरुष हैं। उन्हीं पर यह संसार ठहरा हुआ है। बात इतनी ही है, कि दुर्जन बहुत हैं और सज्जन कहीं-कहीं हैं। सज्जन अपने मित्रके अवगुणोंको छिपाते हैं, इसमें तो कोई बड़ी बात नहीं; वे दुष्टों—अपने अपकारी शत्रुओं तकके औगुणों पर पर्दा डालते हैं। उनके औगुणोंको उसी तरह छिपाते हैं, जिस तरह मकड़ी शून्य स्थानों को अपने जाले से दबा देती है।

मित्र को समय पर साहाय्य करना।

अब रही समय पर सहायता देने की बात। सहायता देना तो बड़ी दूर की बात है, आजकलके अधिकांश मित्र बिना धन दिये कोरे हाथों भी मित्र का संग नहीं देते। आप ही जब तक कुछ देते रहेंगे या देने का वादा करते रहेंगे, लोग आप के मित्र बने रहेंगे। जहाँ आपने अपने वादे के अनुसार कुछ न दिया या आपके धन-भण्डार में चूहे दण्ड पेलने लगे, कि मैत्री टटी। वही मित्र जो आपकी देहल को धल चाट जाते हैं,

आपके यहाँ दिन-रात पड़े रहते हैं, आपके लिये जान और सर्व्वस्व तक देनेकी डींग मारते हैं, आपके धनहीन होते ही आपको फ़ौरन से पहले त्याग देंगे। उनकी मैत्री धन से है, आपसे नहीं। आजकल बिना उपकार प्रीति नहीं रहती। मेरा यह काम होगा तो यह दूँगा; इस वादे से देवता भी अभीष्ट फल देते हैं। आजकल के मित्रनामधारी भी ऐसे ही होते हैं। जहाँ भेंट-पूजा बन्द हुई, कि नाराज़ हुए। गाय के थनों में दूध सूख जाने से बछड़ा जिस तरह गाय को त्याग देता है; उसी तरह आजकल के मित्र भी धनागम की राह बन्द होते ही मित्र को त्याग देते हैं। अँगरेज़ी में एक कहावत है—"As long as the pot boils friendship lasts." जब तक सेनकी में भात, तब तक तेरा मेरा साथ।

खलों की मैत्री।

—•—

दुष्टों की मैत्री मिट्टी के घड़े के समान होती है, मिट्टी का घड़ा सहज ही में टूट जाता है और फिर नहीं जुड़ता; दुष्टों की मैत्री भी सहजमें ही टूट जाती है और फिर नहीं जुड़ती। कहा है:—

> अभ्रच्छाया खलप्रीतिः सिद्धमन्नञ्च योषितः।
> किञ्चित् कालोपभोग्यानि यौवनानि च धनानि च॥

बादलों की छाया, दुष्टों की प्रीति, पका हुआ अन्न, स्त्री, यौवन और धन,—ये थोड़े समय तक ही भोग्य होते हैं।

विपद् में त्यागने वालों की निन्दा।

सम्पद में साथ रहने वालों और विपद् में साथ छोड़ कर भाग जाने वालों की विद्वानोंने कैसी निन्दा की है। देखिये "भामिनीविलास" में लिखा है—

> प्रारम्भे कुसुमाकरस्य परितो यस्योल्लसन्मंजरी
> पुञ्जे मञ्जुल गुञ्जितानि रचयस्तानातनोरुत्सवान्॥
> तस्मिन्नद्य रसालशाखिनि दृशां दैवात् कृशामंचति
> त्वं चेन्मुंचसि चंचरीक विनयं नीचस्त्वदन्योऽस्तिकः॥

हे भौंरे! वसन्त के आते ही जब आम में मञ्जरियाँ-ही-मञ्जरियाँ खिल उठीं, तब तो तूने उसके चारों ओर मंजु-मंजु गुञ्जार करते हुए खूब मज़ा लिया। अब दैववशात्, आमके वृक्ष के कृश हो जाने—पुष्पविहीन हो जाने पर, अगर तू उससे मुहब्बत न रक्खेगा, तो तुझ से बढ़ कर नीच कौन होगा?

सच्चा मित्र तो वही है, जो बिना किसी स्वार्थ के प्रीति रक्खे, सुदिन और दुर्दिन में समान रहे; सुदिन में चाहे कम प्रीति दिखावे, पर दुर्दिन में तो खूब ही मुहब्बत दिखावे, विपद्कालमें मित्रको सहायता दे और उसके कष्ट निवारणार्थ तन, मन और धन को लगादे। सम्पद् में मित्र बना रहे और आपद् में छोड़ भागे, वह मित्र—मित्र नहीं, वह तो धूर्त्त है। कहा है;—

आपत्काले तु सम्प्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेवतत्।
वृद्धि काले तु सम्प्राप्ते दुर्जनोऽपि सुहृद् भवेत्॥

आफ़त पड़ने पर जो मित्र है वही मित्र है; अच्छे दिनों में तो दुर्जन भी मित्र हो जाते हैं।

मित्र विना संसार में आनन्द नहीं।

मित्र विना संसार में आनन्द नहीं है। जानसन साहब कहते हैं—"Life has no pleasure nobler than that of a friendship" जीवनमें मित्रतासे बढ़कर सुख नहीं है। हमारे यहाँ भी कहा है—

किं चन्दनैः सकर्पूरैस्तुहिनैः किं शीतलैः।
सर्वे ते मित्रगात्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
केनामृतमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम्।
आपदाञ्च परित्राणं शोकसन्ताप भेषजम्॥

चन्दन, कपूर, बर्फ़ और शीतल पदार्थ से क्या है? वे सब मित्र के शरीर को सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं।

अमृत के समान "मित्र" यह दोनों अक्षर किसने बनाये हैं, जो आपत्ति में रक्षा करने वाले और शोक-सन्ताप हरने वाले हैं?

संसार मित्रों के सम्बन्ध में ऐसी ही बातें कहता है; पर हमको मैत्री का आनन्द मालूम नहीं; हमने बहुत मित्र बनाये, पर अन्तमें दुःख ही पाया। जभी जिस मित्र की इच्छा

पूरी न कर सके, बस कुट्टी हो गई। अथवा मित्रोंका काम निकला और वे लम्बे हुए। क्या ऐसों को मित्र कह सकते हैं? ऐसे मित्र तो शत्रुओं से भी बढ़कर हैं। ऐसों ही के सम्बन्ध में गोल्डस्मिथ ने अपने "हरमिट" में एडविन के मुँह से कहलवाया है;—

> "उसी भाँति सांसारिक मैत्री केवल एक कहानी है।
> नाम मात्र से अधिक आजतक नहीं किसीने जानी है॥
> जब तक धन सम्पदा प्रतिष्ठा अथवा यश विख्याति।
> तब तक सभी मित्र शुभचिन्तक निजकुल बान्धव ज्ञाति॥"

बस, बात बढ़ाने से क्या? हमें ठीक ऐसे ही मित्र अधिक मिले; इस कारण हमें मैत्री से अरुचि होगई है। फिर भी, हमको यह कहना पड़ता है कि, मेल-जोलसे बड़े काम निकलते हैं, इसलिये मेल-जोल या मुलाक़ात हर किसी से पैदा करने में हानि नहीं; पर मेल-जोलवालों को मित्र न समझ लेना चाहिये। जिसे मित्र बनाना हो, उसकी पहले खूब परीक्षा कर लेनी चाहिये। फिर; यदि वह मैत्री के योग्य हो, तो मित्र बनाना चाहिये। नीचे हम अपने अनुभव से मैत्री-सम्बन्धी चन्द हिदायतें लिखते हैं। आशा है, पाठक उनसे लाभान्वित होंगे:—

दोस्तों पर चन्द हिदायतें।



(१) मित्रता करो तो उसके साथ करो, जो धन, बल, विद्या, बुद्धि और कुल में तुम्हारे समान हो; मैत्री अपने

समान स्वभाव और व्यसन वालों की ही होती है; असमानोंकी मैत्रीमें सुख नहीं होता। बड़ों की मैत्री तो निश्चय ही बुरी है।*

(२) मित्रता करो, पर किसी का भी विश्वास करके अपना गुप्त भेद न कह दो। अगर ऐसा करोगे, तो जीवन-भर पछताओगे। आज का मित्र कल कट्टर शत्रु हो सकता है।

(३) जो मित्र तुम्हारे शत्रु से मेल रक्खे, उसे तुम अपना मित्र न समझो; क्योंकि शत्रु का मित्र शत्रु ही होता है।

(४) जिस मित्र से एक बार मैत्री टूट जाय, उसे फिर मित्र न बनाओ। ऐसा करना मृत्यु को न्योता देना है।

(५) शत्रु कैसी ही मीठी बातें बनावे, पर उसे भूलकर भी मित्र न बनाओ।

(६) अगर तुम्हारा मित्र चुप रहे, तो तुम उसे अपना मित्र मत समझो। चुप्पे मित्र से बड़बड़ाने वाला शत्रु भला।

(७) नादान या गुस्ताख़ अथवा मूर्ख को मित्र मत बनाओ; ऐसे मित्र से समझदार और तमीज़दार शत्रु भला।

(८) मित्रता रखना चाहो, तो मित्र की ग़लतियों पर कम ध्यान दो। मित्रता के मुक़ाबले में धन को तुच्छ समझो।

(९) इटलीवालों में कहावत है, कि एक घण्टे का अण्डा, एक वर्ष की शराब और तीस वर्ष का मित्र सर्व्वोत्तम होता है। मित्र और शराब पुराने ही अच्छे समझे जाते हैं।

* The cultivation of friendship with great is pleasant to the inexperienced, but he who has experienced it dreads it.—Hor.

(१०) मित्रता निबाहनी हो, तो भरसक, ज़रूरत के समय, मित्रको धनकी सहायता दो; पर उसे वापस लेने की उम्मीद न करो।

(११) जो सब का मित्र हो, उसे अपना मित्र मत समझो। जिसका एक दिल और अनेक दोस्त होंगे, वह तुम से क्या किसी से भी दिलचस्पी नहीं रख सकता। इटली वालों में एक कहावत है,—"जो हर किसी का मित्र है,वह किसी का भी मित्र नहीं है।"

(१२) मित्र को कभी धोखा न दो; उसके गुप्त भेद प्रकट न करो ; चाहे उससे आप की मैत्री टूट ही क्यों न जाय।

(१३) खुशामदी को भूल कर भी मित्र न समझो ; उसे अपना जानी दुश्मन समझो।

(१४) जहाँ तक बन पड़े, मित्र से आर्थिक सहायता न माँगो: हो सके तो दो भले ही; देने में ऐब नहीं।

(१५) जो मित्र तुम्हारे कुछ कहते समय निगाह चुरा जाय, तुम्हारी बातको ध्यानसे न सुने और जिस समय दूसरा कोई तुम्हारी प्रशंसा करता हो, उस समय मुँह फेरले, उसे भूल कर भी मित्र न समझो।

(१६) जो मित्र तुम्हारे शत्रु के कामों को तुम्हारे ही सामने तारीफ करे और तुम्हारे अच्छे कामों को भी घृणा की नज़र से देखे, उसको भी मित्र न समझो।

(१७) जो मित्र तुम्हारे शत्रु का पक्ष करे अथवा उस

से भी मेल रखना चाहे, उसे अपना मित्र नहीं, शत्रु समझो। मित्रों के शरीर दो होते हैं, पर जान एक ही होती है। एक जान दो क़ालिब वाली दोस्ती ही सच्ची दोस्ती है। अगर यह बात न हो, तो दोस्ती नहीं ढोंग है।

(१८) मित्र के साथ भी लेन-देन साफ़ रक्खो। हिसाब की गड़बड़ परिणाम में ख़राब होती है और मैत्री को तुड़ा देती है।

(१९) जो शीघ्र ही तुम्हें अपना मित्र या अभिन्न मित्र कह बैठे, उसकी मैत्री का भरोसा न करो। वह सदा न रहेगी।

(२०) जो मित्र तुम्हारी समय पर काम से सहायता करे, उसे मित्र समझो; किन्तु जो कोरी हमदर्दी दिखावे और बातें बनावे, उसे मित्र मत समझो।

(२१) जो मनुष्य तुम्हारे मुँह पर, किसी ख़ास वजह से, तुम्हें खोटी-खरी भी सुना दे; पर तुम्हारे पीठ-पीछे और लोगों में तुम्हारी प्रशंसा के पुल बाँध दे, उसे अपना मित्र समझो। सामने तारीफ़ करे और पीछे से निन्दा करे, उसे अपना शत्रु समझो।

(२२) किसीको मित्र बनाने से पहले, जिसे मित्र बनाओ उसके गुण-दोषों की समालोचना करो, उसके गुण-दोषोंका विचार करो, उसके आचरण और उसकी सङ्गति का विचार करो और उसके मिज़ाज और स्वभाव से वाकिफ़ होओ।

इसके बाद सोचो, यह हमारी मैत्री के योग्य है, कि नहीं; इससे हमारा क्या लाभ होगा और हमसे इस को क्या लाभ पहुँचेगा। अगर इतनी परीक्षाओं में—कड़ी और सच्ची परीक्षाओं में वह पास हो जावे, तो उसे मित्र बना लो। मित्र की असल परीक्षा तो मुसीबत में ही होती है ; फिर भी, उपरोक्त परीक्षा किये बिना तो किसी को भी मित्र न बनाओ।

(२३) वफ़ादार नौकर सच्चा मित्र होता है; पर आप शीघ्र ही ऐसा समझ कर, अपने नौकर को अपना भेद मत देदो ; ऐसा करना आफ़त मोल लेना है। ड्राइडन महोदय कहते हैं—"He who trusts a secret to his servant makes his own man his master." जो अपने नौकर को अपना भेद देता है, वह अपने ही नौकर को अपना मालिक बनाता है।

(२४) हमारी सारी उम्रके तजुर्बेका निचोड़ तो यही है, कि आप न किसी को दोस्त बनावें और न दुश्मन। जो आपका काम करेंगे, वे बदलेमें आपसे भी अपना काम बनानेकी उम्मीद रक्खेंगे। यदि, समय पर, आप उनका काम किसी वजह से न करेंगे या करनेमें असमर्थ होंगे, तो वे आपके शत्रु हो जायँगे। उस समय आप के दिल में बड़ी वेदना होगी। अगर किसी से दोस्ती ही न होगी, तो ऐसा अवसर न आयेगा और आप मनोवेदना से बचेंगे। जर्मन विद्वान् सोपनहर ने ठीक ही कहा है—"हमारा दूसरे लोगोंके साथ जो सम्बन्ध होता है, उस

यः हमारे सभी शोक और दुःखोंका जन्म होता है।"*
[सम्बन्ध स्थापित करनेसे ही हमें दुःख भोग करने पड़ते हैं।

दोहा-पाप निवारत हित करत, गुनगनि औगुन ढाँकि ।
दुख में राखत देत कछु, सन्मित्रन ये आँकि ॥७३॥

, The following are said to be the qualities of a good by holy men. He prevents his friend from evil-doing, him do useful things, conceals his secrets, proclaims od points, does not leave him in time of distress and him with money when necessary.

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति ।
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम् ॥
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति ।
स तः स्वयं परहिते सुकृतंभियोगाः ॥ ७४ ॥

नस तरह सूर्य, बिना कहे, आपही, कमलों को खिलाता द्रमा बिना कहे कुमुद-समूहको प्रफुल्लित करता है; मेघ ना याचना किये जल बरसाता है; उसी तरह सन्त बिना याचना किये ही, पराई भलाई का आप-से-आप करते हैं।

ामिनी-विलास" में लिखा है:—

सतपुरुषः खलु हिताचरणैर मन्दमा-
नन्दयंत्यखिल लोकमनुक्त एष ।

Almost all our sorrows spring out of our relations her people.—*Schopenhauer.*

अराधितः कथय केनकरैरुदारैरिन्दु-
र्विकाशयति कैरविणीकुलानि ॥

सत्पुरुष, बिना कहे ही, अपने हितकारी आचरण से सारे संसार को आनन्दित करते हैं। कहिये, चन्द्रमा की किसने आराधना की है, जिस से वह अपनी उदार किरणों से कुमुदिनी-कुल को खिलाता है ? अर्थात् परोपकार करना सज्जनों का स्वाभाविक गुण है। उनसे कहने-सुनने और अनुनय-विनय करने की दरकार नहीं।

किसी कविने ठीकही कहा है:—

बिना कहेह सत्पुरुष, पर की पूरें आश ।
कौन कहत है सूरकों, घर घर करत प्रकाश ॥
अति उदारता बड़न की, कहँलौं बरनै कोय ।
चातक जाँचे तनिक घन, बरस भरै घन तोय ॥

दोहा-कुमुदिनि प्रफुलित करत शशि, कमल विकासत भानु ।
बिन मांगे घन देत जल, त्योंही सन्त सुजान ॥ ७४ ॥

74. The sun opens up (the buds of) a lotus flower (without any request being made by the latter), the moon causes the opening of a Kumuda (another species of lotus) flower (unasked) and a cloud gives (rain) water without being requested (to do so). (This proves that) the good are anxious to benefit others of their own accord.

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्यये ।
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये ॥
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नान्ति ये ।
ये निघ्नंति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ॥ ७५ ॥

जो लोग अपने स्वार्थ का ख़याल न करके पराया भला करते हैं, वे सचमुच ही सत्पुरुष हैं; जो अपना स्वार्थ न बिगड़ने देकर पराया भला करते हैं; यानी अपना और पराया दोनों का हितसाधन करते हैं, वे साधारण पुरुष हैं; जो अपने स्वार्थ के लिये पराया काम बिगाड़ते हैं, वे मनुष्यरूप में राक्षस हैं और जो वृथा ही परायी हानि करते हैं, उन्हें क्या कहें, सो हमारी समझमें नहीं आता ।

जिसका जन्म-स्वभाव जैसा है, वैसा ही रहेगा । सत्पुरुषों का स्वभाव सत्पुरुषों के ही योग्य रहेगा और नीचों का नीचों के योग्य । नीच पराया काम बिगाड़ना ही जानते हैं, बनाना नहीं । कहा है—

घातयितुमेव नीचः परकार्य्यं वेत्ति न प्रसाधयितुम् ।
पातयितुमस्ति शक्तिर्वायोर्वृक्षं न चोन्नमितुम् ॥

नीच पराये कामको बिगाड़ना जानता है, पर बनाना नहीं जानता; वायु वृक्षको उखाड़ सकता है, पर जमा नहीं सकता। चूहा अन्न की पिटारी को गिरा सकता है, पर उठा

कर नहीं रख सकता। बिल्ली अगर दूध को पी नहीं सकती, तो लुढ़ा ही देती है। नीचों का स्वभाव ऐसा ही होता है।

सत्पुरुषोंके स्वभावके सम्बन्धमें किसी कविने कहा है—

उत्तम पर कारज करं, अपनो काज बिसार।
परै अन्न जहान को, ता पति भिक्षाधार॥

उत्तम पुरुष अपना काम बिसार कर, पराया काम करते हैं। अन्नपूर्णा के पति—शिवजी भिक्षा माँगते हैं, किन्तु वह सारे संसार को अन्न देकर पालन करती है। सत्पुरुष परोपकार में ही अपनी शोभा समझते हैं।

शिक्षा—जो अपना काम सिद्ध नहीं करते, पर पराया काम बिगाड़ते हैं, वे नीचों के भी सरदार हैं और जो अपना काम बनाने के लिये पराया काम बिगाड़ते हैं, वे नीच हैं। आप इन दोनों की राह पर भूल कर भी न चलें। अगर हो सके, तो अपने स्वार्थ का ख़याल भुला कर पराया भला करें; आप का इस लोक और परलोक दोनों में भला होगा; आपका नाम सत्पुरुषों की लिष्ट में लिखा जायगा; स्वर्ग और मोक्ष का द्वार आपको खुला रहेगा। अगर इतनी हिम्मत न हो, तो आप अपना भी काम बनावें और पराया भी; यह तरीक़ा भी बुरा नहीं।

छप्पय-*उत्तम नर पर अरथ करत, स्वारथको त्यागत।*
मध्यम परको अर्थ करत, स्वारथ अनुरागत॥

दुष्ट जीव निज काज करत, पर काज बिगारत ।
वे नहिं जाने जात, रूप चौथो जे धारत ॥
जिनको न होत निज काज कछु, औरनके स्वारथ हरत ।
तिनको न दरश क्षण देहु प्रभ, बात सुनत ही चित डरत ॥७५

75. On one side are those good men who do good to others even at the sacrifice of their own objects. The ordinary apply their energies for the sake of others if the objects of the latter are not contrary to theirs. Those are the devils of men who destroy other people's objects for the sake of their own. But we do not know (what to say of) those who dsstroy the gains of others without any cause.

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः ॥
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद्दृष्ट्वातु मित्रापदं ।
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वदीशी ॥७६॥

दूध में जल के मिलते ही दूधने अपने सारे गुण जल को दे दिये। इसी से दूध को जलते देखकर, जल भी अपना शरीर आग में होमने लगा। फिर दूधने अपने मित्र की इस आफ़त को देखकर, स्वयं आग में गिरना चाहा; परन्तु जल के छींटे पड़ते ही दूधने समझा कि मित्र आया, इसलिये वह शान्त हो गया। सत्पुरुषों की मैत्री दूध और जल की सी ही होती है।

शिक्षा—मैत्री करो तो, तो दूध पानी की सी करो।

कुण्डलिया-पानी पयसों मिलत ही, जान्यौ अपनो

आप भयौ फीकौ वहै, जलकों कियौ सुचित्त॥

जलकों कियो सुचित्त, तप्त पयकों जब जानी।

तब अपनौ तन बारि, बारि मन प्रीतहि आनी॥

उछल चल्यौ पय तबै, शान्ति जल छिरकत ठानी।

सत्पुरुषोंकी प्रीति रीति, ज्यों पय और पानी॥७६॥

76. When water was mixed with (became a friend of) milk, the latter from the start shared all its good qualities with it. As soon as the former saw that (its friend) the milk was going to be heated, it offered its own self to fire (i, e, it began to evaporate). Seeing the distress of its friend, (water,) the milk made up its mind to throw itself into the fire, but afterwards only calmed down when (its friend,) water was sprinkled on (reunited to) it. Such is the friendship of the good.

इतः स्वपिति केशवः कुलमितस्तदीयद्विषा-

मितश्च शरणार्थिनः शिखरिणां गणाः शेरते॥

इतोऽपि वडवानलः सह समस्तसंवर्तकै-

रहो विततमूर्जितं भरसहं च सिन्धोर्वपुः॥ ७७॥

समुद्र में एक ओर शेषशायी विष्णु सो रहे हैं; दूसरी ओर उनके शत्रु दानवों का परिवार पड़ा है; एक ओर इन्द्र

के वज्र से भयभीत हुए शरणार्थी मैनाक प्रभृति पर्वत पड़े हैं और एक तरफ प्रलयाग्नि समेत वड़वानल मौजूद है। अहो! समुद्रका शरीर कैसा बलवान् और विशाल तथा भार सहनेवाला है! उसकी सहनशीलता और उदारता की बलिहारी है!

सारांश—सत्पुरुष अपनी शरण में आनेवालों की सदा रक्षा करते हैं। वे आप कष्ट सहते हैं, पर अपने शरणार्थियों को कष्ट नहीं होने देते। यह बड़ों की ही सामर्थ्य है और कौन ऐसा कर सकता है?

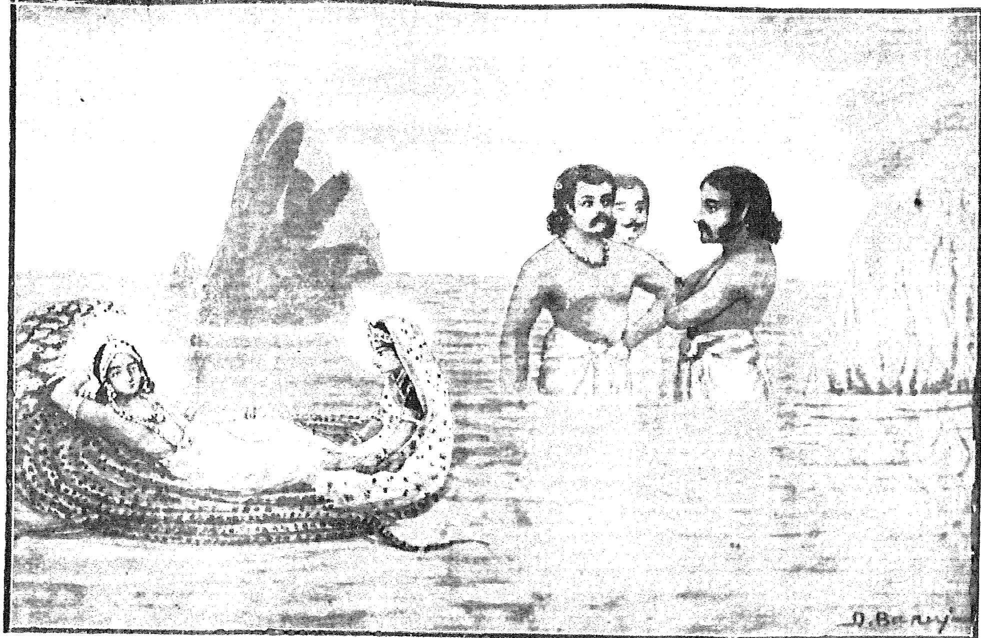
कवियोंने कहा है—

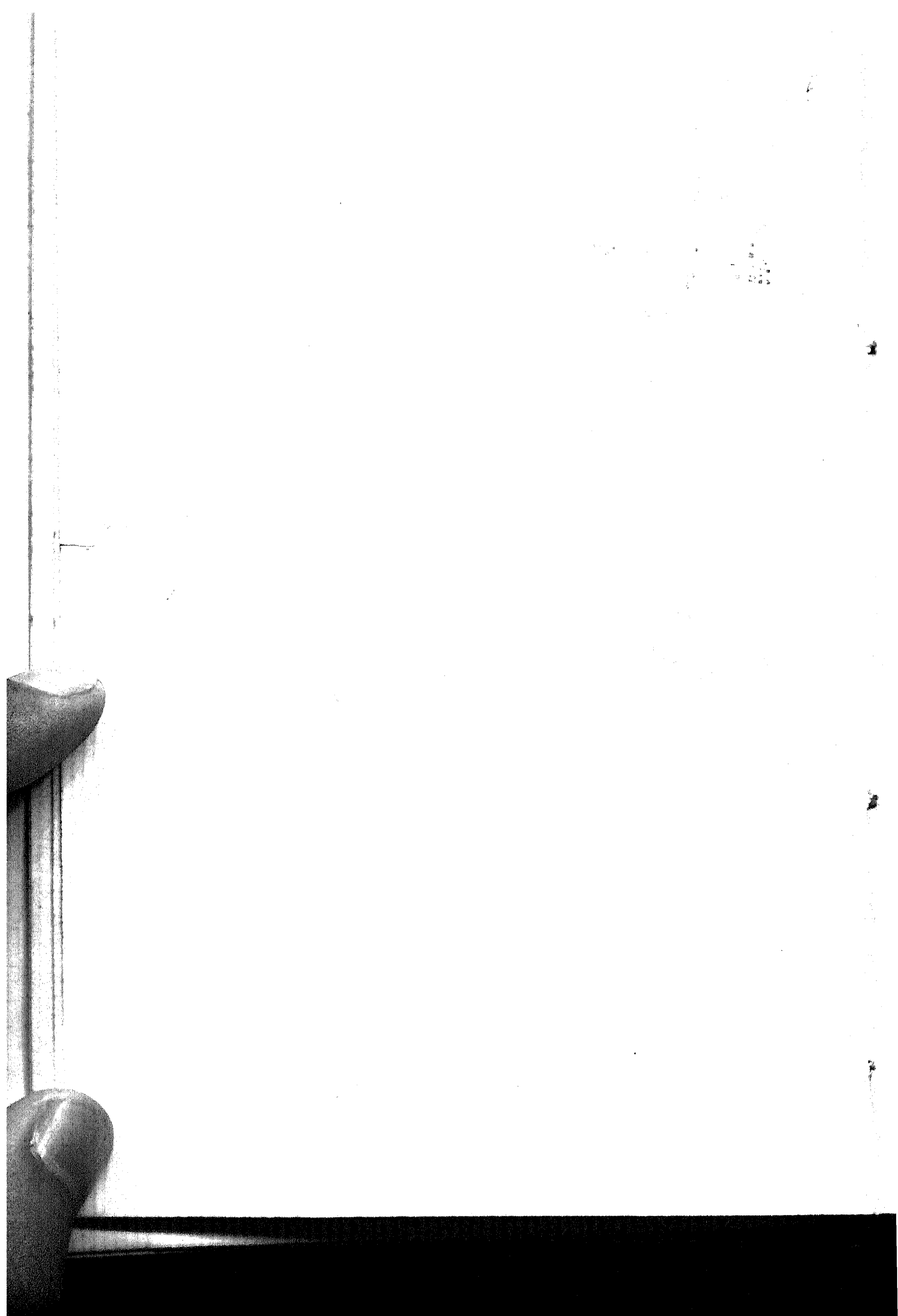
भले बुरे छोटे बड़े, रहैं बड़नि पै आय।
मकर अछर छर गिरि अनल, दधि मधि सकल बसाय॥

बड़े भार लै निरवहैं, तजत न खेद विचारि।
सेस धरा धरि धर धरै, अबलौं देत न डारि॥

सन्त कष्ट सह आपही, सुखि राखैं जु समीप।
आप जरै तउ औरकों, करै उजेरो दीप॥

छप्पय-इत सोवत श्रीकृष्ण, उत वैरी दानवगन।
इतकों गिरवरवृन्द, शरण सोवत निर्भय मन॥
इत कों बाड़व अग्नि, रहत जलमाहिं निरन्तर।
मच्छ कच्छ इत्यादि, रहत सुखसों सब जलचर॥





अति ही अगाध ऊँचो अधिक, सहन शीलताकी अवधि ।

बिस्तार अमित कहिये कहा' अद्‌भुत गति राखत उदधि ॥७७॥

77· In one place (in the Ocean) the God Vishnu enjoys His sleep, in another there lives the family of His enemies (the Rakshasas). On the one hand, the groups of mountains lie anxious for shelter, and on the other there is the sea-fire along with all the sea-currents, How wonderfully powerful and capable of sustaining all these burdens is the Ocean !

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः ।
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम् ॥
मान्यान्मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रख्यापय स्वान्गुणा-
न्कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम् ॥७८

तृष्णा को त्याग, क्षमा को सेवन कर, मद को छोड़, पापों से प्रीति न कर, सच बोल, साधुओं की रीति पर चल, पण्डितों की सेवा कर, माननीयों का मान कर, शत्रुओं को भी प्रसन्न रख, अपने गुणों की प्रसिद्धि कर, अपनी कीर्त्ति का पालन कर और दीन-दुखियों पर दया रख— क्योंकि ये सब सत्पुरुषों के लक्षण हैं ।

तृष्णा पिशाचिनी ।



संसार में आशा और तृष्णा के समान दुःखदायी और मनुष्य को बन्धन में बाँध कर इह लोक और परलोक बिगाड़ने वाले

और कुछ भी नहीं हैं। जिस को धन-तृष्णा नहीं, वही सच्चा सुखी है। जिसे धन से नफरत है; वह देवों का देव है।*

शंकराचार्य्यकृत प्रश्नोत्तरमाला में लिखा है ;—

बद्धो हि को यो विषयानुरागी।
का वा विमुक्तिर्विषये विरक्तिः ॥
को वास्ति घोरो नरकस्स्वदेह-
स्तृष्णाक्षयस्स्वर्गपदं किमस्ति ॥

बन्धन में कौन है ? विषयी। विमुक्ति क्या है ? विषयों का त्याग। घोर नरक क्या है ? अपनी देह। स्वर्ग क्या है ? तृष्णा का नाश।

मनुष्य बूढ़ा हो जाता है, पर तृष्णा बूढ़ी नहीं होती। बुढ़ापे में यह और भी तेज़ हो जाती है और मरणकाल तक मनुष्य को अपने फेर में फँसाये रखकर उसका सर्व्वनाश कर देती है। कहा है—

जीर्य्यन्ते जीर्य्यतः केशा दन्ता जीर्य्यन्तिजीर्य्यतः।
जीर्य्यतश्चक्षुषी श्रोत्रे तृष्णैका तरुणायति॥
इच्छति शती सहस्रं सहस्री लक्षमीहते।
लक्षाधिपस्तथा राज्यं राज्यस्थः स्वर्गमीहते ॥

जीर्ण होने से बाल जीर्ण हो जाते हैं, जीर्ण होने से दाँत

* Excellence and greatness of soul are most conspicuously displayed in contempt of riches.

जीर्ण हो जाते हैं, जीर्ण होनेसे आँख और कान भी जीर्ण हो जाते हैं; पर एक तृष्णा जवान होती जाती है।

सौ वाला हज़ार को, हज़ार वाला लाख को, लाखवाला राज्य को और राज्याधिपति स्वर्ग की इच्छा करता है।

तृष्णा निर्धनों को तो अपने चंगुलों में दाबे ही रहती है; पर धनियोंको भी नहीं छोड़ती। धनियों को ग़रीबों से ज़ियादा तृष्णा होती है। वह सदा निन्यानवे के फेर में पड़े रहते हैं। उनकी तृष्णा पूरी नहीं होती, कि काल आकर उनकी चोटी पकड़ लेता है। तृष्णाके फेरमें पड़कर,मनुष्य अपने पैदा करने वाले को भी भूल जाता है। अन्त समय बहुत कुछ तड़-फता और पछताता है; चाहता है, कि यदि और कुछ दिन भी जीऊँ, तो तृष्णा को त्यागकर भगवद्भजन करूँ; पर उस समय तो एक क्षण भी उसे मिल नहीं सकता। इसलिये बचपन और जवानी में ही, मनुष्य को तृष्णा का छेदन कर, परोपकार और ईश्वर-भजन से अपना जीवन सफल करना चाहिये। तृष्णा का मार "सन्तोष" है। जिसे सन्तोष है, उस से तृष्णा डरती और कोसों दूर भागती है। तृष्णामें दुःख-ही-दुःख है और सन्तोष में सुख-ही-सुख है। इसी से कहा है—

> सब सुख है सन्तोष में, धरिये मन सन्तोष।
> नेक न दुर्बल होत है, सर्प पवन के पोष॥

और भी कहा है—

सन्तोषः परमं लाभः सन्तोषः परमं धनम्।
सन्तोषः परमंचायुः सन्तोषः परमं सुखम्॥

तृष्णादास सेठ।

एक तृष्णादास सेठ की कहानी हमने कहीं पढ़ी है, उसे पाठकों के उपकारार्थ यहाँ लिखते हैं :—

तृष्णादास सेठ सदा निन्यानवे के फेर में लगे रहते थे। करोड़ों रुपये होने पर भी, आपकी तृष्णा शान्त न होती थी। आप सदा सोचते थे, अब अरब रुपये होनेमें इतने करोड़ घटते हैं। अमुक काम में नफा होने से, मैं अरबपति हो जाऊँगा। एक दिन उनको एक विद्वान् ने समझाया,—"सेठ जी! भगवान् ने बहुत दिया है; सन्तोष करो; बिना सन्तोष सुख न होगा। ख़्वाहिशों का बढ़ाना ही मनुष्यके बन्धन और दुःखों का मूल है। महात्मा सुकरात ने कहा है—'The fewer our wants, the nearer we resemble the goods., मनुष्य ज्यों-ज्यों अपनी ख़्वाहिशों को कम करता है, वह देवताओं के समकक्ष होता जाता है। अँगरेज़ों में भी एक कहावत है—Contentment is better than wealth., यानी "धन से सन्तोष अच्छा है।" पण्डितजी का इतना सब समझाना-बुझाना अरण्यरोदन हुआ; सेठजी कुछ न समझे।

एक रोज़ सेठजी अपनी गद्दी में बैठे हुक्का पी रहे थे; इसी समय ख़बर मिली, कि आपके पोता हुआ है। आपने उसी समय नौबत-नक़ारे बजने का हुक्म दिया। नौकर-चाकरोंको इनाम बँटने लगा। इतनेही में, फिर कोई ख़बर लेकर आया, कि बच्चा और ज़च्चा दोनों परमधाम को सिधार गये। सुनते ही सेठजी करम ठोकने लगे और ऐसे शोक-सागर में डूबे, कि तनो-बदन का होश न रहा। इसी बीच, किसीने यकायक ख़बर दी, कि आपने जो विलायतकी लाटरी में चिट्ठी डाली थी, वह चिट्ठी आपही के नाम उठी है। सुनते ही सेठजी खुश हो गये; सारा रंज-ग़म और दुःख भूल गये; ताज़ा हुक्का भरनेका हुक्म दिया गया। इतने में एक आदमीने आकर कहा—"सेठ जी आपका जहाज़, भूमध्यसागर में, विकट तूफान आने से, डूब गया।" सुनते ही सेठजी को काठ मार गया। हुक्का धराका धरा ही रह गया। अब आपको होश हुआ। आप मन-ही-मन कहने लगे,—"उस दिन जो पण्डितजीने कहा था, कि ख़्वाहिशों को बढ़ाकर, उनके पूरा करने के लिये, तृष्णा की तरंगों में पड़ना दुःखका मूल है, वह बात सोलह आने ठीक है।" आपने उसी दिन से तृष्णा-पिशाचनी को त्याग, सन्तोष से मैत्री कर ली। सन्तोष से मैत्री करते ही, उन्हें हर ओर सुख-ही-सुख दीखने लगा। न जाने वे दुःख और शोक कहाँ बिलाय गये *

* A storm at sea, a vine-wasting hail tempest, a disappointing farm, cause no anxiety to him who is content with enough.—Hor.

क्षमा प्रभृति पर हम पहले लिख आये हैं, इसलिये दुबारा लिखना व्यर्थ है ।

शत्रु के प्रति दया प्रकाश ।

मनुष्य को चाहिये प्राणिमात्रपर दया रक्खे; सब को दान, मान-सम्मान और मीठे बचनों से खुश रक्खे ; यहाँ तक कि शत्रुओं को भी प्रसन्न रक्खे * । जो अपने शत्रु पर भी दया करते हैं, शत्रुओं से भी अपना चित्त शुद्ध रखते हैं, शत्रुओं की भी कल्याण-कामना करते हैं, वे वास्तव में महापुरुष हैं ।

उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः ।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ॥

जो अपने उपकारियों में साधु है, उसकी साधुता में क्या गुण है ? जो अपने अपकारियोंपर कृपा करे, महात्मा उसे ही साधु कहते हैं ।

सचमुच ही यह बड़ा कठिन काम है। कठिन है जिन के लिये कठिन है ; महापुरुषों के लिये कठिन नहीं । उनका तो स्वभाव ही ऐसा होता है, कि वे अपनी बुराई करने वालों के साथ भी भलाई करते हैं । "भामिनी विलास" में लिखा है ।

अयि मलयज महिमाऽयं,
कस्य गिरामस्तु विषयस्ते ।

* Regard for the wretched is a duty, and deserving of praise even in an enemy.—Ovid.

उद्गिरतो यद्गरलं फणिनः
पुष्णासि परिमलोद्गारैः ॥

हे चन्दन! तेरी महिमाका बखान कौन कर सकता है? जो सर्प तेरे ऊपर ज़हर उगलते हैं, उन्हींको तू अपनी सुगन्धसे पोषता है। तात्पर्य्य यह, कि सज्जन अपने अपकारीके अपकार को भी उपकार ही समझते हैं और उसका भला करते हैं।

अपनी हानि करने वालों, अपनी निन्दा करने वालों और अपने संग शत्रुभाव रखनेवालों पर भी जो मिहरबानी करते हैं, उनकी शुभकामना करते हैं,—उन सत्पुरुषों से कमलापति नारायण प्रसन्न होकर उनकी इच्छा पूरी करते हैं। ध्रुव के अपनी विमाता की कल्याण-कामना करते ही, भगवान्‌ने उन्हें दर्शन दिये। जब मनुष्य इस दर्जे पर पहुँच जाता है, तब वह परमात्मा के बहुत नज़दीक हो जाता है। उस समय उसे कोई अभाव और दुःख नहीं रहता। राजर्षि भर्तृहरि जी ने यहाँ जो १२ उपदेश दिये हैं, वे मनुष्यमात्र को अपने हृदयपट पर लिख लेने और सदा याद रखने चाहियें; साथ ही इन पर अमल करने का भी अभ्यास करना चाहिये। मनुष्य के कल्याण को इन से उत्तम और नसीहत हो नहीं सकतीं। यह उत्तम से उत्तम उपदेशों का मक्खन है। आप इन उपदेशों को सुरपति के बग़ीचे का कल्पवृक्ष समझें। इन पर अमल करने वाले को संसार की सुख-सम्पत्ति, सारी पृथ्वी का राज्य, और, स्वर्ग तो क्या चीज़ है, वह परमपद भी मिल

सकता है, जिस के लिए देवता भी तरसते हैं। दुःख और क्लेश, आपद और मुसीबत तो इन उपदेशों पर चलने वाले के नज़दीक, स्वप्न में भी, आ नहीं सकतीं। मनुष्यो! संसार के और झंझटों में न पड़, इन पर चलो। दुनियवी थोथे कामों में पचना-मरना, वृथा आयु खोना है।

छप्पय-तृष्णाको तजि देहु, क्षमाको भजन करहु नित।
दया हिये में राखि, पाप सों दूर राखि चित ॥
सत्य बचन मुख बोल, धर्म पदवी जिय धारहु।
सतपुरुषन की सेव, नम्रता अति विस्तारहु ॥
सब गुण सु आपने गुप्त रखि, कीरति परपालन करहु।
करि याद दुखित नर देखके, सन्त रीति यह अनुसरहु ॥७८॥

78 Abstain from avarice, cultivate gentle habits, give up vanity, do not cherish a desire for sin, speak the truth, follow the path of good men, serve the learned, honour those who are worthy of respect, even tolerate thy enemies, display thy good qualities, take care of thy reputation and sympathise with the afflicted. These are the attributes of good men.

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ॥
परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसंतः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥७९॥

जिन के तन, मन और वाणी में पुण्यरूपी अमृत भरा है, जो अपने उपकारों से तीनों लोकों को तृप्त करते हैं और जो दूसरे के परमाणु-समान गुणों को पर्व्वत के समान बढ़ाकर अपने हृदय में प्रसन्न होते हैं—ऐसे सत्पुरुष इस जगत् में विरले ही हैं।

नीच लोग कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं और मन में कुछ होता है। उनका मन, उनकी वाणी और उनकी क्रिया का एक रूप नहीं होता। परन्तु सत्पुरुषों के जो मन में होता है, वही उनकी ज़बान से निकलता है और जो कुछ ज़बान से निकलता है, उसे ही वह करते हैं। सत्पुरुष अपने तन, मन और वचन से सदा परोपकार में लगे रहते हैं। वे अपना जीवन ही परोपकार के लिये समझते हैं। नीच लोग पराये बड़े से बड़े गुण को छोटा कर देते हैं, उस में अनेक दोष लगा देते हैं; पर सज्जन लोग पराये छोटे से छोटे गुण को भी पहाड़ का रूप देकर, अपने मन में बहुत ही खुश होते हैं। क्या यह कठिन, अति कठिन तपस्या नहीं है? क्या ऐसे सत्पुरुष इस जगत् में दिखाई देते हैं? धरती माता ऐसे सत्पुरुषोंसे नितान्त शून्य तो नहीं है, पर ऐसे पुरुषरत्न कहीं-कहीं ही होते हैं। पृथ्वी के जिस खण्ड को ऐसे महा-पुरुष शोभायुक्त करते हैं, वह भूखण्ड परम पवित्र तीर्थ और ऐसे सज्जन मनुष्यमात्र के वन्दनीय देवता होते हैं।

कहा है—

वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचोवाचः ।
करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः ॥

जो सदा प्रसन्न रहते हैं, जिनके हृदय में दया है, ज़बान में अमृत है और जो परोपकारपरायण हैं, वे किस के वन्दनीय नहीं हैं ?

शंकराचार्य्यकृत प्रश्नोत्तरमाला में लिखा है—

विषाद्विषं किं विषयास्समस्ता ।
दुःखी सदा को विषयानुरागी ॥
धन्योऽस्ति को यस्तु परोपकारी ।
कः पूजनीयः शिवतत्त्वनिष्ठः ॥

सब से बड़ा विषय कौनसा है ? सभी विषय । सदा दुखी कौन है ? विषयानुरागी । धन्य कौन है ? जो परोपकारी है । पूजनीय कौन है ? जो शिवतत्त्वनिष्ठ है ।

दोहा-अमृत भरे तन मन बचन, निशिदिन जग उपकार ।
परगुण मानत मेरु सम, विरले जन संसार ॥ ७९ ॥

79. There are certain holy men who are full of the nectar of virtuous deeds in mind, speech and body, who please the three Bhuvanas (worlds) with series of philanthropic actions and who enlarge their hearts by always magnifying the particles of other people's good qualities into mountains.

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव ॥
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण
कंकोलनिंबकुटजा अपि चन्दनाःस्युः ॥८०॥

उस सोने के सुमेरु पर्वत और चाँदी के कैलाश पर्वत से संसार को क्या फायदा, जिन पर पैदा होनेवाले वृक्ष जैसे-के-तैसे ही बने रहते हैं? हम तो मलयाचल को ही अच्छा समझते हैं, जिस के संसर्ग से कंकोल, नीम और कुटज प्रभृति के कड़वे वृक्ष भी चन्दन के वृक्ष हो जाते हैं।

खुलासा—सुमेरु और कैलाश पर पैदा होनेवाले वृक्ष उनके संसर्ग से सोने चाँदी के नहीं हो जाते, इसलिये उन से संसार को कोई लाभ नहीं। उनसे मलय पर्वत अच्छा, जिसके संसर्ग से, वहाँ पैदा होनेवाले नीम और कुटज प्रभृति के वृक्ष कड़वे होने पर भी चन्दन के वृक्ष हो जाते हैं। बड़ों के संसर्ग से ऐसा ही होता है। कहा है—

महाजनस्य सम्पर्कः कस्य नोन्नतिकारकः।
पद्मपत्रस्थितं तोयं धत्ते मुक्ताफलश्रियम् ॥

महाजनोंका संसर्ग किसकी उन्नति नहीं करता? कमल के पत्ते पर रक्खा हुआ जल मोती की सी कान्ति धारण करता है।

जिस से किसी का भला न हो, उसका होना न होना

यकसाँ है। अपने लिये तो सभी जीते हैं, जो पराये लिये जीता है, जिससे दूसरों को फायदा पहुँचता है, उसीका जीना सफल है। जो धनवान् होकर, दीन-दुखियोंका कष्ट निवारण नहीं करता, उसके धनी होने से क्या लाभ? एक उपालम्भ (उलाहना) और भी सुनिये;—

किं खलु रत्नैरेतैः किं पुनरभ्रायितेन वपुषाते।
सलिलमपि यन्न तावकमर्णववदनं प्रयाति तृषितानाम्॥

हे सागर! तेरे अमूल्य रत्नों और मेघ के समान शरीर से क्या लाभ, जो तेरा जल प्यास से घबराये हुए प्राणियों के मुँह में भी नहीं पड़ता? अर्थात् अगर किसी सम्पत्तिवान से किसी प्राणी का उपकार न हुआ, तो उसके सम्पत्तिशाली होने से दुनिया को क्या?

जिस से संसार का उपकार न हो, वह बड़ा होने पर भी किस काम का? जिस से दुखियाओंका दुःख दूर हो, वह छोटा भी अच्छा। "जेठ की धूपसे जलते हुए, प्यास से घबराये हुए बटोही, मेरे सूख जाने पर किस के पास जायँगे" ऐसी बात कहने वाला, राह किनारे का थोड़ी संपदावाला सरोवर धन्य है! अखण्ड जलवाले समुद्र को लाख-लाख धिक्कार है, जिस से प्यासों की प्यास भी नहीं बुझती!!

लीजिये, उस्ताद ज़ौक़ का भी एक उपालम्भ सुनिये—

सेराब न हो जिससे कोई तिशनये मक़सूद।
ऐ ज़ौक़ जो वह आबेबक़ा भी है, तो क्या है॥

जिस से किसी प्यासे की प्यास न बुझे, वह अमृत भी हो तो किस काम का ? उस से दूसरों का क्या लाभ ?

सोरठा-ऐरे निलज सुमेर, तो साथी पाथर रहे ।

मलयागिरि कहँ हेर, कुटज नीम चन्दन किये ॥८०॥

80. What is the use of the golden (Meru) mountain or the silver (Kailas) mountain on which the growing trees remain only (simple) trees ? We value (above all) the Malaya mountain on which even the Kankola, Nimba and Kutaja trees (having a bitter taste) are transformed into sandal trees.

धैर्य्य-प्रशंसा ।

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ॥
सुधां विना न प्रययुर्विरामं न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः॥८१

समुद्र मथते समय, देवता नाना प्रकार के अमोल रत्न पाकर भी सन्तुष्ट न हुए—उन्होंने समुद्र मथना न छोड़ा । भयानक विष से भयभीत होकर भी, उन्होंने अपना उद्योग न त्यागा । जब तक अमृत न निकल आया, उन्होंने विश्राम न किया—अविरत परिश्रम करते ही रहे । इस से यह

यकसाँ है। अपने लिये तो सभी जीते हैं, जो पराये लिये जीता है, जिससे दूसरों को फायदा पहुँचता है, उसीका जीना सफल है। जो धनवान् होकर, दीन-दुखियोंका कष्ट निवारण नहीं करता, उसके धनी होने से क्या लाभ? एक उपालम्भ (उलाहना) और भी सुनिये;—

किं खलु रत्नैरेतैः किं पुनरभ्रायितेन वपुषाते।
सलिलमपि यन्न तावकमर्णववदनं प्रयाति तृषितानाम् ॥

हे सागर! तेरे अमूल्य रत्नों और मेघ के समान शरीर से क्या लाभ, जो तेरा जल प्यास से घबराये हुए प्राणियों के मुँह में भी नहीं पड़ता? अर्थात् अगर किसी सम्पत्तिवान से किसी प्राणी का उपकार न हुआ, तो उसके सम्पत्तिशाली होने से दुनिया को क्या?

जिस से संसार का उपकार न हो, वह बड़ा होने पर भी किस काम का? जिस से दुखियाओंका दुःख दूर हो, वह छोटा भी अच्छा। "जेठ की धूपसे जलते हुए, प्यास से घबराये हुए बटोहो, मेरे सूख जाने पर किस के पास जायँगे" ऐसी बात कहने वाला, राह किनारे का थोड़ी संपदावाला सरोवर धन्य है! अखण्ड जलवाले समुद्र को लाख-लाख धिक्कार है, जिस से प्यासों की प्यास भी नहीं बुझती!!

लीजिये, उस्ताद ज़ौक़ का भी एक उपालम्भ सुनिये—

सेराब न हो जिससे कोई तिशनये मक़सूद।
ऐ ज़ौक़ जो वह आबेबक़ा भी है, तो क्या है ॥

जिस से किसी प्यासे की प्यास न बुझे, वह अमृत भी हो तो किस काम का ? उस से दूसरों का क्या लाभ ?

सोरठा-ऐरे निलज सुमेर, तो साथी पाथर रहे ।

मलयागिरि कहँ हेर, कुटज नीम चन्दन किये ॥८०॥

So. What is the use of the golden (Meru) mountain or the silver (Kailas) mountain on which the growing trees remain only (simple) trees ? We value (above all) the Malaya mountain on which even the Kankola, Nimba and Kutaja trees (having a bitter taste) are transformed into sandal trees.

धैर्य्य-प्रशंसा ।

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ॥
सुधां विना न प्रययुर्विरामं न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः॥८१

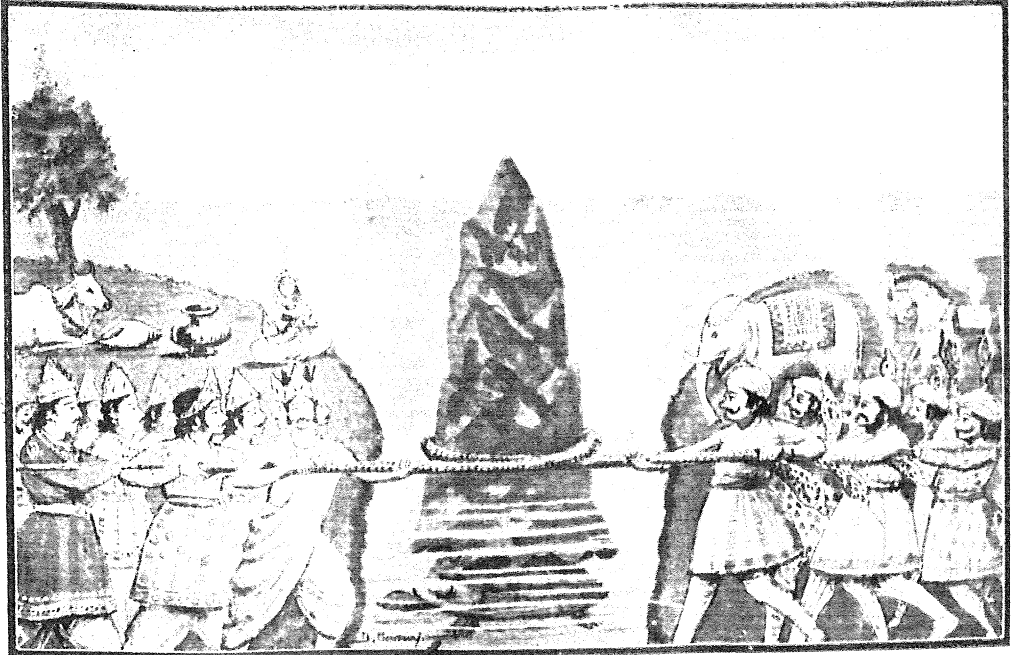
समुद्र मथते समय, देवता नाना प्रकार के अमोल रत्न पाकर भी सन्तुष्ट न हुए—उन्होंने समुद्र मथना न छोड़ा। भयानक विष से भयभीत होकर भी, उन्होंने अपना उद्योग न त्यागा। जब तक अमृत न निकल आया, उन्होंने विश्राम न किया—अविरत परिश्रम करते ही रहे। इस से यह

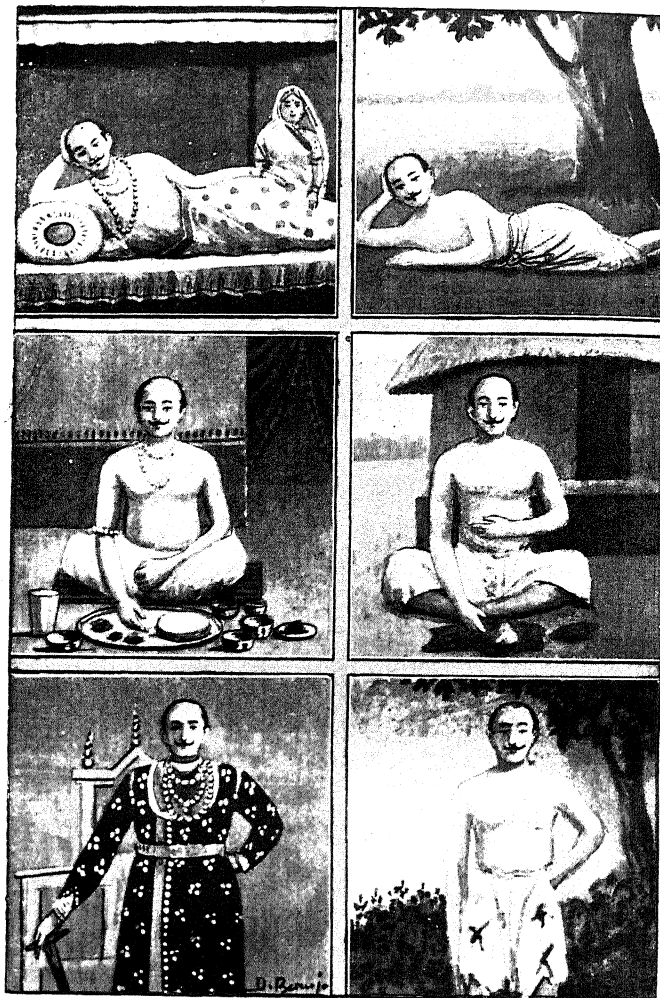
सिद्ध होता है, कि धीर पुरुष अपने निश्चित अर्थ—इच्छित पदार्थ—को पाये बिना, बीच में घबरा कर, अपना काम छोड़ नहीं बैठते ।

निर्बुद्धि पुरुष प्रथम तो विघ्न-भयसे किसी काम को आरम्भ ही नहीं करते ; यदि कर भी देते हैं, तो बीच में विघ्न-बाधा उपस्थित होते ही काम को छोड़ बैठते हैं ; पर बुद्धिमान हज़ार-हज़ार विघ्न-बाधा उपस्थित होने पर भी, कामको बीचमें नहीं छोड़ते । प्राचीन काल में, महात्मा ध्रुवने परमात्मा के दर्शनोंकी इच्छा से तपश्चर्य्या आरम्भ की । वन में उन्हें बहुतसे हिंसक पशुओं ने डराया तथा और भी विघ्न उपस्थित हुए, पर वे अपने आसन से ज़रा भी न डिगे—जब परमात्माके दर्शन हो गये, तभी उन्होंने अपना काम छोड़ा, ऐसा ही सूर्यकुल-तिलक महाराजा भगीरथ के साथ हुआ । उन्हें भी इन्द्र ने बहुत डराया-धमकाया, पर वे न डरे; अपना काम करते ही रहे । जब उन्हें गङ्गा के मर्त्यलोक में आने का वर मिल गया, तभी वे तपस्या से विरत हुए । कहा है—

> महत्त्वमेतन्महतां नयालङ्कारधारिणाम् ।
> न मुञ्चन्ति यदारब्धं कृच्छ्रेऽपि व्यसनोदये ॥

नीति का भूषण धारण करने वाले महात्माओं का यही महत्त्व है, कि वे घोर विपद् पड़ने पर भी, अपने आरम्भ किये काम को छोड़ नहीं बैठते ।





कभी ज़मीन पर सो रहते हैं, और कभी उत्तम पलँग पर ; कभी शाक-पात खाकर रहते हैं और कभी दाल भात खाकर ; कभी गुदड़ी पहनते हैं और कभी दिव्य वस्त्र धारण करते हैं। मनस्वी और कार्य्यार्थी पुरुष सुख और दुःख दोनों को समान समझते हैं।

Narsingh Press. Calcutta.

(पृष्ठ ३४६)

छप्पय—महा अमोलक रत्न, नाहिं रीझे सुर तिनसों ।
महा हलाहल जान, प्राण डरपत नहिं जिनसों ॥
रहत चित्तकी वृत्ति, एक अमृत सों अतिही ।
तैसेही नर धीर, काज निश्चे कर मतिही ॥
सब दोष रहित अरु गुण सहित, ऐसे कारन मन धरत ।
तिहि को सम्रथ अमृत लहत, कोऊ सुखको नहिं करत ॥८१॥

81. (While churning the Ocean) the gods were not satisfied with (finding) the precious gems (alone), not were they frightened by the dreadful Poison. They did not cease their efforts till they had found the nectar. (This shows that) the persevering never give up the objects which they have set their hearts upon.

क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यंकशयनं ।
क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ॥
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो ।
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥८२॥

कभी ज़मीन पर सो रहते हैं और कभी उत्तम पलँग पर सोते हैं, कभी साग-पात खाकर रह जाते हैं और कभी दाल भात खाते हैं, कभी फटी पुरानी गुदड़ी पहनते हैं और कभी दिव्य वस्त्र धारण करते हैं,—कार्य्यसिद्धि पर कमर कस लेने वाले धीर पुरुष सुख और दुःख दोनोंको ही कुछ नहीं समझते।

जो धीर पुरुष सुख-दुःख, मान-अपमान और निन्दा-स्तुति की परवा नहीं करते, केवल कार्य्य-साधन से मतलब रखते हैं, जो शरीर को नाश करके भी कार्य्य सिद्ध करना चाहते हैं, वे अवश्य ही कठिन-से-कठिन काम को सिद्ध कर लेते हैं। कार्य-साधन के लिए स्वयं त्रिलोकीनाथ को कभी वामन, कभी शूकर और कभी नृसिंह रूप धारण करना पड़ा; तब इतर लोगों की क्या बात है? कहते हैं, महाबली रावण ने भी, अपनी कार्य्यसिद्धि के लिये, गधे को सिर पर रक्खा और एक पुष्प कम हो जाने पर, अपना नेत्र ही शिवजी को अर्पण करने के लिए तय्यार हो गया। यूरोपविजयी महावीर नेपोलियन ने अपनी विजय के लिये, अनेक बार दिन को दिन और रात को रात नहीं गिनी; आँधी वर्षा और तूफान में घोर कष्ट सहन किये। शेष में, विजय प्राप्त करके ही दम लिया। मनस्वी पुरुषों का ऐसा ही स्वभाव होता है।

कहा है—

> अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः।
> स्वार्थमभ्युद्धरेत्प्राज्ञः स्वार्थभ्रंशोहि मूर्खता॥

अपमान को आगे और मान को पीछे रख कर, बुद्धिमान को अपना कार्य सिद्ध करना चाहिये। अपना काम न बनाना ही मूर्खता है।

सारांश—धीर पुरुष स्वकार्य्य सिद्धि के आगे मान-अपमान और दुःख-सुख को कोई चीज़ नहीं समझते।

दोहा-भूमिशयन कहुँ पलँग पै, शाकाहार कहुँ मिष्ट ।
कहुँ कन्था सिरपाव कहुँ, अर्थी सुख दुख इष्ट ॥८२॥

82. A resolute person who has made up his mind to do a thing does not care for hardships or comfort. He sometimes sleeps on (bare) ground and sometimes on a (luxurious) bed. Often he eats vegetables only and when avalable takes rice for his food. When necessary, he would clothe himself with a single sheet of patched rags and sometimes would put on a valuable dress.

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः ॥
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ॥ ८३ ॥

ऐश्वर्य्य का भूषण सज्जनता, शूरता का भूषण अभिमान-रहित बात कहना, ज्ञान का भूषण शान्ति, शास्त्र देखने का भूषण विनय, धन का भूषण सुपात्र को दान देना, तप का भूषण क्रोधहीनता, प्रभुता का भूषण क्षमा और धर्मका भूषण निश्छलता है ; किन्तु अन्य सब गुणों का कारण और सर्व्वोत्तम भूषण "शील" है ।

शंकराचार्य्यकृत प्रश्नोत्तरमाला में लिखा है:—

किम्भूषणाद्भूषणमस्ति शीलं ।
तीर्थम्परं किं स्वमनो विशुद्धम् ॥

किमत्र हेयं कनकं च कान्ता।

श्राव्यं सदा किं गुरुवेदवाक्यम् ॥

उत्तम से उत्तम आभूषण क्या है ? शील। उत्तम से उत्तम तीर्थ कौनसा है ? अपने मन की शुद्धता। इस जगत् में त्यागने योग्य क्या है ? धन और स्त्री। सदा सुनने लायक़ क्या है ? गुरु और वेद का वाक्य।

संसार में "स्वभाव" सबके ऊपर समझा जाता है। जिसका स्वभाव अच्छा नहीं, वह हज़ार-हज़ार गुण होने पर भी निकम्मा है। जिस के स्वभाव में "शील" है, वह सब गुणियों का सर्दार है। शीलवान् ही जगत् की सम्पत्तियों का स्वामी होता है। कार्यनिपुण पुरुष सम्पत्ति पाता है, पथ्य-सेवी मङ्गल, सुख और निरोगता पाता है, उद्योगी विद्या की सीमा पा जाता है; पर विनयी (शीलवान्) पुरुष धन, धर्म और यश—तीनों को पाता है।

हमें एक शीलवान् की कहानी याद आ गई है। पाठक उसे सुनें:—"एक गाँवमें दो भाई रहते थे। उनमेंसे एक अत्यन्त विद्वान्, मधुरभाषी, शान्त और सब की सह लेने वाला था। उस पर कोई क्रोध करता, तो वह दब जाता और हमेशा ऐसी जगह बैठता था, जहाँ से उसे कोई उठा न सके। दूसरा भाई एकदम निरक्षर भट्टाचार्य्य और अत्यन्त कड़वा बोलने वाला था। अगर उस पर कोई क्रोध करता, तो वह उसका सिर फोड़ने को तैयार हो जाता। विद्वान् भाई से गाँव के

सब लोग खुश रहते थे। उसके काम के लिये तन-मन से तैयार हो जाते थे। अगर वह किसी से कुछ मदद माँगता तो लोग फौरन ही उसे मदद देते। किन्तु दूसरे भाई से कोई बात भी नहीं करता था। एक दिन उसने अपने भाई से पूछा—"भाई! तुम्हारे पास ऐसी कौन सी तरकीब है, जिसके कारण तुमसे सबलोग राज़ी रहते हैं और तुम चाहते हो सो फौरन कर देते हैं; मुझसे तो कोई बात भी नहीं करता।"उसने कहा "मेरे पास शील है; तेरे पास वह नहीं है।" कहा है—

गिरि ते गिरि परिबो भलो, भलो पकरिबो नाग।

अग्नि माँहि जरिबो भलो, बुरो शील को त्याग॥

सारांश—यदि इहलोक और परलोक में सुख चाहो, तो शील व्रत धारण करो। शील सर्वगुणों का राजा है। शीलवान् को जगत् मस्तक झुकाता है। शीलवान्के लिये अग्नि शीतल हो जाती है, समुद्र में टखनों-टखनों पानी हो जाता है, बड़ा भारी सुमेरु पर्वत ज़रा से बालूके दाने बराबर हो जाता है, सिंह बकरीसा हो जाता है, जङ्गल शहर हो जाता है, विष अमृत हो जाता है, त्रिलोकी की सम्पदा चरणों में आप-से-आप आजाती है, स्वर्ग उसकी बाट देखता है; बहुत क्या—शील-वान् को जगदीश भी मिल जाते हैं। हम तो क्या चीज़ हैं; शील की महिमा का शायद गणेश और सरस्वती भी कठिनता से बखान कर सकें।

किमत्र हेयं कनकं च कान्ता ।
श्राव्यं सदा किं गुरुवेदवाक्यम् ॥

उत्तम से उत्तम आभूषण क्या है ? शील। उत्तम से उत्तम तीर्थ कौनसा है ? अपने मन की शुद्धता। इस जगत् में त्यागने योग्य क्या है ? धन और स्त्री। सदा सुनने लायक क्या है ? गुरु और वेद का वाक्य।

संसार में "स्वभाव" सबके ऊपर समझा जाता है। जिसका स्वभाव अच्छा नहीं, वह हज़ार-हज़ार गुण होने पर भी निकम्मा है। जिस के स्वभाव में "शील" है, वह सब गुणियों का सर्दार है। शीलवान् ही जगत् की सम्पत्तियों का स्वामी होता है। कार्यनिपुण पुरुष सम्पत्ति पाता है, पथ्य-सेवी मङ्गल, सुख और निरोगता पाता है, उद्योगी विद्या की सीमा पा जाता है; पर विनयी (शीलवान्) पुरुष धन, धर्म और यश—तीनों को पाता है।

हमें एक शीलवान् की कहानी याद आ गई है। पाठक उसे सुनें:—"एक गाँवमें दो भाई रहते थे। उनमेंसे एक अत्यन्त विद्वान्, मधुरभाषी, शान्त और सब की सह लेने वाला था। उस पर कोई क्रोध करता, तो वह दब जाता और हमेशा ऐसी जगह बैठता था, जहाँ से उसे कोई उठा न सके। दूसरा भाई एकदम निरक्षर भट्टाचार्य्य और अत्यन्त कड़वा बोलने वाला था। अगर उस पर कोई क्रोध करता, तो वह उसका सिर फोड़ने को तैयार हो जाता। विद्वान् भाई से गाँव के

सब लोग खुश रहते थे। उसके काम के लिये तन-मन से तैयार हो जाते थे। अगर वह किसी से कुछ मदद माँगता तो लोग फौरन ही उसे मदद देते। किन्तु दूसरे भाई से कोई बात भी नहीं करता था। एक दिन उसने अपने भाई से पूछा—"भाई! तुम्हारे पास ऐसी कौन सी तरकीब है, जिसके कारण तुमसे सबलोग राज़ी रहते हैं और तुम चाहते हो सो फौरन कर देते हैं; मुझसे तो कोई बात भी नहीं करता।" उसने कहा "मेरे पास शील है; तेरे पास वह नहीं है।" कहा है—

गिरि ते गिरि परिबो भलो, भलो पकरिबो नाग।
अग्नि माँहि जरिबो भलो, बुरो शील को त्याग॥

सारांश—यदि इहलोक और परलोक में सुख चाहो, तो शील व्रत धारण करो। शील सब गुणों का राजा है। शीलवान् को जगत् मस्तक झुकाता है। शीलवान्के लिये अग्नि शीतल हो जाती है, समुद्र में टखनों-टखनों पानी हो जाता है, बड़ा भारी सुमेरु पर्वत ज़रा से बालू के दाने बराबर हो जाता है, सिंह बकरीसा हो जाता है, जङ्गल शहर हो जाता है, विष अमृत हो जाता है, त्रिलोकी की सम्पदा चरणों में आप-से-आप आजाती है, स्वर्ग उसकी बाट देखता है; बहुत क्या—शील-वान् को जगदीश भी मिल जाते हैं। हम तो क्या चीज़ हैं; शील की महिमा को शायद गणेश और सरस्वती भी कठिनता से बखान कर सकें।

कुण्डलिया–मण्डन है ऐश्वर्यको, सज्जनता सनमान ।
बाणी सज्जन शूरता, मण्डन धन को दान ॥
मण्डन धनको दान, ज्ञान मण्डन इन्द्रीदम ।
तपमंडन अक्रोध, बिनय मंडन सोहत सम ॥
प्रभुतामंडन क्षमा, धर्म मंडन छल खण्डन ।
सबहिन में सर्दार, शीलता सबको मंडन ॥८३॥

83, Gentlemanliness is the ornament of wealth and power, a softened speech that of bravery, self-control that of knowledge, humility that of a study of the scriptures, appropriate spending that of riches, checking of anger that of penance, mercy that of kings and straight-forwardness that of Dharma. (But) good manners, which are necessary above all, are the best ornament of everything.

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु ।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा ।
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥८४॥

नीतिनिपुण लोग निन्दा करें चाहे स्तुति; लक्ष्मी आवे और चाहे चली जाय; प्राण अभी नाश हो जायँ और चाहे कल्पान्त में हों,—पर धीर पुरुष न्यायमार्ग से ज़रा भी इधर उधर नहीं होते ।

धीर-वीर पुरुष किसी प्रकार के लालच या भयसे अपने निश्चित किये हुए नीतिमार्ग से ज़रा भी विचलित नहीं होते; जब कि नीच पुरुष ज़रासा लालच या भय दिखानेसेही नीति-मार्ग से फिसल पड़ते हैं। महाराणा प्रताप को अकबर की ओर से अनेक प्रकार के प्रलोभन और भय दिखाये गये, पर वे ज़रा भी न डिगे—अपने निश्चित किये हुए नीतिमार्ग पर अटल हो कर जमे रहे। महात्मा प्रह्लाद को उनके पिता हिरण्यकश्यप ने अनेक तरह के लालच दिये, भय दिखाये और शेषमें उन्हें पर्वत-शिखर से समुद्र में गिराया, अग्नि में जलाया; पर वे अपने निश्चित किये नीति या धर्म-मार्ग से ज़रा भी विचलित न हुए। सच्चा मर्द वही है, जो सर्व्वस्व नाश होने या फाँसी चढ़ाये जाने के भय से भी, न्यायमार्ग को न छोड़े। कहा है—

चलन्ति गिरयः कामं, युगान्तपवनाहताः।
कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव, धीराणां निश्चलं मनः॥

प्रलय-काल की पवन से पर्वत चलायमान हो जाते हैं, पर घोर कष्ट पड़ने पर भी, धीर पुरुषों का निश्चल चित्त चलायमान् नहीं होता।

और भी—

अकृत्यं नैव कर्त्तव्यं, प्राणत्यागेऽपि संस्थिते।
न च कृत्यं परित्याज्यं, धर्म एव सनातनः॥

प्राणनाश का समय आने पर भी, न करने योग्य काम को न करना चाहिये और करने योग्यको बिना किये न छोड़ना चाहिये; यही सनातन धर्म है ।

पण्डितराज जगन्नाथ ने कहा है—

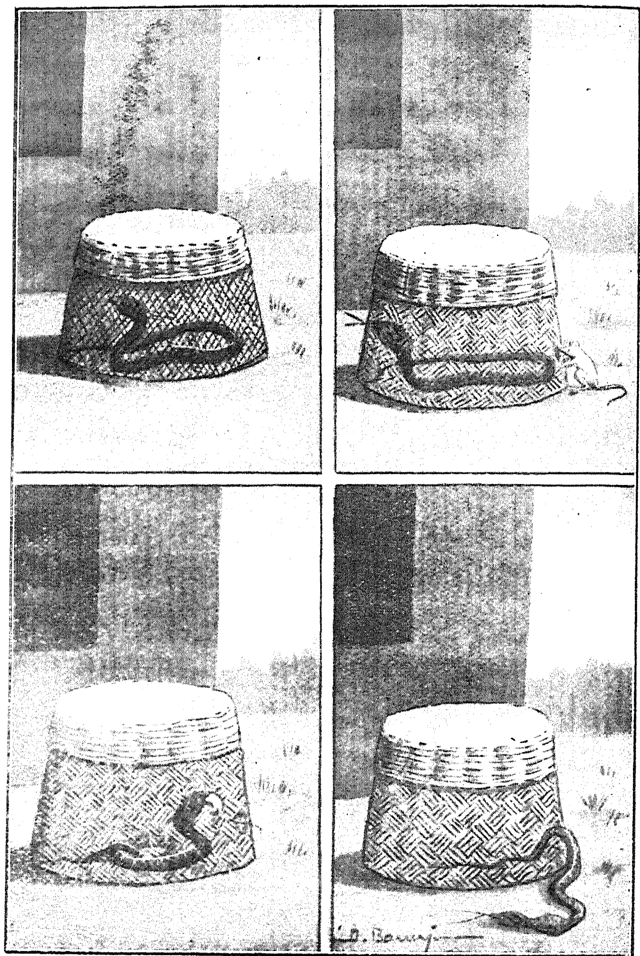
सपदि विलयमेतु राज्यलक्ष्मीरुपरि पतंत्वथवा कृपाणधाराः ।
"अपहरतुतरां शिरः कृतान्तो, मम तु मतिर्नमनागपैतुधर्मात् ॥

चाहे शीघ्र ही राज्यलक्ष्मी नष्ट हो जाय, चाहे कृपाणधारा ऊपर से गिरे, चाहे कृतान्त शिरश्छेदन करे; परन्तु मेरा मन धर्म से ज़रा भी न डिगे !

सारांश—किसी दशा में भी न्यायमार्ग से विचलित न होना चाहिये। वशिष्ठ जी कहते हैं—"विन्ध्याचल पर्वत भी हवा या प्रलयाग्नि से विदीर्ण हो जाता है; पर बुद्धिमान् शास्त्रा-नुमोदित मार्ग को नहीं त्यागते ।

छप्पय-नीति निपुण नर धीर बीर कुछ सुयश करो किन ।
अथवा निन्दा कोटि कहौ दुर्वचन छिनहि छिन ॥
सम्पतहू चलि जाउ रहौ अथवा अगणित धन ।
अबहि मृतक किन होहु, होउ अथवा निश्चल तन ॥
पर न्याय पंथको तजत नहिं, बुद्धि बिबेक गुण ज्ञान निधि ।
वै संग सहायक रहत नित, देत लोक परलोक सिधि ॥८५॥





इस चित्र के सर्पको देखनेसे ज्ञात होता है, कि मनुष्यों की क्षय-वृद्धि दैवाधीन है।

(पृष्ठ २५४)

64, The wise do not go astray even a single step from the path of justice, whether they are upbraided or praised by politicians, whether riches come to them or leave them of their own free will and whether they have to die to-day or after a Yuga.

भग्नाशस्य करण्डपीडिततनोर्म्लानेन्द्रियस्य क्षुधा
कृत्वाखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं मुखे भोगिनः ॥
तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा
लोकाःपश्यत दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम् ॥८५॥

एक सर्प पिटारी में बन्द पड़ा हुआ, जीवन से निराश, शरीर से शिथिल और भूख से व्याकुल हो रहा था। उसी समय, एक चूहा, रातके वक्त, कुछ खानेकी चीज़ पाने की आशा से, पिटारी में छेद कर के घुसा और सर्प के मुँह में गिरा। सर्प उसे खाकर तृप्त हो गया और उसी चूहे के किये हुए छेदकी राह से बाहर निकल कर स्वतन्त्र—आज़ाद हो गया। इस घटनाको देखकर, मनुष्यों को अपनी वृद्धि और क्षय का एकमात्र कारण दैव को ही समझना चाहिये।

यही बात वृन्द कवि ने अपनी कविता में इस भाँति कही है—

दुख सुख दीबे को दई, है आतुर इहि ठाट।
अहि करण्ड मूसा पर्‌यौ, भखि निकस्यौ वुहि वाट॥

प्राणी दैवाधीन है।

मनुष्य का बुरा और भला सब दैव या प्रारब्ध के अधीन है; मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है, प्रारब्ध के वश में है; प्रारब्ध जो खेल खिलाती है, वही खेल खिलता है। मनुष्य के पूर्व्वजन्म के शुभाशुभ कर्मों को ही प्रारब्ध कहते हैं; यानी पहले जन्म के बुरे-भले कर्मों से ही प्रारब्ध या अदृष्ट बनता है। अगर समय पर पुण्यों का उदय होता है, तो मनुष्य सुख पाता है और यदि पापों का उदय होता है, तो दुःख-भोग करता है। दुःख का उद्यम न करने पर भी मनुष्य दुःख पाता है, यही इस बात का पक्का प्रमाण है।

कहा है—

> अन उद्यम सुख पाइये, जो पूरबकृत होय।
> दुःख को उद्यम को करत, पावत है नर सोय॥
> को सुख को दुख देत है, देत करम झकझोर।
> उरझे सुरझे आप ही, ध्वजा पवन के जोर॥

और भी—

> स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमश्नुते।
> स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्माद् विमुच्यते॥

जीव आप ही कर्म करता है; आप ही उसका फल भोगता है; आप ही संसार में भ्रमता है और आप ही उससे छुटकारा पाता है।

और भी—

आत्मापराधवृक्षस्य, फलान्येतानि देहिनाम्।
दारिद्र्य रोग दुःखानि, बन्धनव्यसनानि च॥

दरिद्रता, रोग, दुःख, बन्धन और विपत्ति—ये सब मनुष्य के अपराध-रूपी वृक्ष के फल होते हैं।

और भी—

यस्माच्च येन च यदा च यथाच यच्च
यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म।
तस्माच्च तेन च तदा च तथा च तच्च
तावच्च तत्र च कृतान्तवशादुपैति॥

जिसने, जिस वजहसे, जब, जैसा, जो, जितना और जहाँ शुभ और अशुभ कर्म किया है ; उसे, उसी से, तभी, तैसाही, सो, उतना ही और वहाँ ही, काल की प्रेरणा से, फल मिलता है।

इन प्रमाणों से स्पष्ट समझ में आ सकता है कि, मनुष्य अपने ही कर्मों के बन्धन में फँस कर दुःख और सुख भोगता है। जो लोग दुःख या सुख को मनुष्य या परमात्माकृत समझते हैं, वे बड़ी भारी ग़लती करते हैं। जिस समय पिटारी वाले सर्प के पापों का उदय हुआ, वह पिटारी में बन्द हुआ। जब तक पापों का अन्त न हुआ, वह भूख-प्यास से कष्ट पाता रहा। ज्योंही पुण्यों का उदय हुआ, दैव

प्राणी दैवाधीन है ।



मनुष्य का बुरा और भला सब दैव या प्रारब्ध के अधीन है ; मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है, प्रारब्ध के वश में है ; प्रारब्ध जो खेल खिलाती है, वही खेल खेलता है । मनुष्य के पूर्व्वजन्म के शुभाशुभ कर्मों को ही प्रारब्ध कहते हैं ; यानी पहले जन्म के बुरे-भले कर्मों से ही प्रारब्ध या अदृष्ट बनता है । अगर समय पर पुण्यों का उदय होता है, तो मनुष्य सुख पाता है और यदि पापों का उदय होता है, तो दुःख-भोग करता है । दुःख का उद्यम न करने पर भी मनुष्य दुःख पाता है, यही इस बात का पक्का प्रमाण है ।

कहा है—

> अन उद्यम सुख पाइये, जो पूरबकृत होय ।
> दुःख को उद्यम को करत, पावत है नर सोय ॥
> को सुख को दुख देत है, देत करम झकझोर ।
> उरझै सुरझै आप ही, ध्वजा पवन के जोर ॥

और भी—

> स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमश्नुते ।
> स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्माद् विमुच्यते ॥

जीव आप ही कर्म करता है ; आप ही उसका फल भोगता है ; आप ही संसार में भ्रमता है और आप ही उससे छुटकारा पाता है ।

और भी—

आत्मापराधवृक्षस्य, फलान्येतानि देहिनाम्।
दारिद्र्य रोग दुःखानि, बन्धनव्यसनानि च॥

दरिद्रता, रोग, दुःख, बन्धन और विपत्ति—ये सब मनुष्य के अपराध-रूपी वृक्ष के फल होते हैं।

और भी—

यस्माच्च येन च यदा च यथाच यच्च
यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म।
तस्माच्च तेन च तदा च तथा च तच्च
तावच्च तत्र च कृतान्तवशादुपैति॥

जिसने, जिस वजहसे, जब, जैसा, जो, जितना और जहाँ शुभ और अशुभ कर्म किया है; उसे, उसी से, तभी, तैसाही, सो, उतना ही और वहाँ ही, काल की प्रेरणा से, फल मिलता है।

इन प्रमाणों से स्पष्ट समझ में आ सकता है कि, मनुष्य अपने ही कर्मों के बन्धन में फँस कर दुःख और सुख भोगता है। जो लोग दुःख या सुख को मनुष्य या परमात्माकृत समझते हैं, वे बड़ी भारी ग़लती करते हैं। जिस समय पिटारी वाले सर्प के पापों का उदय हुआ, वह पिटारी में बन्द हुआ। जब तक पापों का अन्त न हुआ, वह भूख-प्यास से कष्ट पाता रहा। ज्योंही पुण्यों का उदय हुआ, दैव

की प्रेरणा से, चूहा उसके पिटारे में छेद करके घुसा। उस से सर्पकी क्षुधा शान्त हुई और वह उसी छेदकी राह से निकल कर स्वतन्त्र भी हो गया। इसी तरह मनुष्य भी दैवके अधीन होकर सुख-दुःख भोगते हैं।

सारांश—मनुष्यों की क्षय और वृद्धि, सुख और दुःख, सम्पद् और विपद्, सफलता और असफलता प्रभृति का एक-मात्र कारण दैव या प्रारब्ध है। दैव जो नाच नचाता है, प्राणी वही नाच नाचता है।

कुंडलिया-जैसे काहू सरप को, छबरें पकर धरयौ सु।
सबकी आसा छोड़के, दै सिर कूद परयौ सु॥
दै शिर कूद परयौ सु, भयौ पीडित अति कैदी।
इन्द्री बिहूवल भूख पिटारी मूसें छेदी॥
वाही को भखि मांस छेद ह्वै निकस्यौ कैसे।
तैसे क्षय अरु वृद्धि दैव वस ऐसे जैसे॥८५॥

85. There was a snake which had lost all hope, its body all aching owing to its having been imprisoned in a cage and its senses made feeble by hunger. A mouse having made hole into the cage at night entered into its mouth of itself. The snake, its hunger satisfied with flesh of the mouse, speedily went out of that very hole and was free. Thus see, O men, Fate is the only cause of people's prosperity and loss.

पतितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः।
प्रायेण साधुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः ॥८६॥

जिस तरह हाथ से गिराने पर भी गेंद ऊँची ही उठती है; उसी तरह साधु-वृत्ति पर चलनेवालों की विपत्ति भी सदा नहीं रहती है।

सदा किसी के भी दिन समान नहीं रहते। सदा न कोई सुखी ही रहता है और न सदा कोई दुःखी ही रहता है। इस परिवर्त्तनशील संसार में दुःख और सुख गाड़ी के पहिये की तरह चक्कर काटते हैं। समय के साथ मनुष्यों की अवस्थाएँ बदलती हैं। सूर्य की जिस तरह एक दिन में तीन अवस्थाएँ हो जाती हैं; उसी तरह मनुष्य की अवस्थाएँ भी बदला करती हैं। इन बातों को समझ कर, धीर पुरुष अपनी विपद् में नहीं घबराते।

जो लोग, भारी-से-भारी विपद् पड़ने पर, धनहीन होने पर, शत्रुओं के जाल में फँसने पर, अपने आचरण को अच्छा रखते हैं, धीरज और धर्म को नहीं त्यागते हैं और प्राचीन काल के महापुरुषों की राह पर चलते हैं,—उनकी विपत्ति, निश्चय ही, उसी तरह शीघ्र ही नाश हो जाती है, जिस तरह ज़मीन पर फेंकी हुई गेंद शीघ्र ही ऊपर

उठ आती है। महाराजा रामचन्द्र, हरिश्चन्द्र, नल और पाण्डुपुत्रोंने धर्मात्माओं की चाल पर चलकर शीघ्र ही अपनी-अपनी विपत्तियों से छुटकारा पाया। जो मनुष्य अपनी विपत्ति में सब्र नहीं करता, धैर्य और धर्म को छोड़ देता है, उसकी विपत्ति उसे बड़े-बड़े कष्ट भुगाती और शीघ्र नहीं जाती।

शिक्षा—विपत्ति में धीरज और धर्म को न छोड़ो; धर्मात्माओं की चाल पर चलो; परमात्मा की दया से शीघ्र ही विपत्ति नष्ट हो जायगी।

दोहा-कर को मारयो गैंद ज्यों, लागि भूमि उठि जात।

साधु जनन को त्यों विपति, छिन ही माहिं नशात ॥८६॥

86 A ball dashed against the ground with the stroke of a hand rebounds up-wards. (Similarly) as a general rule the downfall of good-natured men does not last long.

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुर्यं कृत्वा नावसीदति ॥८७॥

आलस्य मनुष्यों के शरीर में रहने वाला घोर शत्रु है और उद्योग के समान उनका कोई बन्धु नहीं है; क्योंकि उद्योग करने से मनुष्य के पास दुःख नहीं आते।

इसमें ज़रा भी शक नहीं, कि आलस्य मनुष्य का परम शत्रु और उद्योग उसका परम बन्धु है। आलस्य से मनुष्य रोगी, दुःखी और दरिद्री होता है; जबकि उद्योग

से निरोग, सुखी और धनी होता है। आलस्य असफलता का भाण्डार और उद्योग सफलता की कुञ्जी है। आलस्य मृत्यु और उद्योग जीवन है। आलसी सदा मुहताज रहता है और उद्योगी सदा आनन्द करता है। आलसी की ज़िन्दगी दिन-दिन छीजती है, पर उद्योगी की ज़िन्दगी बढ़ती है। रोसो महोदय कहते हैं—"Temperance and labour are the two best physicians of man" परहेज़गारी और मिहनत मनुष्य के दो सर्वोत्तम हकीम हैं। विलिङ्घ फिलिप्स महोदय कहते हैं—"Health lies in labour and there is no royal road to it, but through toil. तन्दुरुस्ती मिहनत में है। मिहनत के सिवा तन्दुरुस्ती तक पहुँचने की और कोई शाहराह नहीं है। हिलर्ड महाशय कहते हैं—"Life is but another name for action; and he who is without opportunity exists but does not live." कर्म या काम का ही दूसरा नाम जीवन है; निकम्मे का अस्तित्व है, पर वह जीवित नहीं। शंकराचार्य्य महाराजने कहा है—

कोवा दरिद्रोहिविशाल तृष्णा।
श्रीमांश्च को यस्य समस्त तोषः॥
जीवन्मृतः कस्तु निरुद्यमो यः।
कोवा मृतस्स्यात्सुखदा निराशा॥

दरिद्री कौन है? जिसे तृष्णा बहुत है। धनवान्

कौन है? जिसे सब तरह सन्तोष है। जीता हुआ ही मृतक कौन है? जो उद्यम रहित या आलसी है। अमृत क्या है? सुखदायी निराशा।

आलस्य से ही सब आपदाओं की मूल निर्धनता आती है। डच लोगों में एक कहावत है—"Poverty is the reward of idleness." दरिद्र आलस्य का पुरस्कार है। दरिद्रता से मनुष्य के मन में लाज सी आने लगती है; लज्जा से मनुष्य में कमज़ोरी आती है; कमज़ोर को सभी बेइज्जती करते हैं; बेइज्जती होने से मन में दुःख और शोक पैदा होते हैं; जो दिन-रात शोकमें ग़र्क़ रहता है, उसकी अक्ल मारी जाती है; जब अक्ल ही नहीं रहती, तब मनुष्य बहुधा आत्महत्या करके प्राण विसर्जन कर देता है। बेंजामिन फ्रैंकलिन महोदय कहते हैं—"Poverty often deprives a man of all spirit and virtue." दरिद्रता बहुधा मनुष्य को सम्पूर्ण साहस और धर्म से हीन कर देती है। जिसमें साहस और धर्म नहीं, वह तो जीता हुआ ही मरा है; वह चाहे अपघात करके मरे, चाहे न मरे। जिस आलस्य से इतने उपद्रव या घोर सङ्कट पैदा होते हैं, वह मनुष्य का घोर शत्रु नहीं तो क्या है? और तो और; जिस सुयश को मनुष्य को प्राण देकर भी परिपालना करनी चाहिये, वह भी आलस्य से नष्ट हो जाता है। कहा है :—

स्तब्धस्य नश्यति यशो विषमस्य मैत्री।
नष्टेन्द्रियस्य कुलमर्थपरस्य धर्मः॥
विद्याफलं व्यसनिनः कृपणस्य सौख्यं।
राज्यं प्रमत्त सचिवस्य नराधिपस्य॥

आलसी का यश नाश हो जाता है, दुष्टों की मैत्री नष्ट हो जाती है, नष्टेन्द्रिय पुरुष का कुल नहीं चलता, व्यसनी की विद्या नष्ट हो जाती है, कंजूस का सुख नष्ट हो जाता है और मतवाले मन्त्रीवाले राजा का राज्य नष्ट हो जाता है।

आलस्य में संसार के सारे ही दोष हैं। आलसी को न इस लोक में सुख मिलता है और न परलोक में। आलसी इस लोक में निर्धनता प्रभृति नाना प्रकार के दुःखों को भोग कर मरता है और मरने पर फिर इसी लोक में आता और नाना प्रकार के दुःख भोगता है। आलसी का जन्म-मरण के बन्धनों से छुटकारा नहीं हो सकता। इसलिये मनुष्यो! यदि तुम सुख-सम्पत्ति और ऐश्वर्य्य चाहो, यदि तुम संसार-बन्धन से मुक्त होना चाहो, तो "आलस्य-शत्रु" से सदा अलग रहो; इस शत्रु से मैत्री न करो। जो आलस्य से मैत्री रखता है, उस से संसार की सम्पत्तियाँ दूर भागती हैं और लक्ष्मी उसकी सूरत से नफ़रत करती है। नीति-ग्रन्थों में कहा है—

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधं आलस्यं दीर्घसूत्रता॥
आलस्यं स्त्रीसेवा सरोगता जन्मभूमिवात्सल्यम्।
सन्तोषो भीरुत्वं षड् व्याघाता महत्त्वस्य॥
अव्यवसायिनमलसं दैवपरं साहसाच्चपरिहीनम्।
प्रमदेव हि वृद्धपतिं नेच्छत्युपगूहितुं लक्ष्मीः॥
क्लेशस्याङ्गमदत्वा सुखमेव सुखानि नेह लभन्ते।
मधुभिन्मथनायस्तैराश्लिस्यति बाहुभिर्लक्ष्मीम्॥

जिन्हें धन की इच्छा हो, उन्हें निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता—ये दोष त्याग देने चाहिएँ।

आलस्य, स्त्री-सेवा, अस्वस्थता, जन्म-भूमि से प्रेम, सन्तोष और भय—ये छै बड़प्पन को नाश करने वाले हैं।

जिस तरह जवान स्त्री बूढ़े पति को आलिङ्गन करना नहीं चाहती; उसी तरह लक्ष्मी उद्योगहीन, आलसी, तक़दीर को बड़ी समझने वाले और साहसहीन—पस्तहिम्मत मनुष्य को नहीं चाहती।

इस जगत्में बिना शरीर को दुःख दिये सुख नहीं मिलता। मधुसूदन भगवान् ने समुद्र-मथन से थकी हुई भुजाओं द्वारा ही लक्ष्मी पाई थी।

आशा है, हमारे पाठक अब आलस्य के घोर शत्रु होने की बात अच्छी तरह समझ गये होंगे; आगे चल कर हम उद्योग के परमबन्धु होने की बात इसी तरह

समझायेंगे ; पर बीच में आलसियों के एक उज्र का जवाब और देंगे ।

आलसी और काहिलोंको भाग्य या तक़दीर पर बड़ा भरोसा होता है । वे लोग पुरुषार्थ या तदबीर के मुक़ाबले में भाग्य या तक़दीर को बड़ी समझते हैं और अक्सर कहा करते हैं—"अगर हमारे भाग्य में होगा, हमारी तक़दीर अच्छी होगी, हमने पूर्वजन्म में शुभ कर्म किये होंगे, तो हमारे बिना उद्योग किये ही, बिना हाथ-पाँव हिलाये ही, पलँग पर पड़े-पड़े ही, हमें सब कुछ मिल जायगा—लक्ष्मी हमारे क़दमों में लोटेगी । हाँ, यदि हमारा भाग्य ही अच्छा न होगा, हमने पहले जन्म में पुण्यकर्म किये न होंगे ; तो हमारे हज़ार कोशिश करने पर भी, हमें कुछ न मिलेगा । फल की प्राप्तिका हेतु प्रत्यक्ष नहीं दीखता; फल की प्राप्ति पूर्वकर्मानुसार होती है ; अन्यथा नहीं । देखते हैं, किसी को थोड़ी ही मिहनत से बड़ा फल मिलता है और किसी को घोर परिश्रम करने पर भी खाने को नहीं मिलता ; और कोई बिना ज़रा सा भी उद्योग किये, करोड़ों का मालिक बन बैठता है ।" बस, आलसी अपने इसी विश्वास से घरों में पड़े रहते हैं । माता-पिता यदि कुछ छोड़ जाते हैं ; तो जब तक वह रहता है, बेच-बेच कर खाया करते हैं । आलसियों से उठ कर पानी नहीं पिया जाता; कुत्ता मुँह में मूतता हो, तो उसे भगाया नहीं जाता । इन्हें

इस मौक़े पर आलसियों का एक क़िस्सा याद आया है, उसे हम अपने पाठकों के लिये यहाँ लिखते हैं :—

एक बार एक मनुष्य ने कहा—"पोस्ती ने पी पोस्त, नौ दिन चला अढ़ाई कोस"

दूसरे ने कहा—"अबे! पोस्ती न होगा, वह कोई डाक का हरकारा होगा। पोस्ती ने पी पोस्त, तो कूँडो के इस पार या उस पार।"

और सुनिये—

एक बाग़ में दो आलसी एक आम के पेड़ के नीचे लेट रहे थे ; उनमेंसे एक की छातीपर एक आम पड़ा हुआ था, पर वह उसे उठा कर खा नहीं सकता था। इतने में उधरसे एक सवार निकला। आमवाला आलसी बोला—"ओ भाई सवार! मेरी छाती पर एक आम पड़ा है, कृपया इसे मेरे मुँह में निचोड़ते जाइये।" सवार ने कहा—"तू बड़ा ही आलसी है, जो अपनी छाती पर पड़ा हुआ आम भी उठा कर नहीं चूस सकता ; दूसरे से आम निचोड़ने को कहता है।" यह सुनते ही दूसरे आलसी ने कहा—"बेशक साहब! यह बड़ा ही आलसी है। रात-भर मेरे मुँह को कुत्ता चाटता रहा, मैंने इस से कहा ज़रा दुतकार दे, पर इसने "दुत" भी न किया।" यह सुन कर सवार उन्हें लानत-मलामत करता हुआ चला गया। आलसियों की यह दशा होती है, तभी तो वे संसार में नरक से भी बढ़ कर दुःख भोगते हैं।

आलसियों पर महाकवि "मीर" ने खूब ही कहा है:—

दुनिया में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा ।
मर जाना, पर उठके कहीं जाना नहीं अच्छा ॥
बिस्तर पै मिस्ल लोथ, पड़े रहना है अच्छा ।
बन्दर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा ॥
रहने दो ज़मी पै मुझे, आराम यहीं है ।
छेड़ो न नक़शे-पा है, मिटाना नहीं अच्छा ॥
उठ करके घर से कौन चले, यार के घर तक ।
मौत अच्छी है, पर दिलका लगाना नहीं अच्छा ॥
धोती भी पहनें जब, कि कोई ग़ैर पिन्हाये ।
उमरा को हाथ पैर चलाना नहीं अच्छा ॥
सिर भारी चीज़ है, इसे तकलीफ हो तो हो ।
पर जीभ बिचारी को सताना नहीं अच्छा ॥
फ़ाक़ों से मरिये, पर कोई काम न कीजिये ।
दुनिया नहीं अच्छी है, ज़माना नहीं अच्छा ॥
सिजदे से गर बहिश्त मिले, दूर कीजिये ।
दोज़ख़ ही सही, सर का झुकाना नहीं अच्छा ॥
मिल जाय हिन्द ख़ाक में, हम काहिलों को क्या ।
ऐ'मीर'! फर्श रंज मिटाना नहीं अच्छा ॥

आलसी हाथ-पैर नहीं हिला सकते; इसी से भाग्य को आड़ लेते हैं । शुक्राचार्य्य महाराज ने बहुत ठीक कहा है:—

धीमन्तो वंद्यचरिता मन्यन्ते पौरुषं महत्।
अशक्तं पौरुषं कर्तुं क्लीवा दैवमुपासते॥

बुद्धिमान् और माननीय लोग पुरुषार्थ को बड़ा मानते हैं; परन्तु नपुंसक—हिंजड़े, जो पुरुषार्थ नहीं कर सकते—दैव या प्रारब्ध की उपासना करते हैं।

प्रारब्ध कोई चीज़ न हो, यह बात नहीं। यह जगत् प्रारब्ध और पुरुषार्थ में ही विद्यमान् है। पूर्वजन्म के कर्म को "प्रारब्ध" और इस जन्म के कर्म को "पुरुषार्थ" कहते हैं। एक ही कर्म के दो नाम हैं। प्रारब्ध और पुरुषार्थ,—गाड़ी के दो पहियों के समान हैं। जिस तरह एक पहिये से गाड़ी नहीं चल सकती ; उसी तरह बिना पुरुषार्थ—ख़ाली भाग्य से फल की प्राप्ति नहीं हो सकती—बिना पुरुषार्थ, प्रारब्ध फल नहीं सकता। जिस तरह कुम्हार मिट्टी के ढेले से अपनी इच्छानुसार चीजें बनाता है; उसी तरह मनुष्य अपने पूर्व-जन्म के किये हुए कर्मों का फल आप ही प्राप्त करता है। अचानक सामने आये हुए ख़ज़ाने के लेने के लिये भी, पुरुषार्थ की दरकार होती है। सोते सिंह के मुखमें बिना उद्योग किये ही, हाथी या हिरण घुस नहीं जाते। तिलोंमें तेल होने परभी बिना पेले नहीं निकलता। तात्पर्य्य यह,—बिना पुरुषार्थ, हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से, प्रारब्ध का फल मिल नहीं सकता।

उद्योग की सर्वत्र ज़रूरत है। उद्योग करना मनुष्य का धर्म है ; फल मनुष्य के हाथ नहीं ; फल देना विधाता का

काम है। महात्मा कारलाइल कहते हैं—"Let a man do his work.the fruit of it is the care of another than he." मनुष्य परिश्रम करे; फलकी प्राप्ति करना उसके हाथ की बात नहीं; फल देने वाला दूसरा ही है। नीतिमें लिखा है;—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिद्धयति कोऽत्र दोषः॥
निपानमिव मण्डूकाः सरः पूर्णमिवाण्डजाः।
सोद्योगं नरमायान्ति विवशाः सर्व सम्पदः॥

उत्साहसम्पन्नम दीर्घसूत्रम्
क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ़ सौहृदं च
लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः॥

उद्योगी पुरुषसिंहके पास लक्ष्मी आती है; * "प्रारब्ध से लक्ष्मी आती है"—ऐसी बात कायर लोग कहते हैं। दैव या प्रारब्ध को त्याग कर, अपनी सामर्थ्य-भर उद्योग करो; उद्योग करने पर भी यदि सिद्धि न हो, तो किसका दोष है?

जिस प्रकार कूएँके पास के छोटे जलाशय—पोखरे में मैंढक, और भरे सरोवरमें पक्षी आप-से-आप आते हैं; उसी

+ He that labours and perseveres spins gold.—Sp. Pr.

तरह उद्योगी पुरुष के पास सारी सम्पत्तियाँ आप-से-आप आती हैं।

उत्साही, काम करनेमें निरालसी, कामकी विधिको जानने वाला, किसी प्रकार के व्यसनके वशीभूत न रहने वाला, शूर-वीर, पराया ऐहसान मानने वाला और मित्रता में दृढ़ रहने वाला—ऐसे पुरुष के पास लक्ष्मी स्वयं बसने के लिये आती है।

संसार में सारे काम लक्ष्मीसे ही होते हैं। और तो क्या—लक्ष्मी से स्वर्ग में भी सीढ़ी लग जाती है। जिसके पास धन है, वही जीता हुआ है; जिसके पास धन नहीं, वह जीवित रहने पर भी मृतक है। यह सर्व्वगुण-सम्पन्ना लक्ष्मी एकमात्र "उद्योग" से मिलती है; इसलिये "उद्योग" ही मनुष्य का परम बन्धु है। उद्योग बिना दरिद्र और दुःख पीछा नहीं छोड़ते; अतः मनुष्यको उद्योगसे घनिष्ट मैत्री करनी चाहिये। कहा है—

सहि संकट उद्योग को, लहै सम्पदा प्रानि।
सिन्धु-मथन-दुःख हर सह्यो, लह्यौ अमृत ज्यों पानि॥
फल बिडाल-सम लहत जग, उद्यम तजिये न भूल।
गाय नहीं जिमि जन्म सों, दूध पीय भो स्थूल॥

हो सचेत श्रम करो सदा तुम
चाहे कुछ भी हो परिणाम।
सदा उद्यमी होकर सीखो
धीरज धरना, करना काम॥

धन कमाने की तरकीबें।

मनुष्यों को धन प्रायः ६ उपायों से मिलता है;—(१) भीख माँगना, (२) राजा या किसी धनी की चाकरी करना, (३) खेती करना, (४) लेन-देन करना, (५) विद्या पढ़ना, और (६) वाणिज्य-व्यापार करना।

इन छहों उपायों से धन आता है; पर इन सब में वाणिज्य या व्यापार सर्वश्रेष्ठ है। भिक्षा से कोई धनी नहीं हुआ; पराई चाकरी से यथेष्ट धन नहीं मिलता; खेती में धन है, पर कष्ट बहुत, काम बेशक उत्तम है; ब्याज पर रुपया उधार देने से रक़म के मारे जाने का भय रहता है; इसलिये वाणिज्य ही रुपया कमाने का सर्वोत्तम उपाय है। सस्ते भाव में अनाज या कपड़ा प्रभृति ख़रीदकर रख छोड़ने और महँगी के समय बेच देने से, सहज में, अच्छा लाभ हो सकता है। इसके सिवा आजकल के समय में, गोधन बढ़ाने से भी अच्छे लाभ की आशा है। थोड़ी पूँजी लगे और खूब नफा हो—एक-एकके सौ-सौ हों, ऐसा व्यापार इत्र, फुलेल, तेल और दवाओं का बेचना है। पर सभी कामों में सचाई और ईमान्दारी की बड़ी ज़रूरत है। व्यापारी लोग बहुधा कहा करते हैं, कि बिना मिथ्या और कपटके व्यापार चल नहीं सकता, पर हमारी राय इसके ख़िलाफ़ है। ईमान्दारी से धन आता है और खूब आता है, पर पहले कुछ कठिनाइयों का सामना ज़रूर करना पड़ता

है । आशा है, हमारे आलसी पाठक, अबसे आलस्य को त्याग कर, कुछ-न-कुछ उद्योग अवश्य करेंगे * ।

दोहा-आलस तन में रिपु बड़ो, सब सुखको हर लेत ।

त्यौंही उद्यम बन्धुसम, किये सकल सुख देत ॥८७॥

87. Idleness is the great enemy of mankind. There is no friend like activity, finding which nobody ever sustains a loss.

छिन्नोऽपि रोहति तरुः क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः ।
इति विमृशंतः सन्तः संतप्यन्ते न विप्लुता लोके ॥८८॥

कटा हुआ वृक्ष फिर बढ़कर फैल जाता है, क्षीण हुआ चन्द्रमा भी फिर आहिस्ते-आहिस्ते बढ़ कर पूरा हो जाता है; इस बात को समझकर, सन्तपुरुष अपनी विपत्तिमें नहीं घबराते ।

संसार की परिवर्तनशीलता ।

यह संसार परिवर्त्तनशील है; गाड़ी के पहिये की तरह घूमता रहता है । हर क्षण और हर घड़ी इस में परिवर्त्तन होते रहते हैं । वर्ष में ६ ऋतुएँ बदल जाती हैं । ग्रीष्म के बाद प्रावट्, प्रावृ_ के बाद वर्षा, वर्षा के बाद शरद, शरद्के बाद हेमन्त, हेमन्त के बाद शिशिर और शिशिर के बाद वसन्त आता है । वसन्त ऋतु में वृक्षों के पुराने पत्ते झड़ जाते हैं

*अगर पास पूँजी न हो, तो हमारी 'स्वास्थ्यरक्षा' मँगाकर उसमें से हमारी परीक्षित चीजें बना, धन पैदा कीजिये । अनेक लोग उसकी बदौलत मालामाल हो रहे हैं ।

और नये उनका स्थान ग्रहण करते हैं। सूर्य को भी दिन-भरमें तीन अवस्थाएँ बदल जाती हैं। सवेरे ही उसका बचपन, दोपहर के समय जवानी और साँझ को उसका बुढ़ापा आकर वह अस्त हो जाता है। इसी तरह मनुष्य की भी दशाएँ बदलती रहती हैं। समय की गति के साथ मनुष्य भी रंग बदलने को मजबूर होता है। कैसर लोथर प्रथम ने ठीक ही कहा है—"Times change and we change with them." समय बदलते हैं और समय के साथ हम भी बदलते हैं। महात्मा गोथे ने भी कहा है—"ज़िन्दगी का सम्बन्ध ज़िन्दों से है और जो ज़िन्दा हैं, उन्हें ज़िन्दगी की तब्दीलियों के लिये तैयार रहना चाहिये।" कभी मनुष्य सुखी होता है, कभी दुःखी; कभी रोगी होता है, कभी नीरोग; कभी धनी या राजा होता है और कभी दर-दर का भिखारी। कभी एकसी अवस्था रह ही नहीं सकती * मनुष्य का धर्म है, कि वह हर हालत में खुश रहे। कहा है—

सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा।
चक्रवत्परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च॥

मनुष्य को चाहिये, सुख के समय सुख को और दुःख के समय दुःख को सेवन करे। दुःख और सुख चाक की तरह घूमा करते हैं।

* Empires and nations flourish and decay
By turns command, and in their turns obey.—Ovid,

शेख़सादी ने कहा है—

शगूफा गाह शगुफ़तस्तो गाह ख़ोशीदह ।
दरख़्त वक्त बिरहनस्तो वक्त पोशीदह ॥

संसार परिवर्त्तनशील है। फूल कभी मुर्झाता है और कभी खिलता है। वृक्ष के पत्ते कभी गिर जाते हैं और कभी हरे-हरे पत्तों से उसकी शोभा हो जाती है।

जिस तरह काटा हुआ वृक्ष फिर हरा-भरा होकर फैल जाता है, क्षीण चन्द्र फिर पूर्ण हो जाता है, सूर्य और चन्द्रमा ग्रहण लगने पर भी, फिर ग्रहणमुक्त हो जाते हैं; पत्रहीन सूखे वृक्ष फिर सपत्र हो जाते हैं, मेघाच्छन्न आकाश फिर निर्मल और निर्मेघ हो जाते हैं, वर्षा और तूफ़ान सदा नहीं बने रहते; उसी तरह ही मनुष्य भी एक-न-एक दिन विपत्ति से छुटकारा पाकर सुखी और स्वतन्त्र होता है; इसमें अणु मात्र भी सन्देह नहीं।

विपद् से लाभ।



लोग विपद्को जैसी भयावनी समझते हैं, वह वैसी नहीं है। विपद् के फूल कड़वे होते हैं, पर उसके फल मीठे होते हैं। जिस पर ईश्वर की पूर्ण कृपा होती है, जिस के धैर्य्य और धर्म की वह परीक्षा करना चाहता है, उस पर ही वह विपद् डालता है। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र,

महाराजा नल और महाराजा रामचन्द्र तथा पञ्च पाण्डव इस के सच्चे दृष्टान्त हैं *।

दैवी विपत्तियाँ कुछ न कुछ उत्तम फल देने वाली होती हैं, तब क्या मानवीय विपत्तियों से लाभ न होते होंगे? नदी की बाढ़ को लोग बुरी कहते हैं, पर जब वह चली जाती है तब खेतों को उपजाऊ करके छोड़ जाती है। ज्वालामुखी

*एक ज़माने में हम स्वयं घोर विपत्ति में फँसे हुए थे। सभी इस जन्ममें हमारा वपत्ति से छुटकारा पाना असम्भव कहते थे। हम भी ऐसा ही समझते थे। आत्मगोपन किये हम अपने दिन काटते थे; पर अब औरों हमारा ज्यों-त्यों दिन काटना भी देखा न गया। वे हमारे पीछे हाथ धोकर पड़ गये। श्रीकृष्ण की पूर्ण कृपा और श्रीमान् लार्ड चेम्सफर्ड की दया से हमारा छुटकारा हो गया। २५ वर्ष बाद असम्भव सम्भव हो गया। आज हम स्वतंत्र और सुखी हैं। जिस तरह हमें विपत्ति से निजात मिली, उसी तरह औरों को भी निश्चय ही मिलेगी। विपत्ति से हमें बड़े लाभ हुए। विद्या की वृद्धि हुई, संसार की असलियतका ज्ञान हुआ, नास्तिकता गई, परमात्मा से प्रीति हुई, देश-भ्रमण का आनन्द आया और संसार का अनुभव हुआ। हम चाहते हैं, हमारे और भाई हमारे अनुभवसे फायदा उठावें और हमारी तरह ग़लतियाँ न करके कष्टसे बचें। अकेले इस लाभ कोही हम सब से बड़ा लाभ समझते हैं। यदि कर्म्मानुसार हमारी बुद्धि वैसी न हो जाती, तो हम या तो हाईकोर्टके वकील होते या सरकार की सेवा करते होते। पर हमें विपद से जो मज़ा आया और आ रहा है, वह हमें वकालत करने या किसी उच्च पद पर होने से हरगिज़ न आता। आरम्भ में, हमें विपद बहुत बुरी मालूम होती थी; पर अब नतीजा देखकर हमें कहना पड़ता है, कि परमात्माने हमें विपद देकर हमारा बड़ा उपकार किया। दीनबन्धु, अनाथनाथ भगवान् कृष्ण को हमारा बारम्बार धन्यवाद है।

पर्वतों के फटने की बातों से ही लोगों की आत्माएँ काँप उठती हैं ; पर अनेक ज्वालामुखी पहाड़ों ने फट कर अनेक देशोंको धन-दौलत से निहाल कर दिया है। भूकम्प के नाम से प्राणिमात्र घबरा उठते हैं, पर यह भूचाल भी फायदे से ख़ाली नहीं। इन के आनेसे कोसों नयी ज़मीन निकल आती है और समुद्र अपनी सीमा के भीतर बना रहता है। इसी तरह मानवी विपत्तियों से भी बड़े-बड़े लाभ होते हैं। विपत्ति यद्यपि काल सर्प सी भयङ्कर मालूम होती है, पर उसके फल काल सर्प की मणि से कम क़ीमती नहीं होते। विपत्ति मित्रों की सच्ची कसौटी है। स्त्री, पुत्र, सेवक, सचिव, मित्र और नाते-रिश्तेदारों की सच्ची परीक्षा इसी समय होती है। विपत्ति में ही बहुधा मनुष्य देश-देशान्तरों में भ्रमण करता, भाँति-भाँति के मनुष्यों की संगति से लाभ उठाता और नाना प्रकार के कला-कौशल और भाषाएँ तथा रीति-रिवाज सीख कर अनुभवी और जहाँदीदा होता है। जिस तरह बादल के बिना बिजली का प्रकाश नहीं होता ; उसी तरह विपत्ति बिना मनुष्य के गुणों का प्रकाश नहीं होता।❀ विपत्ति हर पहलू से अच्छी है, बशर्ते कि वह सदा न रहे। कहा है—

विपति बरोबर सुख नहीं, जो थोड़े दिन होय।
इष्ट मित्र और बन्धु सब, जान पड़े सब कोय॥

❀ Disasters are wont to reveal the abilities of a general, good furtune to conceal them.—Hor.

और भी कहा है—

बन्धु स्त्री भृत्यवर्गस्य बुद्धेः सत्त्वस्य चात्मनः ।
आपन्निकषपाषाणे नरो जानाति सारताम् ॥

कसौटी पर कसकर सर्राफ जिस तरह सोने के गुण-दोषों की परीक्षा करते हैं; उसी तरह विपत्ति-रूपी कसौटी पर पुरुष अपने मित्र, स्त्री, दासगण, बुद्धि, बल और शरीर के सार की परीक्षा करते हैं ।

कहिये पाठक, अब भी क्या आप विपत्ति को बुरी ही कहेंगे ? परमात्मा जो कुछ करता है, वह मनुष्य के भले के लिये ही करता है ; पर मनुष्य अपनी बुद्धि की संकीर्णता के कारण, उसके मतलबों को समझ नहीं सकता ; इसी से दुःख में ईश्वर और भाग्य को दोष देता और हाय-हाय करता है। इस मौक़े का एक क़िस्सा हमें याद आया है। पाठकों को उसे सुनाये बिना हमारी तबीयत नहीं मानती:—

ईश्वर जो करता है अच्छा ही करता है ।



एक राजा के मन्त्री का यह सच्चा विश्वास था, कि ईश्वर जो कुछ करता है, वह अच्छा ही करता है। एक दिन राजा और मन्त्री शिकार के लिये एक भयानक वन में निकल गये। शिकार खेलते समय किसी हथियार से राजा की उँगली कट गयी। राजा ने मन्त्री से कहा—"मन्त्री जी ! हमारी उँगली कट गयी।" मन्त्री ने जवाब दिया—"महाराज ! ईश्वर जो

करता है, मनुष्य के अच्छे के लिये ही करता है।" राजा इस बात से चिढ़ गया और मन्त्री को अपने यहाँ से निकाल दिया। दूसरे दिन राजा फिर शिकार को गया और हिरन के पीछे घोड़ा फेंकता हुआ, एक और राजा के राज्य में पहुँच गया। वहाँ के राजा को बलि देनेके लिये एक मनुष्य की दरकार थी। लोग इसे बलिदान को वेदी के पास ले गये। पण्डितों ने इसकी उँगली कटी हुई देखकर, राजा से कहा—"महाराज! यह तो अङ्ग-भंग है; अङ्ग-भङ्ग की बलि दी नहीं जाती।" पण्डितों के कहने से राजा ने उस राजा को छोड़ दिया। वह अपने राज्यमें आ गया। आते ही मन्त्री को बुलाया और उससे कहा—"मन्त्री! तुम्हारी वह बात राई-रत्ती सच है, कि ईश्वर जो कुछ करता है, मनुष्यकी भलाईके लिये ही करता है। अगर मेरी उँगली कट न जाती, तो मेरे प्राण न बचते।" मन्त्रीने कहा—"महाराज! आपने मुझे निकाल दिया, यह भी अच्छा ही हुआ। अगर आप मुझे निकाल न देते, तो मैं आप के साथ वहाँ होता ही। वे लोग आप को तो अङ्ग-भङ्ग समझ कर छोड़ देते, पर मेरा तो बलिदान कर ही देते।" राजा मन्त्रीसे बहुत प्रसन्न हुआ और उसे इनाम देकर, फिर उसकी जगह पर बहाल कर दिया।

महात्मा बेकन ने कहा है—"कौन जानता है, जिस मृत्यु से लोग इतना डरते और घबराते हैं और जिसे सबसे बड़ी बुराई समझते हैं, वही सबसे बड़ी भलाई करने वाली

न हो*?" बात ऐसीही है। मृत्यु हमारे दुःखों का अन्त करके हमें नया चोला देने वाली है। मि० वेबर महोदय कहते हैं— "Life is a disease. sleep a palliative, death the radical cure.' जीवन एक व्याधि है, निद्रा उस व्याधिको कम करने वाली और मृत्यु उसे समूल नाश करने वाली या जड़ से चंगा करने वाली है। मिष्टर लोविल महोदय कहते हैं—"ज़िन्दगी, दारोग़ा जेल है और मौत वह फरिश्ता है, जो जेलखाने के कपाट खोल कर हमें आज़ाद करने के लिये भेजा जाता है।"

जब कि मृत्यु तक हमारे सुख के लिये है, तब विपति प्रभृति से सुख क्यों न होगा? परमात्मा कोई भी काम ऐसा नहीं करता, जिससे मनुष्यका अनिष्ट हो। दुःख है, कि मनुष्य परमात्मा की लीलाओं को समझने की सामर्थ्य नहीं रखता। इसीलिये विद्वानों ने कहा है, कि मनुष्य परमात्मा पर पूरा भरोसा करके अपने तईं उस पर छोड़ दे और वह जिस हालत में रक्खे, अपने तईं उसी हालत में सुखी माने।

राज़ी हूँ उसी में जिसमें तेरी रज़ा है।

विपत्ति का सामना करने के लिये, मनुष्य को महात्मा मिल्टन की यह बात याद रखनी चाहिये,—"मैं परमात्मा की इच्छाके प्रतिकूल आपत्ति नहीं करता। हे ईश्वर! राज़ी हूँ उसी में, जिसमें तेरी रज़ा है। मैं अपना काम करता हूँ, तू अपना काम कर।"

---

* Out of a great evil there springs a great good.—It. Pr.

महाकवि दाग़ भी कहते हैं:—

आपकी जिस में हो मरज़ी, मुसीबत बेहतर ।
आपकी जिस में खुशी हो, वह मलाल अच्छा है ॥

प्लूटार्च नामक एक यूरोपीय विद्वान् कहते हैं—"हर हालत में प्रसन्न रहना सीखो ; यदि तुम्हारे धन से दूसरों का उपकार होता हो, तो धनावस्था में सुख मानो ; अगर दरिद्रता हो तो इसलिये सुखी रहो, कि तुम पर हज़ारों तरहकी चिन्ताओंका भार नहीं । अगर तुम अप्रसिद्ध हो, तो इसलिये सुख मानो कि तुम लोगों के ईर्षा-द्वेष से बचोगे ।"

कर्मफल भोगने ही पड़ते हैं ।

—०—

सुख और दुःख पूर्वजन्मके पुण्य और पापोंके अवश्यम्भावी कर्म-फल हैं । पूर्व जन्ममें बुरा या भला जैसा कर्म किया जाता है, उसका फल प्रारब्धमें लिख दिया जाता है । उस प्रारब्ध के लिखे को कोई मिटा नहीं सकता । नाना प्रकार की तपस्या और देवताओंकी उपासना करने से भी कोई फल नहीं होता । देवता तो देवता—स्वयं शिव और विष्णु भी भाग्यके लिखे को मिटा नहीं सकते । समुद्र चन्द्रमा का पिता है, पर ऐसा बलवान् समुद्र भी अपने पुत्र के कलङ्कको मिटा नहीं सकता । शिव जी महेश्वर हैं, सर्वशक्तिमान हैं, पर वे भी अपने सिर पर रहने वाले चन्द्रमाको पूर्ण नहीं कर सकते—उसके घटने-बढ़ने के दोष को दूर नहीं कर सकते । शिव जी स्वयं महे-

श्वर हैं, उनके पुत्र गणेश सर्व सिद्धियों के दाता हैं, उनके दूसरे पुत्र स्वामीकार्तिकेय देवसेना के सेनापति हैं, स्वयं महा-शक्ति उनकी अर्द्धाङ्गिनी हैं, स्वयं धन के स्वामी कुबेर उन के घनिष्ट मित्र हैं ; तिस पर भी शिव जी का खप्पर लेकर भीख माँगना नहीं छुटता। मतलब यह, कि कर्म के लिखे को कोई भी मिटा नहीं सकता।

कहा है—

अवश्यं भाविनो भावा भवन्ति महतामपि।
नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहिं शयनं हरेः॥

जो होनहार है, वह अवश्य होता है ; उससे बड़े भी बच नहीं सकते। देखिये, शिव जी नंगे रहते हैं और विष्णु भगवान् महा सर्प के ऊपर सोते हैं।

और भी—

अभद्रं भद्रं वा विधिलिखितमुन्मूलयति कः

बुरा या भला जो कुछ विधाता ने लिख दिया है, उसे मिटाने में कौन समर्थ है ?

वृन्द कविने कहा है—

"निहचै भावी को कहुं प्रतीकार जो होइ।
तो नल से हरचन्द्रसे विपत न भरते कोइ॥"

आङ्ग्ल भाषा में भी एक कहावत है—"The fated will happen." जो भाग्यमें लिखा है, वह होगा

पूर्वजन्म के कर्म-फलों से प्रारब्ध बनता है। प्रारब्ध का लिखा अवश्य होता है। उसके भोगने से मनुष्य क्या—देवता तक नहीं बच सकते। भोगने वाला चाहे रो-रो कर और हाय-हाय करके भोगे और चाहे शान्ति से भोगे *।

गिरधर कविराय कहते हैं—

अवश्यमेव भोक्तव्य है, कृतकर्म शुभाशुभ जोय।
ज्ञानी हँसि करि भोगिहै, अज्ञानी भोगे रोय॥
अज्ञानी भोगे रोय, पुनः पुनि मस्तक कूटे।
प्रारब्ध जो होय, बिना भोगे नहिं छूटे॥
कह गिरिधर कविराय, न दीरघ होत रहस्य।
जैसे जैसे भाग पुरुष के फलै अवश्य॥

विपद् में मान अपमान।

विपद् में मान-अपमान और निन्दा-स्तुति का ख़याल करना दुःखदायी है। विपद् में तो जो मनुष्य गूंगा, बहरा, अन्धा, लँगड़ा या लूला हो जाता है, अपने तईं पत्थर या मिट्टी समझ लेता है, उसकी विपद् सुख से कटती है—उसे शारीरिक और मानसिक दोनों ही कष्ट कम होते हैं। किन्तु जो मान-अपमान का ख़याल रखते हैं, उनकी आत्माएँ जल-जल कर ख़ाक हुआ करती हैं—उन को क्षण भर भी सुख की नींद नहीं आती। विपद् में बड़ों-बड़ों को नीचा

* The life of man is a journey; a journey that must be travelled; however bad the roads or the accomodation.—Goldsmith.

देखना पड़ा है, पद-पद पर अपमानित और लाञ्छित होना पड़ा है। साधारण मनुष्य उनके सामने कौन खेतकी मूली हैं? ऐसा कौन है, जिसे विपद् में नीचा देखना नहीं पड़ा?

जिन अर्जुनने अपनी भुजाओंके द्वारा समस्त पृथ्वीको जीत कर विपुल धन सञ्चय किया था, जिन्होंने सदेह स्वर्ग में जाकर इन्द्र के शत्रु-राक्षसों का संहार किया था, जिन्होंने कृष्णके साथ खाण्डव वन में अग्नि को तृप्त किया था; जिनके समान धनुर्धर उस समय भूतल पर दूसरा नहीं था, उन्हीं धनञ्जयको, हाथ में स्त्रियों का सा कङ्गन और कमरमें कर्धनी पहन कर, विराट्राज की कन्याओं को नाचना-गाना सिखाना पड़ा था।

जिन भीमसेन में अपार बल-वीर्य्य था, जो बड़े-बड़े वृक्षों को सहज में समूल उखाड़-उखाड़ कर शत्रुओं पर फेंक मारते थे, जिन्होंने कीचक और बकासुर प्रभृति राक्षसोंको हँसते-हँसते मार डाला था, जिनसे सारे ही कौरव-भाई सशंक रहते थे, उन्हीं भीमको, विराट्राज के रसोईघर में,रसोइये का काम कर के अपने दिनोंको धक्का देना पड़ा था। जब विराट्के गर्व्वित कुटुम्बी उन्हें "ओ रसोइया"कह कर पुकारते थे,तब द्रौपदी का कलेजा जल कर भस्म हो जाता था। पर कर्मफल अवश्य भोगने होंगे, यह समझ कर पाण्डव सब सहते थे।

जिन धर्मराज युधिष्ठिरके अर्जुन-भीम और नकुल-सहदेव सरीखे त्रिभुवन-विजयी भाई मौजूद थे, जिनके पाञ्चालपति

धृष्टद्युम्न जैसे महा बलवान योद्धा नातेदार थे, जिनके ऊपर स्वयं त्रिलोकीनाथ कृष्ण की पूर्ण कृपा थी, उन धर्मराज को भी अपना तेज, बल और उत्साह छिपा कर वनवास में दिन काटने पड़े और विराट्राजकी सभामें राजाको जूआ खिलाना पड़ा। एकबार विराट् ने क्रोध में आकर, उनके पासा फेंक मारा। उस से रक्त की धार बह निकली। एक सार्व्वभौम चक्रवर्त्ती राजा का यह अपमान क्या कम था? पर बेचारों ने समय देखकर सब सहा। क्या करते? विधाता वाम था। प्रारब्ध में यह ज़िल्लत भी लिखी थी।

इस जगत् में जो अनुपम रूपवती थीं, जिनका यौवन स्थिर था, जो गुणों की आगार थीं, जो महाबली पाञ्चालस्वामी धृष्टद्युम्न की सगी बहिन थीं, जो जगत्-विजयी पाण्डवोंकी धर्मपत्नी और पटरानी थीं, जो त्रिभुवनपति कृष्ण की प्यारी सखी थीं,—उन्हीं कृष्णा या द्रौपदी को, महारानी होने पर भी, मत्स्यराज के रनवास में, सैरन्ध्री—नायन का काम करना पड़ा। रनवास की गर्व्वीली स्त्रियाँ जब उन्हें सैरंध्री—नायन कह कर पुकारती होंगी; तब महारानी द्रौपदी को क्या कष्ट न होता होगा? उनका दिल इस तरह अपमानित होने से क्या जल-जल कर खार-खार न होता होगा? पर वे बुद्धिमती थीं; जानती थीं, कि पूर्व जन्म के कर्मफल अवश्य ही भोगने होंगे; इस लिये सब सहती थीं।

जो महाराजा नल अस्त्र-विद्या और पाक-क्रिया में जगत्

में अद्वितीय थे, जो मन्त्र-बल से बिना आग के आग जला लेते थे, जिन के अनुपम गुणों के कारण देवता भी उन से डाह रखते थे,—उन को भी वन-वन की ख़ाक छाननी पड़ी ; और अपनी प्राणप्यारी, अनुपम सुन्दरी, त्रिलोक-मोहिनी सहधर्म्मिणी महारानी दमयन्ती को वन में अकेली सोती छोड़ कर, अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण की कोचवानगीरी करके दिन काटने पड़े।

जिन्होंने श्रेष्ठ सूर्य्यवंश में जन्म लिया था, जिन के पिता महेन्द्र-मित्र महाराजा दशरथ थे, जिनके गुरु स्वयं महामुनि वशिष्ठ जी जैसे महात्मा थे, जिनके श्वसुर जगत् के ज्ञानियों में अग्रगण्य महाराज विदेह—जनक थे, जिनकी सहधर्म्मिणी स्वयं जनकतनया जानकी जी थीं, जो स्वयं विष्णु भगवान् के अवतार थे,—उन भगवान् रामचन्द्र जी को भी अपनी प्राण-प्यारी लक्ष्मीस्वरूपा महासुकुमारी सीता को साथ लेकर वन-वन डोलना पड़ा।

दिल्लीश्वर शाहन्शाह सम्राट् हुमायुँ को शेरशाहसे परा-जित होने पर, सिन्ध के निर्जल और निर्जन रेगिस्तानों में अपनी गर्भवती बेगम को साथ लिये-लिये महाकष्ट भोगने पड़े।

बादशाहों के बादशाह, यूरोप-विजयी महावीर नेपोलियन को भी अनेक बार कारागार प्रभृति के सैकड़ों असहनीय कष्ट झेलने पड़े !

भूतपूर्व्व जर्मन-सम्राट् कैसर विलियम, जिनके समान दूसरा कूटनीतिज्ञ और राजनीति की बारीकियों को जानने वाला इस भूतल पर इस ज़मानेमें दूसरा समझा नहीं जाता, जिन्होंने अपनी राजनीति की चालों से अच्छे अच्छे चतुर राजनीतिज्ञों की बुद्धि के दिवाले निकलवा दिये, जिन्होंने अपनी शक्ति और बुद्धि से चार साल तक पृथ्वी के प्रायः सभी नरपालों से लोहा लिया और पृथ्वी को अपनी उँगली पर नचाया, जिन की युद्धचातुरी के कारण पृथ्वीके कई सर्वश्रेष्ठ महाप्रतापी राज्यों को अपने अस्तित्व तकमें सन्देह हो गया था, उन्हीं महाबली महापराक्रमी अद्वितीय राजनीतिज्ञ सम्राट् के कर्मों में क्या लिखा था, सो पाँच साल पहले कौन जानता था? जिनकी हुङ्कार से महीके प्रायः सभी महीपाल काँप उठते थे, आज वे ही सम्राट्—अपने जीते जी भूतपूर्व सम्राट् कहलाते हुए, एक छोटे से राज्य हालैण्ड की शरण में रह कर अपना समय काट रहे हैं।*

बहुत कहने से क्या? कर्मफल सभी को भोगने पड़ते हैं। कोई भी बच नहीं सकता। बुद्धिमानों को ऐसे-ऐसे महात्मा और महाबलियों की विपद्-कहानियाँ याद करके, अपने चित्त

* जगत जानता है, कि भू० पू० जर्मन-सम्राट् कैसर विलियम अतिका अभिमान करने और अधर्म का पक्ष लेने से ही हारे; पर अदृष्टवादी यही कहेंगे, कि उनके पूर्वजन्म के पुण्य क्षीण होगये थे, इसीसे हारे और दुःख भोग रहे हैं।

को शान्त रखना चाहिये और जिस राह से प्राचीन काल के महापुरुष गये हैं, उसी राह पर चलकर, उनके पदचिह्नों का सहारा लेकर, उनको आदर्श मान कर, अपने दुःख के दिन काटने चाहियें। प्राचीन काल के महापुरुषों के पदचिह्नों का अनुसरण करने से विपद् उसी तरह सहज में कट जाती है; जिस तरह रेगिस्तानों में अपने से पहले राह तय करने वालों के पद-चिह्नों को देख-देख कर चलने से यात्री अपनी-अपनी मंजिल मकसूद पर आराम से पहुँच जाते हैं*। किसी कविने कहा है:—

सज्जन-चरित्र सिखाते हम भी
कर सकते हैं निज उज्ज्वल।
जग से जाते समय रेत पर
छोड़ें चरण-चिह्न निर्मल॥
चरण-चिह्न ये देख कदाचित्
उत्साहित हों वे भाई।
भवसागर की चट्टानों पर
नौका जिनकी टकराई॥

विपद् अकेली नहीं आती

सर्व्वस्व नाश हो जाना या छिन जाना एक विपद् है। राजा पर दूसरे राजा का चढ़ आना एक विपद् है। रोग-

* A noble example makes difficult enterprises easy.—Goethe.

गार में एकदम से घाटा लग जाना और उस समय धनका घरमें अभाव होना और बाज़ार से उधार न मिलना एक घोर विपद् है।* स्त्री पुत्र प्रभृति प्यारों का मर जाना या किसी तरह वियोग हो जाना भी एक विपद् है। इसी तरह मनुष्य पर अनेक प्रकार की मुसीबतें आया करती हैं! एक विपद् के आते ही, फिर और भी अनेक उपद्रव होने लगते हैं। इधर रोज़गार में घाटा लगता है, उधर साहूकार नालिश करते हैं, साथ ही घरमें आग लग जाती है और बालबच्चे बीमार हो जाते हैं इत्यादि। अँगरेज़ोंमें एक कहावत है—"Misfortunes never come singly." विपत्तियाँ अकेली नहीं आया करतीं †। नीति-शास्त्र में भी कहा है—

क्षते प्रहारा विपतन्त्यभीक्ष्णं,
अन्नक्षये वर्द्धति जाठराग्निः॥
आपत्सु वैराणि समुद्भवन्ति,
वामे विधौ सर्वमिदं नराणां॥

घाव में बारम्बार चोट लगती है; अन्न न होने पर भूख बढ़ जाती है; आफ़त में बैरी बढ़ जाते हैं; विधाता के प्रतिकूल होने से मनुष्यों को ये सब होते हैं।

---

* Poverty is the greatest calamity, riches the highest good.—Goethe."

† इटाली में एक कहावत है—"Blessed is the misfortune that comes alone." स्पेन में भी एक कहावत है—"Welcome, misfortune, if thou comest alone."

विपद में कोई संगी नहीं।

———०———

विपद् में भाई बन्धु भाईबन्दी का नाता तोड़ देते हैं। अपने नातेदार को नातेदार कहने में भी उन्हें कहीं लज्जा और कहीं भय होता है। अपने मुसीबतज़दा रिश्तेदार को दो चार दिनके लिये अपने घर ठहराना भी वे बुरा समझते हैं और काम पड़ने से, जेल होता हो तो भी, फाँसी होती हो तो भी, पैसा होते हुए भी, पैसे से सहायता नहीं देते। रात-दिन पास बैठने वाले, हर तरह गुलछर्रे उड़ाने वाले, विपद् में साथ रहने की दृढ़ प्रतिज्ञा करने वाले और समय पर जान तक दे देने की डींग मारने वाले दुर्दिन में मुँह से भी नहीं बोलते*। बोलते हैं, तो ऐसी बातें कहते हैं, जिनसे दुखिया के दिलमें हज़ारों बिच्छुओं के डङ्क मारने की सी घोर वेदना होने लगती है। गँवार और निर्बुद्धि लोग चतुरचूड़ामणि को भी गँवार और बे-अक़्ल कहने लगते हैं—गधे घोड़ों के लात मारने लगते हैं। और तो क्या—बाज़-बाज़ पिता भी पुत्र से वैर भाव रखने लगते हैं, उसके दुःखों पर हँसते हैं और उसका अनिष्ट चिन्तन करते हैं। बाज़-बाज़ अग्नि की साक्षी देकर, वेदमन्त्रों द्वारा परिणीता सुख-दुःख में हिस्सा बँटाने वाली धर्मपत्नियाँ तक विपद् में फँसे हुए पति से नफ़रत करने लगती हैं और वाक्यवाणों से उस के

---

* So long as you are prosperous you will reckon many friends, if fortune frowns on you, you will be alone.—Ovid.

हृदय को चलनी बना डालती हैं। बहुत कहाँ तक कहें ? हर समय जी हुज़ूर, जी हाँ, जो आज्ञा सरकार, कहने वाले, ज़रा भृकुटी टेढ़ी करने से काँप उठने वाले नौकर और दास-दासी तक विपद्ग्रस्त के शत्रु हो जाते हैं। स्वामी की विपद् की ख़बर पाते ही, सब एक हो जाते हैं; रात-दिन सिर जोड़-जोड़ कर मालिक के छिद्र ढूँढ़ा करते हैं और स्वामीके शत्रुओं को स्वामी के अनिष्ट साधन में साहाय्य किया करते हैं। किसी ने बहुत ही ठीक कहा है—"So many servants, so many enemies" जितने नौकर, उतने दुश्मन। बात एक-दम सच है। हम कई बार स्वयं ऐसा भोग चुके हैं। नौकर चाकर सब से बुरे शत्रु होते हैं। इन्हें नमक का ज़रा भी ख़याल नहीं आता। और शत्रुओं को चाहे दया आ जाय, पर इन्हें दया नहीं आती। ये लोग स्वामी के सभी पुराने उपकारोंपर पानी फेरकर स्वामीके शत्रुओंमें जा मिलते हैं। उन्हें अपने स्वामीकी सच्ची झूठी निन्दायें सुना-सुनाकर रिझाते हैं और फिर अपने स्वामी को महासंकट में परित्याग करके शत्रुओं में से किसी के यहाँ जम जाते हैं। हाय ! विपद् में सिवा ईश्वरके कोई भी साथी नहीं रहता। अपने तनके कपड़े भी अपने दुश्मन हो जाते हैं। महाकवि दाग़ने कहा है और राई रत्ती सच कहा हैः—

होता नहीं है कोई, बुरे वक्त में शरीक।

पत्ते भी भागते हैं, ख़िज़ाँ में शजरसे दूर ॥

पुतलियाँ तक भी तो फिर जाती हैं, देखो दमनिज़ा ।
वक्त पड़ता है, तो सब आँख चुरा जाते हैं ॥

मनुष्य जब सब तरह से निराश हो जाता है, आँख पसार कर देखने पर जब उसे कोई भी मददगार नज़र नहीं आता, तब उसे दीनबन्धु, दयासिन्धु, अनाथनाथ भगवान् की याद आती है । ज्योंही वह आर्त्त होकर प्रभु को पुकारता है, आशुतोष भगवान् का आसन तत्काल हिलने लगता है । वे संकटभञ्जन भक्तमनरञ्जन, फौरन ही नंगे पैर भक्त को विपद् से बचाने के लिये दौड़ते और उसकी रक्षा करते हैं*। नीचे की ग़ज़लमें इसका चित्र ख़ूब खींचा गया है:—

ग़ज़ल ।

दुःख दूर कर हमारा, संसार के रचैया ।
जल्दी से दो सहारा, मँझधार में है नैया ॥ १ ॥
तुम बिना कोई हमारा, रक्षक नहीं यहाँ पर ।
ढूँढ़ा जहान सारा, तुमसा नहीं रखैया ॥ २ ॥
दुनिया में खूब देखा, आँखें पसार करके ।
साथी नहीं हमारा, मा बाप और भैया ॥ ३ ॥

---

* Ask, and it shall be given you ; seek, and you shall find ; knock, and it shall be opened to you.—Bible.

सुख के हैं सब सँगाती, दुनिया के यार सारे।
तेरा ही नाम प्यारा, दुःख दर्द से बचैया ॥ ४ ॥
दुनियामें फँसके हमको, हाँसिल हुआ न कुछ फल।
तेरे बिना हमारा, कोई नहीं सुनैया ॥ ५ ॥
चारों तरफ़ से हम पर, ग़म की घटा है छाई।
सुख का करो उजेरा, परकाश के करैया ॥ ६ ॥
अच्छा बुरा है जैसा, राज़ी में राम रहता।
चेरा है यह तुम्हारा, सुध लेउ सुध लिवैया ॥ ७ ॥

विपद आने से पहले ही घबराना ठीक नहीं।

—०—

बहुत से निर्बुद्धि विपद्की आशङ्का-ही-आशङ्का में चिन्ता-ग्रस्त होकर अपने रूप, बल और बुद्धि को खो देते हैं; असमय में ही हमारी तरह बालों को पका लेते* हैं और चालीस बरस की उम्रमें सत्तर वर्षके से हो जाते हैं। निर्बुद्धि अपनी निर्बुद्धिता का फल आप ही नहीं भोगते; अपने नन्हें-नन्हें बच्चों और अपनी स्त्री तक को भुगाते हैं। उनके हर समय मनहूस की सी सूरत बनाये रहने से, उनकी स्त्री और छोटे बच्चे भी चिन्तामग्न या उदास रहने से पीले पड़ जाते हैं।

कहते हैं,—चिन्ता से चिता भली। चिता एक बारही मनुष्यको जला-बला कर ख़ाक कर देती है, पर चिन्ता पिशाचिन

* Care brings grey hairs.

बड़े-बड़े दुःख देकर बुरी तरह से जलाती है। जिस पर चिन्ता की कृपा होती है, उसका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता और आयु भी कम हो जाती है। किसीने सच कहा है—Anxiety is the poison of life." चिन्ता जीवन का विष है※। अतः भूल कर भी चिन्ता न करनी चाहिये। विपद् आये पहले, तूफ़ान का तूफ़ान करना महामूर्खता है; क्योंकि अनेक बार जिस विपद्‌की आशंका-ही-आशंका में लोग उसके आने के पहले ही पूरे हो लेते हैं; और वह आती भी है और नहीं भी आती है। इसी-लिये किसी विद्वान् ने ठीक ही कहा है—Never trouble yourself with troubles till trouble troubles you. जब तक दुःख न आवे, तब तक अपने तईं दुःख से दुःखी न करो।

इसमें दोनों ही तरह हानि है। अगर विपद् न आई, तो शरीरका खून मांस जलाना, घरवालों को कष्ट देना और धन्धे रोज़गार को सत्यानाश में मिलाना वृथा ही हुआ। मान लो; विपद् आई; तो आपका पहले से ही अपने बुद्धि, बल और साहस प्रभृतिको क्षय कर लेना भला न हुआ; क्योंकि विपद्‌में मनुष्य इनके बलसे ही तो छुटकारा पाता है। जो हर हालत में हँसता रहता है, उसके बल और बुद्धि नष्ट नहीं होते—उसका स्वास्थ्य अच्छा रहता है†। यदि दैवात् विपद् आ भी जाती है,

※ Care's an enemy to life.—Twelfth Night, i. 3

† Cheerfulness is health; the opposite melancholy, is disease.—Haliburton.

Cheerfulness is the very flower of health;—Schopenhaur.

तो वह आसानी से उसके पार हो जाता है । इसलिये दुःख में भी खुश हो रहना अच्छा है । महाकवि दाग़ने खूब कहा है—

दिल दे तो इस मिज़ाज का पर्वरदिगार दे ।
जो रंज की घड़ी भी ख़ुशी में गुज़ार दे ॥

विपद् में क्या करना चाहिये ?

—o—

जब तक विपद् न आवे, उस से घबराना न चाहिये । हाँ, उसका ख़याल ज़रूर रखना चाहिये । जब विपद् आजाय, तब उसके नाश का यथोचित उपाय करना चाहिये । जो विपद्में फँस कर मोहसे केवल रोता है, हर समय चिन्तित और शोकाकुल रहता है, उसका मन बीमार हो जाता है* । मनके बीमार होने से, हाथ पैरों का बल निकल जाता है; क्योंकि बल का सारा दारमदार मनपर ही है; इसलिये विपद्में रोना, घबराना और चिन्तित रहना, अपनी विपद् को बढ़ाना है । घबराने वाले की विपद् का अन्त नहीं आता । विपद् में मनुष्य को "विचार" बचाता है; इसलिये विपद् में विचारसे काम लेना ही चतुराई है । अविचारवानों को विपद् पद-पद पर सताती है । पण्डितों ने कहा है:—

* Cheerfulness is the best promoter of health and is as friendly to the mind as to the body.—Addison.

केवलं व्यसनस्योक्तं भेषजं नयपण्डितैः।
तस्योच्छेद समारम्भो विषाद परिवर्जनम् ॥

नीतिकुशल पण्डितों ने विपद् की एक ही मुख्य औषधि कही है—"दुःख के नाश करने का उपाय करना और विषाद त्यागना।"

विपद् में धैर्य्य ही सच्चा रक्षक है।

—०—

विपद् में अच्छे-अच्छे साहसिकों के साहस के दिवाले हो जाते हैं, बड़े-बड़े बहादुर घबरा उठते हैं। पर जो विपद्में घबरा जाते हैं और सब्र को हाथ से छोड़ देते हैं, वे शीघ्र ही मारे जाते हैं। विपद् में न घबराने वाले और धैर्य्यावलम्बन करने वाले बहुधा बच जाते हैं *। इसलिये विपद् में धैर्य्य को हरगि न त्यागना चाहिये। कहा है—

त्याज्यं न धैर्य्यं विधुरेऽपि दैवे,
धैर्य्यात् कदाचित् स्थितिमाप्नुयात्सः।
याते समुद्रेऽपि हि पोतभंगे,
सांयात्रिको वाञ्छति कर्म्म एव ॥

* The man who in wavering times is inclined to be wavering only increases the evil, and spreads it wider and wider but the man o firm decisions fashion the universe.—Goethe.

Whoso despises death escapes it, while it overtakes him who is afraid of it.—Curt.

तो वह आसानी से उसके पार हो जाता है । इसलिये दुःख में भी खुश ही रहना अच्छा है । महाकवि दाग़ने खूब कहा है—

दिल दे तो इस मिज़ाज का पर्वरदिगार दे ।
जो रंज की घड़ी भी ख़ुशी में गुज़ार दे ॥

विपद् में क्या करना चाहिये ?

—०—

जब तक विपद् न आवे, उस से घबराना न चाहिये । हाँ, उसका ख़याल ज़रूर रखना चाहिये । जब विपद् आजाय, तब उसके नाश का यथोचित उपाय करना चाहिये । जो विपद्में फँस कर मोहसे केवल रोता है, हर समय चिन्तित और शोकाकुल रहता है, उसका मन बीमार हो जाता है* । मनके बीमार होने से, हाथ पैरों का बल निकल जाता है; क्योंकि बल का सारा दारमदार मनपर ही है; इसलिये विपद्में रोना, घबराना और चिन्तित रहना, अपनी विपद् को बढ़ाना है । घबराने वाले की विपद् का अन्त नहीं आता । विपद् में मनुष्य को "विचार" बचाता है; इसलिये विपद् में विचारसे काम लेना ही चतुराई है । अविचारवानों को विपद् पद-पद पर सताती है । पण्डितों ने कहा है:—

* Cheerfulness is the best promoter of health and is as friendly to the mind as to the body.—Addison.

केवलं व्यसनस्योक्तं भेषजं नयपण्डितैः।
तस्योच्छेद समारम्भो विषाद परिवर्जनम्॥

नीतिकुशल पण्डितों ने विपद् की एक ही मुख्य औषधि कही है—"दुःख के नाश करने का उपाय करना और विषाद त्यागना।"

विपद् में धैर्य्य ही सच्चा रक्षक है।

—o—

विपद् में अच्छे-अच्छे साहसिकों के साहस के दिवाले हो जाते हैं, बड़े-बड़े बहादुर घबरा उठते हैं। पर जो विपद्में घबरा जाते हैं और सब्र को हाथ से छोड़ देते हैं, वे शीघ्र ही मारे जाते हैं। विपद् में न घबराने वाले और धैर्य्यावलम्बन करने वाले बहुधा बच जाते हैं *। इसलिये विपद् में धैर्य्य को हरगि न त्यागना चाहिये। कहा है—

त्याज्यं न धैर्य्यं विधुरेऽपि दैवे,
धैर्य्यात् कदाचित् स्थितिमाप्नुयात्सः।
याते समुद्रेऽपि हि पोतभंगे,
सांयात्रिको वाञ्छति कर्म्म एव॥

* The man who in wavering times is inclined to be wavering only increases the evil, and spreads it wider and wider but the man o' firm decisions fashion the universe.—Goethe.

Whoso despises death escapes it, wh le it overtakes him who is afraid of it.—Curt.

दैव के नाराज़ होने पर भी धीरज न छोड़ना चाहिये ; क्योंकि धीरज से कदाचित् स्थिति सुधर जाय; जहाज़ के डूबने पर भी पोतवणिक् उद्यम करने की ही इच्छा करता है।

सारांश—विपद् में घबराओ मत, धीरज रक्खो ; चित्त को चिन्ताओं से शुद्ध करके, शीतल दिमाग़ से विपद् से छुटकारा पाने के उपाय सोचो। परमात्मा की कृपा हुई, पुण्यबल हुआ; तो निश्चय ही आप की बुद्धि द्वारा ही घोर विपद् से आपकी मुक्ति हो जायगी। विपत्तिमें बुद्धि ही बचाती है,—इस पर हमें एक क़िस्सा याद आया है। सुनियेः—

एक दिन एक बन्दर यमुना नदी में तैर रहा था। किसी घड़ियाल ने उसका पैर पकड़ लिया। बन्दर ने बहुत कुछ कोशिश की, पर घड़ियालने बन्दर का पैर न छोड़ा। इतनेमें एक बन्दर किनारे से बोला—"अरे क्या हुआ ? क्यों रह गया ?" उसने जवाब दिया—"यार ! क्या बतावें, घड़ियालने एक लकड़ी अपने मुँहमें दबा रक्खी है और समझता है कि, मैंने बन्दरको पकड़ रक्खा है।" यह सुनते ही घड़ियालने बन्दर का पैर छोड़ दिया। बन्दर की जान बच गई। अगर बन्दर घबरा जाता और होश भूल जाता, तो क्या बचता ? विपत्तिमें जिसकी बुद्धि नष्ट नहीं होती, वह निश्चयही बच जाता है। कहा है—

उत्पन्नेषु विपत्तेषु बुद्धिर्यस्य न हीयते।
स एव दुर्गं तरति, जलस्थो वानरो यथा ॥

दोहा-छीन पत्र पल्लवित तरु, छीन चन्द्र बढ़वार ।

यह लखि सज्जन दुःखहू, पाय न लहहिं विकार ॥८८॥

88. A tree being pruned expands (anew). The moon after having lost her brigntness is sure to regain it. Considering this the holy men do not feel much sorrow when they are beset by calamities in this world.

नेता यस्य बृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं सुराः सैनिकाः

स्वर्गो दुर्गमनिग्रहः किल हरेरैरावतो वारणः ॥

इत्यैश्वर्यबलान्वितोऽपि बलिभिर्भग्नः परैः संगरे

तद्व्यक्तं वरमेव दैवशरणं धिग्धिग्वृथा पौरुषम् ॥८९॥

जिसके बृहस्पति के समान मंत्री, वज्र-सदृश शस्त्र, देवताओं की सेना, स्वर्ग जैसा क़िला, ऐरावत जैसा वाहन और स्वयं विष्णु भगवान्‌की जिस पर कृपा है—ऐसे अनुपम ऐश्वर्य वाला इन्द्र भी शत्रुओं से युद्ध में हारता ही रहा ; इससे सिद्ध होता है, कि पुरुषार्थ वृथा और धिक्कार-योग्य है। एकमात्र दैव ही सब की शरण है।

मतलब यही है, कि प्रारब्ध या दैव के मुक़ाबले में पुरुषार्थ कोई चीज़ नहीं। जिस इन्द्र का इतना वैभव है और जिस के सिरपर स्वयं जगदीश्वर का हाथ है, वह इन्द्र भी युद्ध में सदा हारता ही रहा—इस घटना को देख कर "पुरुषार्थ" को तुच्छ और दैव को सर्वोपरि मानना ही पड़ता है। और भी दृष्टान्त लीजिये ;—

दुर्गस्त्रिकूटः परिखा समुद्रो,
रक्षांसि योधा धनदाच्चवित्तम् ।
शास्त्रञ्च यस्योशनसा प्रणीतं,
स रावणो दैववशाद्विपन्नः ॥

जिस का क़िला त्रिकूट पर्वत, समुद्र खाई, राक्षस योद्धा, कुबेर से धन की प्राप्ति और जिस के यहाँ शुक्राचार्य्य-प्रणीत शास्त्र था, वह रावण भी दैववश नष्ट हो गया ।

शुक्रनीति में लिखा है—

कालानुकूल्यं विस्पष्टं राघवस्यार्जुनस्य च ।
अनुकूले यदा दैवे क्रियाल्पा सुफला भवेत् ॥
महती सत्क्रिया अनिष्टफलास्यात्प्रतिकूलके ।
बलिर्दानेन संबद्धो हरिश्चन्द्रस्तथैव च ॥

रामचन्द्र और अर्जुनकी काल-सम्बन्धी अनुकूलता संसार-प्रसिद्ध है। जब दैव अनुकूल होता है, तब स्वल्प क्रिया भी सफल होती हैं; किन्तु जब प्रारब्ध प्रतिकूल होता है, तब बड़े भारी सत्कर्म का फल भी अनिष्ट ही होता है। देखिये बलि और राजा हरिश्चन्द्र दान करने से भी बन्धन में पड़े।

जो भीष्म वसुओं के अवतार थे, जो भीष्म देवताओंसे भी अजेय थे, जिन भीष्मने क्षत्रिय-कुलनाशक परशुराम जी को भी युद्ध में नीचा दिखाया था, जिनके जोड़ का योधा उस समय पृथ्वी पर दूसरा न था,—उन्हीं भीष्मको, गोहरणके समय,

विराट् नगरीमें अर्जुन द्वारा पराजय हुई। जिस अर्जुनने स्वर्ग में जाकर इन्द्र का कार्य्य साधन किया, जिस अर्जुनने अपने बाहुबल से पृथ्वीके समस्त राजाओं को पराजित करके धन-दण्ड लिया, जिस अर्जुनने भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य्य के भी छक्के छुड़ा दिये, जिस अर्जुनने महातेजस्वी सूर्य्यपुत्र कर्ण को युद्धक्षेत्र में परास्त कर दिया, जिस अर्जुनने गन्धर्व्वों को भी अपनी युद्ध-कला-कुशलता से नीचा दिखा दिया, वही अर्जुन, प्रभासतीर्थ में, यादव-स्त्रियोंको भीलों से रक्षा न कर सका ! क्या यह कम आश्चर्य की बात है ? परमात्माकी विचित्र गति है ! उस लीलामयकी लीलाओं को समझना मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर है। सूरदासजी ने क्या खूब कहा है:—

॥ भजन ॥

दयानिधि ! तोरी गति लखि ना परे ॥ टेक ॥
गुरु वसिष्ठ से पंडित ज्ञानी, रुचि रुचि लगन धरे ।
सीता-हरण मरण दशरथ को, विंपति में विपति परे ॥ १ ॥
एक गऊ जो देत विप्र को, सो सुरलोक तरे ।
कोटि गऊ राजा नृग दीनीं, सो भव-कूप परे ॥ २ ॥
पिता-वचन पलटे सो पापी, सो प्रहलाद करे ।
जिनकी रक्षा कारण तुम प्रभु, नरसिंह-रूप धरे ॥ ३ ॥
पाण्डवजन के आप सारथी, तिन पर विपत परे ।
दुर्योधन को मान घटायो, यदुकुल नाश करे ॥ ४ ॥

तीन लोक इस विपत के वश में, विपता बश ना परे ।
सूरदास या को सोच न कीजे, होनी तो होके रहे ॥ ५ ॥

सारांश यही है कि, दैव की अनुकूलता से न-कुछ आदमी भी सिद्धि प्राप्त करता है और दैव की प्रतिकूलता से महाबली और महाबुद्धिमान भी पराजित होते और मुँह की खाते हैं। दैव की कृपा होने से बिगड़े काम बन जाते हैं और उसकी अकृपा होने से बने हुए काम भी बिगड़ जाते हैं। दैव नामर्द को मर्द और मर्द को नामर्द, मूर्ख को बुद्धिमान और बुद्धिमान को मूर्ख, धनी को निर्धन और निर्धन को धनी बना देता है। सारी शक्तियाँ दैव के ही हाथ में हैं; इसलिये दैव ही मुख्य है। गिरिधर कविराय भी यही कहते हैं:—

अदृष्ट समान बलिष्ट नहिं, देख्यौ जगमें मीत ।
करै भगोड़ा शूर को, पुनि कायर की जीत ॥
पुनि कायर की जीत, धनी को करै है कंगला ।
निर्धन को करै धनी, शहर करि डारे जंगला ॥
कहैं गिरिधर कविराय, इष्ट कों करे अनिष्ट ।
पुनि अनिष्ट को इष्ट, ऐसो कौन अदृष्ट ॥

छप्पय--सुरगुरु सेनाधीश सुरन की सेना जाके ।
शस्त्र हाथ लिये वज्र स्वर्ग सो दृढ गढ़ ताके ॥
ऐरावत असवार प्रभू की परम अनुग्रह ।

ऐसी सम्पति सौज सहित सोहत बासव यह ॥
सो युद्ध माहिं दानवनसों लहत पराजय खोय पति ।
शोभा समाज सबही वृथा सबसों अद्भुत दैवगति ॥८९॥

19 The god Indra, who has Vrihaspati for his councillor, a thunderbolt for his weapon, the other gods for his soldiers, the paradise for his fortress, Vishnu for his ally and the Airavata elephant to ride upon, is (often) defeated in battle by his powerful enemies (the Asuras) despite all this power and strength. (This proves that) one should take shelter in Fate alone. (Dependance on) one's own energies is worthless.

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
तथापि सुधिया भाव्यं सुविचार्यैव कुर्वता ॥९०॥

यद्यपि मनुष्यों को कर्मानुसार फल मिलते हैं और बुद्धि भी कर्मानुसार हो जाती है; तथापि बुद्धिमानों को खूब सोच विचार कर ही काम करने चाहियें ।

बुद्धि कर्मानुसार कैसे हो जाती है ?

—०—

मनुष्यों को पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार ही बुरे या भले फल मिलते हैं । जैसे फल मिलने वाले होते हैं, वैसी ही होनहार होती है ; जैसी होनी होती है, वैसी ही मनुष्य की बुद्धि हो जाती है । अगर भली होनी होती है, तो बुद्धि भली हो जाती है और अगर बुरी होनी होती है, तो बुद्धि बुरी हो

जाती है। होनहार के आगे बड़े-से-बड़े बुद्धिमानों की नहीं चलती। वृन्द कवि महाशय कहते हैं:—

जैसी हो होतव्यता, तैसी उपजे बुद्ध।
होनहार हिरदे बसे, बिसर जाय सब सुद्ध॥
जैसी हो भवितव्यता, तैसी बुद्धि प्रकाश।
सीता हरवे ते भयो, रावण-कुल को नाश॥
सब की समै विनाश में, उपजत मति विपरीत।
रघुपति मार्‍यो लंकपति, जो हर लेगयो सीत॥
मति फिर जाय विपत्ति में, राव रंक इक रीत।
हेमहिरन पाछे गये, राम गँवाई सीत॥

जब मनुष्यकी होनहार बुरी होती है, जब उस पर विपद् आने वाली होती है; तब वह जान बूझकर ऐसे काम करता है, जिस से विपद् न आती हो तो आवे। मनष्य जानता है कि अमुक वन में रात के समय अकेला जाऊँगा, तो डाकुओं द्वारा मारा जाऊँगा। और लोग भी यही बात समझाते हैं; उसे जाने से मना करते हैं, पर वह होनी के वश, अपने अन्त:करणकी और अपने मित्रोंकी न मानकर जाता है और मारा जाता है। रावण नीतिका अद्वितीय विद्वान् था। क्या वह जानता न था, कि परस्त्री हरणका परिणाम अच्छा नहीं? जानता तो था, पर होनी उसके सिर पर सवार थी, इससे उसकी बुद्धिमें सीताको चुपचाप हर ले जाना ही ठीक जँचता था। राजा नल क्या जूए की बुराइयों को न जानते थे? राम-

चन्द्र क्या नहीं जानते थे कि, सोनेका हरिन नहीं होता ? पर वे उसके पीछे सीता को छोड़कर भागे। लक्ष्मण और सीता क्या न जानते थे, कि रामको मारने वाला त्रिलोकी में नहीं। फिर भी ; लक्ष्मण सीताको कुटिया में सूनी छोड़ भागे। इन बातों से साफ मालूम होता है, कि मनुष्य प्रारब्धके वश हो, जान-बूझ कर भी, बुरे काम करता है। नीति में कहा है—

जानन्नपि नरो दैवात, प्रकरोति विगर्हितम्।
कर्म किं कस्यचिल्लोके गर्हितं रोचते कथम्॥

असंभवं हेममृगस्य जन्म
तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्रायः समापन्न विपत्तिकाले
धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति॥

मनष्य जानकर भी, प्रारब्ध के वश हो, निन्दित कर्म करता है ; नहीं तो संसार में निन्दित कर्म किसे अच्छा लगता है ?

सोने के हिरन का होना असम्भव है ; तो भी रामचन्द्र जी को माया-मृग का लालच आ गया। बहुधा, विपत्ति के समय, बुद्धिमानों की बुद्धि भी मलीन हो जाती है।

इन दृष्टान्तों से अच्छी तरह समझ में आ जाता है, कि कर्मफलों के अनुसार जैसी होनहार होती है, वैसी ही बुद्धि हो जाती है। विनाशकाल उपस्थित होने पर बुद्धिमान-से-

बुद्धिमान की बुद्धि मारी जाती है। अगर यह बात न होती, तो पण्डितशिरोमणि रावण और विष्णु के अवतार जगदीश रामचन्द्र जी क्यों विपद् भोगते ? जब स्वयं राम और रावण से ही भूलें हुईं ; तब और मनुष्योंकी क्या गिनती है ?

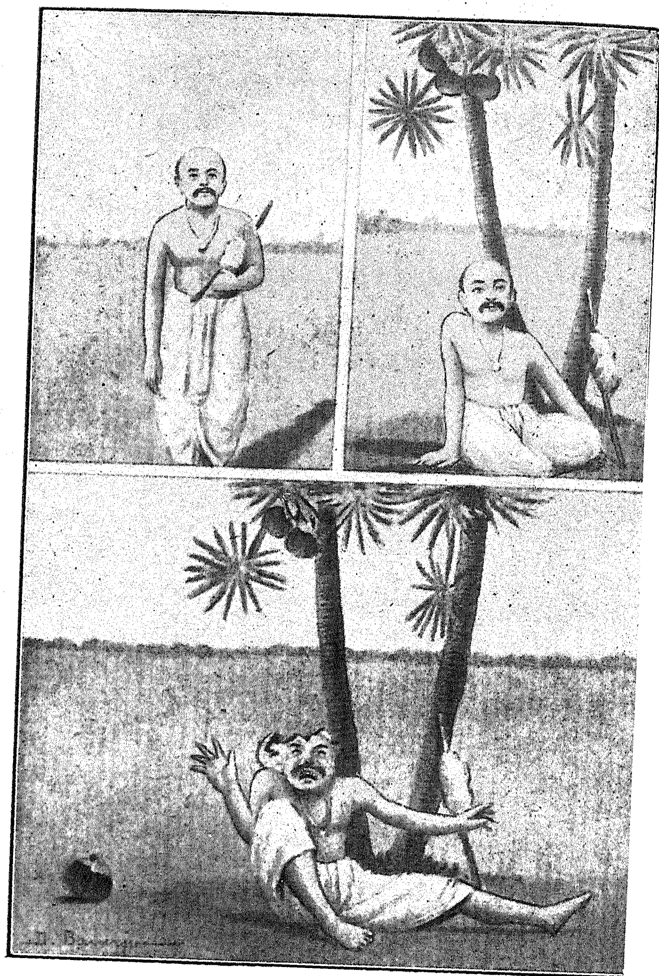
फिर भी विचार कर काम करना चाहिये ।

कर्म-फलों के अनुसार बुद्धि हो जाती है, इसमें ज़रा भी शक नहीं ; फिर भी, नीतिज्ञ पण्डित विचार कर काम करने की सलाह देते हैं। विचारपूर्वक काम करने से मनुष्य दोष का भागी नहीं होता और स्वयं उसके दिल में खटक नहीं रहती। किरातार्ज्जुनीय महाकाव्य के दूसरे सर्ग में कहा है—

सहसा विदधीत न क्रिया—
मविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणुतेहि विमृष्य कारिणं
गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥

हठात् किसी कामको न करना चाहिये। बिना विचारे काम करने से बड़ी भारी विपत्ति की सम्भावना रहती है। विचारपूर्व्वक काम करने वाले के पास गुणलोभी सम्पत्तियाँ आप-से-आप आ जाती हैं।

सारांश—यह सच है, कि बुद्धि होनहार के अनुसार हो



इस चित्रके गंजे की दशा देखने से ज्ञात होता है, कि भाग्यहीनों की विपत्ति भी उनके साथ ही साथ रहती है।

(पृष्ठ ४०७)

जाती है। फिर भी; बुद्धिमानों का कर्त्तव्य है, कि वे खूब सोचविचार कर काम करें। कहा है:—

दोहा--फलहू पावत कर्म ते, बुद्धिहु कर्म अधीन।

तद्यपि बुद्धि विचार कै, कारज करो प्रवीन ॥९०॥

90. (Although) fruits are dependent upon actions and one's reason also follows the same, yet a wise man should do every thing after considering it well.

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः संतापितो मस्तके
वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः ॥
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यांत्यापदः ॥९१॥

किसी गंजे आदमी का सिर धूप से जलने लगा। वह छाया की इच्छा से दैवात् एक ताड़ के वृक्ष के नीचे जाकर खड़ा हो गया। उसके वहाँ पहुचते ही, एक बड़ा ताड़-फल उसके सिरपर बड़े ज़ोर से गिरा। उससे उस की खोपड़ी फट गई। इससे सिद्ध होता है, कि भाग्यहीन मनुष्य जहाँ जाता है, उस की विपत्ति भी प्रायः उसके साथ-ही-साथ जाती है।

किसी विद्वान् ने ठीक ही कहा है:—

अकृतेऽप्युद्यमे पुंसामन्यजन्मकृतं फलम्।
शुभाशुभं समभ्येति विधिना सन्नियोजितम्।
यस्मिन् देशे च काले च वयसा यादृशेन च।
कृतं शुभाशुभं कर्म तत्तथा तेन भुज्यते ॥

बिना उद्योग किये भी, पुरुषों को दूसरे जन्म का शुभाशुभ फल, विधि के नियोग से, मिलता ही है। जिस देश, काल और अवस्था में, जिसने जैसा बुरा या भला कर्म किया है, उसका वैसा ही फल उसे भोगना होता है।

सारांश—अभागी की रक्षा कहीं भी नहीं; अभागे की विपत्ति अभागी के पीछे-पीछे रहती है। वह अपनी विपत्ति से बचने के लिये चाहे जितनी कोशिश क्यों न करे, बच नहीं सकता। कहते हैं, किसी मनुष्य को डाकुओं ने घेर लिया; प्राण बचाने के लिये, वह सामने के वन में भागा। वहाँ सिंह और हाथी उस के पीछे पड़ गये; तब प्राणरक्षा के लिये वह एक कूप में कूद पड़ा। वहाँ उसे सर्प भक्षण कर गये।

छप्पय--टाँट उघारे मूढ, बारहू सिर पर नाहीं।
तप्यो जेठ की घाम, ताल की पकरी छाहीं॥
तहां तालफल एक, शीश पर परयो धड़ाके।
फूटि गयो करि शोर, पीर बाढ़ी तनु ताके॥
सुख ठौर जानि बिरम्यो सुवस, तहां इतै दुखको सहत।
निर्भाग्य पुरुष जित जात तित, बैर विपति पीछहिं रहत॥९१॥

91. A bald-headed man, his head being scorched by the rays of the sun desirous of finding a shady place, by ill-luck went under a Tala (palm) tree. There his head was broken by a big fruit falling on it with a great noise. Often wheresoever an unlucky person may go he is pursued by misfortunes.

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम्।
मतिमतांचविलोक्य दरिद्रतां विधिरहो बलवानिति मे मतिः॥९२

हाथी और सर्प को बन्धन में देखकर, सूर्य्य और चन्द्रमा में ग्रहण लगते देखकर और बुद्धिमानों को दरिद्री देखकर —मेरी समझ में यही आता है, कि विधाता ही सब से बलवान् है।

निस्सन्देह विधाता सब से बलवान् है। वह जो कुछ भाग्य में लिख देता है, उसे कोई बड़े-से-बड़ा नहीं मिटा सकता। कपाल के दोष से ही शिवजी नंगे रहते हैं और कपाल के दोष से ही विष्णु सर्प-शय्या पर सोते हैं। कुबेर के मित्र होने पर भी, महादेवजी चर्मवस्त्र पहनते और भिक्षा माँगते फिरते हैं। जो पक्षी सौ योजन की ऊँचाई से भी अधिक दूर से अपने भक्ष्य—मांस को देख लेता है, वही जब प्रारब्ध खोटी होती है, जालके फन्देको पास से भी नहीं देख सकता; क्योंकि भाग्य का लिखा होकर रहता है। कहा है—

स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी।
दशशत करधारी ज्योतिषां मध्यचारी॥
विधुरपि विधियोगात् ग्रस्यते राहुणासौ।
लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः॥

वह आकाश में विहार करनेवाला, अन्धकार को नाश करनेवाला, सहस्र किरणों वाला, प्रकाशमान, तारागणोंके बीच

में घूमनेवाला चन्द्रमा भी, भाग्य-वश, राहु से ग्रसा जाता है। इस से सिद्ध है, कि माथे पर लिखेको कोई मेट नहीं सकता।

छप्पय-रवि शशि निशदिन फिरें, ग्रहण सों पीड़ा पावें।
वृहत्काय गज तुरत, तन्तु लघु सों बँध जावें॥
महा भयंकर सर्प, मंत्र बस रहैं मौन गह।
योगी अटल अकाम, होय कामी इक क्षण महँ॥
मतिमान पुरुष दारिद्र बस, या जग बिच घमत रहैं।
बलवान दैवगति है बड़ी, यह आश्चर्य सकवि कहैं॥९२॥

92 Seeing the sun and the moon being attacked by an eclipse, the elephant and the serpent being made captive and the wise falling a pray to poverty, I conclude that Fate is a powertul thing.

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः।
तदपि तत्क्षणभङ्गिकरोति चेदहह कष्टमपण्डितता विधेः॥९३

बड़े ही दुःख की बात है, कि विधाता सब गुणों की खान और पृथ्वीके भूषण पुरुषरत्न को सिरज कर भी, उसकी देह को क्षणभंगुर कर देता है। इस से विधाता की मूर्खता ही प्रकट होती है।

मनुष्य, अशरफुल मख़लूक़ात—ईश्वर की सृष्टि की शोभा और पृथ्वी का भूषण होने पर भी, क्षणभंगुर है—उस की आयु कुछ नहीं! वह पानी के बुलबुले की तरह क्षण-भरमें

ही नाश हो जाता है। ब्रह्मा गुणों की खान—पृथ्वीकी शोभा-रूप पुरुष को बनाता है, यह तो अच्छी बात है; पर उसे पलक मारते नाश कर देता है, यह दुःख की बात है! यह विधाताकी मूर्खता नहीं तो क्या है? यदि वह पुरुष को सदा स्थिर रहने वाला अजर और अमर बनाता, तो अच्छा होता। इसमें उसकी बुद्धिमत्ता दीखती; क्योंकि अपने बाग़में आपही वृक्ष लगाकर, आप ही जल सींच कर और बढ़ाकर, अपने ही हाथों से उसे कोई नहीं काटता। जो ऐसा करता है, वह मूर्ख ही समझा जाता है।

सार—मनुष्य क्षणभंगुर है; पलक मारते नाश होता है। और चीज़ों की उम्र है, पर मनुष्य की कुछ भी उम्र नहीं; इसलिये इस चपला की चमक के समान चञ्चल धन, यौवन और जीवन पर अभिमान न करके, दिन-रात परोपकार करना चाहिये। अपना एक दिन और एक क्षण भी परोपकार और परमात्मा के नाम बिना न गँवाना चाहिये। नीचे के भजन और ग़ज़ल प्रभृति से, ग़फलत की नींदमें पड़े हुए पाठकों को होश हो जायगाः—

॥ भजन ॥

राग काफी।

मुखड़ा क्या देखे दर्पण में, तेरे दया धरम ना मनमें ॥टेक॥

हरी-हरी पाग केसरिया जामा, सोहत गोरे तनमें।